गोविन्ददास ग्रन्थावली

दो सामाजिक नाटक तथा समस्यात्मक
ग्यारह एकांकी

तीसरा खण्ड

गोविन्ददास

१९५८
प्रकाशक
भारतीय विश्व-प्रकाशन
फव्वारा—दिल्ली

दो शब्द

ग्रन्थावली के इस तीसरे खण्ड में सेठ जी के दो सम्पूर्ण नाटक तथा एक समस्यात्मक एकांकियों का संग्रह है। **'विश्व-प्रेम'** सेठजी का सर्वप्रथम सामाजिक नाटक है। यह सन् १६१७ में लिखा गया था। इस नाटक में प्रेम तथा लालसा एवं व्यक्ति-प्रेम तथा विश्व-प्रेम का अन्तर प्रतिपादित हुआ है। **'सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य'** राजनीतिक विचारों से पूर्ण सामाजिक नाटक है। इस कारण अंग्रेजों के समय में इसे आपत्तिजनक मानकर इसके प्रकाशक से जमानत भी माँगी गयी थी। इस खण्ड की अन्य कृतियाँ भी भावपूर्ण और प्रभावयुक्त हैं।

—प्रकाशक

सूची

विश्व-प्रेम

निवेदन

'विश्व-प्रेम' मेरा पहला नाटक है। यह सन् १९१९ के फरवरी मास में लिखा गया था और जबलपुर के शारदा भवन पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव के समय मई मास में यह जबलपुर के 'मित्रमण्डल' नामक एक एमेच्योर नाटक समाज के द्वारा खेला भी गया था। इस मित्रमण्डल संस्था में उस समय जबलपुर के प्रायः सभी साहित्यिक सम्मिलित थे; अतः इस नाटक में भी जबलपुर के अनेक साहित्यिकों ने पार्ट लिया था, इनमें पंडित कामताप्रसाद जी गुरु प्रमुख थे। उस समय इसका नाम 'मोहन' था और यह कुछ ऐसी सफलता के साथ खेला गया कि अनेक मित्रों ने उसी समय इसे प्रकाशित करने का आग्रह किया; पर उस समय यह प्रकाशित न हो सका। फिर मेरा राजनैतिक जीवन आरम्भ हो गया और सन् १९२० से १९२२ तक असहयोग के काल में साहित्य-सेवा की ओर दृष्टिपात करने तक का अवकाश न मिला। १९२३ में जब राजनैतिक कार्य कुछ समय को धीमा पड़ा उस समय एक दूसरे ही नाटक 'विश्वासघात' लिखने में लग गया और यह बस्ते ही में बँधा पड़ा रहा। १९२३ से ही कौंसिल का राजनैतिक जीवन आरम्भ हुआ और वह लाहौर कांग्रेस तक चलता रहा। फिर सत्याग्रह-संग्राम छिड़ गया और जेल में ही अवकाश मिला। मैं इस नाटक की हस्तलिखित प्रति को जेल में ले गया था। जबलपुर जेल से ता० २० मई को बुलढाना

जेल में तबादला होने के पश्चात् मेरे एक काव्य के साथ-ही-साथ मई और जून मास में वहीं पर यह परिष्कृत हुआ।

यह सामाजिक नाटक है और इसका कथानक सर्वथा काल्पनिक है। इसके विषय का पता नाम से लग जाता है, अतएव उस सम्बन्ध में मैं अधिक लिखना आवश्यक समझता हूँ।

—गोविन्ददास

नाटक के मुख्य पात्र, स्थान

पुरुष—

शूरसेन : नेहनगर का जमीदार

मोहन : शूरसेन के यहाँ पला हुआ एक युवक

बलदेव : मोहन का मित्र

भोलानाथ : शूरसेन का कर्मचारी

रूपसेन : अयोध्या का मंत्री

चन्द्रसेन : विलासपुर का जमीदार

यशवन्त
दुर्जनसिंह } : चन्द्रसेन के कर्मचारी

स्त्री—

कालिन्दी : शूरसेन की पुत्री

इन्दुमती : कालिन्दी की माता

कौमुदी : शूरसेन की भतीजी

उमा : भोलानाथ की स्त्री, कालिन्दी की सखी

रूपवती : रूपसेन की पुत्री

रेवती : रूपवती की सखी

प्रमोदिनी : एक सन्यासिनी

कुमारिकाश्रम की अध्यापिकाएँ, बालिकाएँ, मुसाहब, चपरासी आदि।

स्थान—अयोध्या, नेहनगर, विलासपुर

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान : शूरसेन के उद्यान का एक भाग

समय : सन्ध्या

[उद्यान ग्रामीण ढंग का किन्तु सुन्दर बना हुआ है। बीच में एक कुण्ड है। कुण्ड के पानी में कमल है। कुण्ड के चारों ओर फूलों की क्यारियाँ है, जिनमें गुलाब, बेला, जुही लगी है। बायीं ओर दूर पर आम के वृक्ष दिखायी देते हैं। दाहिनी ओर एक लोहे का बंगला बना है, जो चमेली की लता से छाया हुआ है। इसी बंगले में एक बेंच पर कालिन्दी बैठी हुई है। पास ही में उमा बैठी है। कालिन्दी लगभग १८ वर्ष की कुछ साँवले रंग की साधारणतया सुन्दर दुबली और ठिगनी युवती है। नीबू रंग की साड़ी और धानी रंग की चोली पहने है। आभूषण हिन्दुस्तानी, पुराने ढंग के, सुवर्ण के हैं। उमा लगभग ३५ वर्ष की, गौर वर्ण की ऊँची और कुछ मोटी साधारणतया सुन्दर स्त्री है। धानी रंग की साड़ी और नारंगी रंग की चोली पहने है। आभूषण चाँदी के हैं। दोनों नंगे पैर है।]

कालिन्दी गा रही है—

(राग-पूर्वी)

प्रेम क्या लीला करता है।
हृदय हर पल में हरता है।
सुखमय है या दुख भरा, यही न पड़ता जान;
अल्प अंश भी प्रेम का, पाता कहीं न स्थान;
तदपि कुछ अंकुर धरता है।
प्रेम क्या लीला करता है।
आल्हादित करता नहीं, उपजाता अभिलाष;
मनोमूर्त्ति को मत्त कर, करता शीघ्र निराश;
अहो यह मद क्यों भरता है?
प्रेम क्या लीला करता है।

कालिन्दी : सखि उमा, क्या मैं उनसे प्रेम करती हूँ? जान नहीं सकती। मै उन्हें कैसा समझती हूँ? समझ नहीं सकती। जो कुछ मै उनसे कहना चाहती हूँ, कह नहीं सकती। न जाने मन क्या चाहता है?

उमा : (घबराकर) कालिन्दी, इस प्रकार तो निश्चय ही तुम्हें उन्माद हो जायगा।

कालिन्दी : मुझे तो उन्माद हो ही गया है। यद्यपि बाल्यावस्था से ही हम लोग साथ रहे हैं, पर ऐसी दशा पहले कभी न हुई थी। आजकल तो बस रात-दिन एक इच्छा रहती है, केवल एक।

उमा : वह कौनसी, सखि?

कालिन्दी : उन्हीं का दर्शन करूँ, उन्हीं से बोलूं, उन्हीं की सेवा का अवसर पाती रहूँ; किन्तु यह सब इच्छा मात्र ही है।

उमा : यह क्यों ?

कालिन्दी : इसलिए कि देखने की इच्छा होने पर जी भरकर देख नहीं सकती, बोलने की इच्छा रहने पर भी जी भर बोल नहीं सकती और सेवा की तो बात ही अलग है।

उमा : किन्तु इसमें दोष किसका ?

कालिन्दी : उन आँखों का जो देखते ही झुक जाती हैं; उस वाणी का जो उनका सामना होते ही रुक जाती है; उस मन का जो सेवा करने के लिए अग्रसर नहीं होने देता।

उमा : और ये सब अवयव तुम्हारे ही हैं न ?

कालिन्दी : पर मेरे अधिकार में नहीं हैं, मैं करूँ तो क्या करूँ ?

उमा : दृढ़ होकर अपनी वस्तुओं पर अपना अधिकार करो। (कुछ ठहरकर) अच्छा सुनो, आज तुम्हें एक नयी बात सुनाने आयी हूँ। साहस नहीं होता था कि कहूँ, पर……

कालिन्दी : (चौंककर) कुछ उनके सम्बन्ध में तो नहीं ?

उमा : हाँ, उन्हीं के सम्बन्ध में है।

कालिन्दी : (घबराकर) कैसी…कैसी बात, सखि ?

उमा : आज ही मैंने सुना है कि ठाकुर साहब उन्हें यहाँ

से कहीं भेज देना चाहते हैं।

कालिन्दी : (**मस्तक पकड़कर और फिर ... कुछ सम्हलकर**) सो क्यों ?

उमा : अब तुम विवाह योग्य हुई।

कालिन्दी : (**चौंककर**) विवाह योग्य हुई ! इसका क्या अर्थ ?

उमा : यही कि तुम सयानी हुई, किसी धनी घर की गृह-लक्ष्मी बनने योग्य हो गयीं।

कालिन्दी : विवाह किसको कहते है, उमा !

उमा : (**आश्चर्य से**) तुम अभी यह भी नही जानतीं ?

कालिन्दी : (**लम्बी साँस लेकर**) हम कन्याएँ, विवाह का अर्थ क्या जाने ? हमारे लिए तो विवाह है माता-पिता या कुटुम्बी जनों की इच्छा। वे जिसे हमारी बाँह पकड़ा दें, वही हमारा वर है। मैंने तो विवाह का यही अर्थ सुना है और अब यही समझ भी रही हूँ। (**कुछ ठहरकर**) सखि उमा, आज तुमने मेरे हृदय की उलझन को सहसा सुलझा दिया।

उमा : कैसे ?

कालिन्दी : अभी मैंने अपने हृदय से कई प्रश्न किये थे, किन्तु एक का भी उत्तर नहीं मिल रहा था। पर, अब तुम्हारी एक ही बात से मेरे सब प्रश्नों के उत्तर मिलने लगे।

उमा : (**चकित-सी होकर**) सखि, मैं तुम्हारी इस बात का अर्थ नहीं समझ सकी।

कालिन्दी : न सही। कुछ समय पश्चात् समझोगी। अभी आवश्यकता भी नहीं है, अभी तो अँधेरा हुआ, भीतर चलो।

[कालिन्दी का शीघ्रता से प्रस्थान। उमा भी उसी ओर कुछ सोचते हुए जाती है।]

परदा गिरता है।

दूसरा दृश्य

स्थान : शूरसेन के मकान में मोहन का कमरा

समय : सन्ध्या

[कमरा देहात के जमीदारों के बड़े-बड़े मकानों के सदृश रंगा हुआ है। मोहन और बलदेव का प्रवेश। मोहन लगभग बाईस वर्ष का गोरा, ऊँचा, भरे हुए मुख और शरीर का अत्यन्त सुन्दर युवक है। ढीली बाँह का कुरता और धोती पहने, नंगे सिर है। बाल बड़े-बड़े हैं। छोटी-छोटी मूँछें हैं। बलदेव लगभग बीस वर्ष का गेहुँए रंग का कुछ मोटा और ठिगना साधारणतया सुन्दर युवक है। कपड़े मोहन के सदृश हैं, पर सिर पर दोपलिया टोपी है। टोपी के चारों ओर बड़े-बड़े बाल लहरा रहे है। रेख निकल रही है।]

मोहन : बाल्यावस्था का पूरा ध्यान तो नहीं है, बलदेव, फिर भी, उस समय ऐसी दशा न थी। संसार के प्रत्येक पदार्थ में एक प्रकार का सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता था। हर वस्तु में स्वाभाविक प्रेम का अनुभव होता था। मुझे ही क्यों, तुम्हारी और कालिन्दी की भी तो यही दशा थी। तुम्हीं कहो, वह कैसा महान् सुख था।

बल्देव : बाल्यावस्था बाल्यावस्था ही है, मोहन, वह सुख फिर जीवन में प्राप्त नहीं होता।

मोहन : परन्तु, मित्र, कालिन्दी को तो इस अवस्था में भी कदाचित् वही सुख प्राप्त है। तभी तो देखो, उसे मेरे इस प्रेम का ध्यान ही नही। हाँ, मेरी दशा सर्वथा भिन्न हो गयी है।

बलदेव : कैसी ?

मोहन : मुझे सर्वत्र कालिन्दी ही कालिन्दी दृष्टिगोचर होने लगी है। सूर्य और चन्द्र की किरणों की चमक, तारों के झिलमिलाते हुए प्रकाश, विद्युत् की द्युति, बादलों के बदलते हुए रंगों, इन्द्र-धनुष के विविध वर्णों, चलती हुई वायु के मधुर अलाप, शान्ति से बहती हुई सरिताओं, झर-झर करते हुए झरनों, पानी से भरे हुए सरोवरों के गुलाबी और श्वेत कमलों, पक्षियों के गान और भ्रमरों की गुंजाहट, पुष्पों की क्यारियों और लहलहाती हुई लताओं, इतना ही क्यों, सारे विश्व में कालिन्दी ही कालिन्दी दिखती है। किसी मे उसका वर्ण, किसी में उसकी प्रभा, किसी में उसका शब्द, प्रत्येक पदार्थ में उसकी किसी-न-किसी समानता का अनुभव होता है। किन्तु उसकी तो यह दशा नहीं है।

बलदेव : मुझे विश्वास है कि उसकी भी ठीक यही दशा होगी; प्रेम से प्रेम की उत्पत्ति होती ही है।

मोहन : हाँ, सुना और पढ़ा तो मैंने भी यही है। पर अभी इसकी सत्यता का अनुभव नहीं हुआ। (कुछ ठहर-कर) कह नहीं सकता, मित्र, कि मुझे जो इस प्रकार सर्वत्र कालिन्दी ही कालिन्दी दृष्टिगोचर होने लगी है सो यह इन बाहरी वस्तुओं का आघात मेरे हृदय में कालिन्दी की मूर्त्ति को चित्रित कर देता है अथवा मेरे हृदय पर, अब पूर्ण रूप से कालिन्दी का जो चित्र अंकित हो गया है, वही संसार की सब वस्तुओं पर मै आरोपित करता हूँ ? संसार की ये वस्तुएँ मुझे कालिन्दी का स्मरण दिलाती हैं अथवा कालिन्दी का स्मरण और चिन्तन संसार को कालिन्दीमय कर देता है ? जो कुछ हो, कालिन्दी को इसकी तनिक भी चिन्ता नही।

बलदेव : मै मनोविज्ञान का ज्ञाता तो नही हूँ, परन्तु इतना जानता हूँ कि आघात का प्रतिघात हुए बिना नहीं रहता।

मोहन : तुमने नही सुना क्या? शूरसेन जी मुझे यहाँ से कहीं भेज देना चाहते है।

बलदेव : मैने तो तुम से कालिन्दी के हृदय की बात कही। शूरसेन के हृदय से तुम कालिन्दी के हृदय की परख क्यों करना चाहते हो ?

मोहन : जो कुछ हो; मै नहीं चाहता कि कालिन्दी का जीवन मेरे कारण दुःखमय हो। वह श्रीमान् की

पुत्री है, उसके योग्य कोई श्रीमान् ही हो सकता है, मैं नहीं। मैं एक साधारण मनुष्य, उसके पिता के यहाँ का अन्न पाकर पला हुआ मनुष्य, मैं किस प्रकार उसे प्राप्त करने का दुस्साहस कर सकता हूँ; बस, अब एक वार जाकर उसके पुनीत दर्शन और कर लेता हूँ, कदाचित् यह अन्तिम वार होगा।

[मोहन का जल्दी से प्रस्थान। उसके पीछे धीरे-धीरे बलदेव भी जाता है।]

परदा उठता है।

तीसरा दृश्य

स्थान : शूरसेन का उद्यान

समय : सन्ध्या

[कालिन्दी और उमा बैठी है ।]

कालिन्दी : हूँ, क्या सुनती हूँ—मै विवाह योग्य हुई, इस कारण वे यहाँ से हटाये जायँगे ? सो क्यों, विवाह योग्य हुई मैं, और हटाये जायँगे वे। बीमारी आयी मुझे और कड़वी औषधि दी जायगी उन्हें। अपराध हुआ मुझ से और दण्ड मिलेगा उन्हें। विकास हुआ मेरा और निर्वासन होगा उनका ! क्या यही संसार का न्याय है ? **(मोहन प्रवेश करता है, किन्तु दोनों को सूचित किये बिना ही एक ओर खड़ा हुआ आश्चर्य से उसकी बातें सुनता रहता है। वे दोनों उसे नहीं देखतीं, कालिन्दी कहती जाती है।)** ओह ! कैसा भयानक समाचार है, किन्तु इस भयानकता में भी बहुत बड़ा महत्त्व है।

उमा : भयानकता मे भी महत्त्व ? इसका क्या अर्थ, कालिन्दी ?

कालिन्दी : इसी भयानकता ने मेरे हृदय के चक्षु खोल दिये। मेरी हृदय की कायरता को, झूठी लज्जा को, नष्ट कर दिया। इतना ही नही। आवश्यकता ने मुझे सामना करने का बल तक दे दिया। उनके सन्मुख देखने और बोलने में जो एक प्रकार की अनजान भयानकता जान पड़ती थी, वह उनके वियोग से उत्पन्न होने वाली भावी भयानकता में विलीन हो गयी। सखि, अब मुझे ज्ञात हो गया कि वे मोहन मेरे कौन हैं।

उमा : कौन हैं, सखि ?

कालिन्दी : मेरे सर्वस्व। विवाह अग्नि के चारों ओर परिक्रमा है या दो हृदयों का सम्मिलन ? जिस विवाह पर धर्म के नाम पर समाज की मोहर नहीं लगी, उसे मैं विवाह न मानूँ, यह मेरे लिए सम्भव नहीं। मैं तो सच्चे हृदय की मोहर चाहती हूँ। सखि, समाज का नियन्त्रण तो ईश्वर के नियन्त्रण से भी आगे जाना चाहता है। सामाजिक नियन्त्रण की इस सीमा को स्वीकार करना कायरता है।

उमा : पर, सखि ·········

मोहन : (आगे बढ़कर) कालिन्दी! यह क्या कह रही हो ? सम्हलो ! हृदय सम्हालो ! यह तो एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन है। इसका परिणाम गृह और समाज से संघर्ष–महासंघर्ष–है।

[उमा धीरे से चली जाती हैं। कालिन्दी खड़े होकर लज्जा से सिर झुका लेती है।]

मोहन : क्यों, कालिन्दी, चुप क्यों हो गयीं ? अभी तो बड़ी वीरता से बोल रही थीं ? मुझे देखते ही चुप्पी क्यों ? (**बैठ जाता है।**)

कालिन्दी : (**साहस से**) नही, अब चुप न रहूँगी। अब तो आप के सामने चुप रहना भी कायरता है। (**बैठते हुए**) आप कहते हैं मेरे मत का परिणाम संघर्ष है। बड़ी अच्छी बात है। इस समाज से युद्ध ही करूँगी।

मोहन : यह तो ठीक है, कालिन्दी, परन्तु संघर्ष-क्षेत्र को चुनने में बुद्धिमत्ता की आवश्यकता होती है।

कालिन्दी : दासता को, और दासता में भी ऐसी सामाजिक दासता को, जो मनुष्यता तक का गला घोट देने के लिए आगा-पीछा न करे, मिटाने से अच्छा और कौनसा संघर्ष-क्षेत्र मिल सकता है ? इस क्षेत्र में तो कर्त्तव्य के साथ-साथ प्रेममय निजानन्द की प्राप्ति भी है, जिसके अभाव में कर्त्तव्य का कोई मूल्य नही।

मोहन : कालिन्दी ! कालिन्दी ! यह तुम क्या कर रही हो, क्या सोच रही हो ?

कालिन्दी : वही जो, आज तक आप से सुना है, सीखा है, और समझा है।

मोहन : (**लम्बी साँस लेकर**) यदि यही बात है तो आज में

तुम्हें एक दूसरी बात समझाता हूँ। अब तक मैंने तुम्हें जिन सिद्धान्तों को समझाया था, आज उन सिद्धान्तों का व्यवहार समझाता हूँ।

कालिन्दी : तो सिद्धान्तों और उनके व्यवहार में अन्तर है ?

मोहन : सिद्धान्त व्यवहार के समय सदा सीमाबद्ध हो जाते हैं और आज तो सामाजिक स्थिति ऐसी नही है कि सारे सच्चे सिद्धान्तों को व्यवहार में परिणत किया जा सके। यदि उन्हें व्यवहार मे परिणत किया जायगा तो ऐसा भयंकर संघर्ष होगा कि व्यक्तिगत सुख के स्थान पर क्लेश और दुख ही हाथ लगेंगे। मै नही चाहता कि तुम अपना सारा जीवन दुखमय व्यतीत करो। अत: जिन बातों के व्यवहार से तुम्हारा जीवन सुखी होगा आज उन्हें समझाना चाहता हूँ। देखो, कालिन्दी ···

कालिन्दी : क्षमा कीजिए, इसके लिए तो अब बहुत विलम्ब हो चुका। आप चाहे सिद्धान्त और व्यवहार को अलग-अलग रख सकें, पर मेरे लिए यह सम्भव नहीं। व्यवहार के बन्धनों को मेरे प्रेम की तीक्ष्ण धारा ने कभी का तोड़ दिया है।

मोहन : (कुछ चकपकाकर) नही, नहीं, मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि सिद्धान्तों और उनके व्यवहार को सदा अलग रखा जाय, पर······

कालिन्दी : पर का क्या अर्थ है ?

मोहन : (लम्बी साँस लेकर) पर का अर्थ, कालिन्दी ! पर का अर्थ सुनना ही चाहती हो ?

कालिन्दी : अवश्य ।

मोहन : तो फिर सुनो । कालिन्दी, मै तुम्हें दुखी नहीं देखना चाहता। बचपन से ही तुम्हें सदा सुखी देखने का प्रयत्न किया है । स्मरण नही है, जब हम लोग मिट्टी के घर बनाते थे, उस समय जब तुम्हारे घर अच्छे न बनते और तुम मेरे घरों की ओर कातर दृष्टि से देखने लगती तब मै तुम्हें उनसे खेलने को कहता और स्वयं तुम्हें खेलते देखकर आनन्द पाता था ?

कालिन्दी : (लम्बी साँस लेकर) स्मरण है ।

मोहन : और भी स्मरण करो । मेलों में जब हम मिट्टी के खिलौने लाते और जब तुम अपने खिलौने तोड़ डालती, तब मै तुम्हे अपने खिलौने दे देता और स्वय तुम्हारे खेल ही में आनन्द का अनुभव करता था ।

कालिन्दी : वह भी स्मरण है ।

मोहन : और भी तुम्हारे लिए फूल के गजरे गूँथ देता, गुल-दस्ते बना देता और न जाने इसी प्रकार क्या-क्या करता था । तुम्हें सन्तुष्ट, तुम्हें प्रसन्न, तुम्हें सुखी देखकर मुझे आनन्द हो जाता था ।

कालिन्दी : ठीक । और आज ?

मोहन : आज ? आज जब देखता हूँ कि तुम्हारा जीवन

दुखी होना चाहता है और वह मेरे कारण, तो मैं सारे सिद्धान्तों को और अपने को भी तुम्हारे सुख के लिए वलि कर सकता हूँ, कालिन्दी, मैं तुम्हें दुखी नही देख सकता।

कालिन्दी : पर क्या, आप समझते हैं कि आपके स्थान पर किसी दूसरे से प्रेम करने और इसके लिए सामाजिक नियन्त्रण में रहकर उसकी दासता करने से मुझे सुख मिल सकता है ? ऐसा है तो आपके सिद्धान्तों की चर्चा भ्रम है। आप कदाचित् नहीं जानते कि स्त्रियों का हृदय कैसा होता है।

मोहन : कैसा होता है, कालिन्दी ?

कालिन्दी : वह अत्यन्त कोमल है, लज्जाशील है, संकटों से दूर–बहुत दूर–रहना चाहता है, तथापि जव उनके प्रेम का प्रश्न उपस्थित होता है, उसमें वाधा आती है, तव···(**चुप हो जाती है।**)

मोहन : तव, कालिन्दी ?

कालिन्दी : सुनेगे ही ?

मोहन : मेरे 'पर' का अर्थ तुमने सुन लिया। अपने 'तव' का अर्थ मुझे न सुनाओगी।

कालिन्दी : अच्छा सुनिए तव— तव वह वर्षा की नदी का स्वरूप धारण करता है। कोई वाधा, कोई वस्तु उसके मार्ग को नही रोक सकती। ऐसे ही अवसरों पर अवला स्त्रियाँ सवला हो जाती हैं; कोमल

स्त्रियाँ पाषाण-खण्ड के सदृश कठोर हो जाती हैं; लज्जा उड़ जाती है; बड़ी से बड़ी आपत्ति, आयुधों की तीक्ष्ण धारा, फाँसी की प्राण-हरण करने वाली रस्सी और चिता की अग्नि को भी वे हँसते-हँसते सह सकती हैं। ऐसे समय में पुरुषों के हृदय से स्त्रियों का हृदय कहीं अधिक बलवान हो जाता है। तब गृह-संघर्ष, समाज-संघर्ष, गृह-त्याग, समाज-त्याग कौन बड़ी बाधाएँ है ? आप क्या इन बातों को नहीं जानते ? या जानते हुए भी मेरे प्रेम-प्रवाह के बल की थाह लेना चाहते है ?

[नेपथ्य में "कालिन्दी ! अँधेरा हो रहा है, घर आ" शब्द होता है।]

कालिन्दी : (**चौंककर नेपथ्य की ओर देख फिर सोहन की ओर देख खड़े होकर**) आयी, माँ। कहिए, कुछ तो कहिए। (**सोहन का उत्तर न पाकर**) अच्छा जाने दीजिए। आपके उत्तर का मैं क्यों मार्ग देखूँ ? मुझे जो कुछ कहना है मैं तो आज लज्जा छोड़ कह ही डालती हूँ। (**सोहन की ओर तृषित नेत्रों से देखकर धीरे-धीरे**) हृदयेश ! जो भाव बहुत दिनों से हृदय में छिपा हुआ था, जो सम्बोधन अब तक लज्जावश न हो सका था, वही भाव आज प्रकट होने तथा उसी सम्बोधन से आपको सम्बोधित करने से हृदय का भार हलका हुआ। बस, यही

विनय है कि मुझे सर्वथा अपनी ही समझना; भूल न जाना। पिता जी इस शरीर के सम्वन्ध को रोक सकते हैं, अन्तःकरण के सम्मिलन को नहीं। पिताजी आपको इस घर से हटा सकते हैं, पर आपकी जो मूर्ति इस हृदय-मन्दिर मे प्रतिष्ठित हो चुकी है उसे, यह पिता क्या, जगत्-पिता भी हटाने में असमर्थ है।

मोहन : (खड़े हो व्याकुलता से) कालिन्दी, तुम जीतीं मैं हारा। तुम सवल हो, तुम निर्भय हो, तुम प्रेम की प्रवाहिनी विशाल गंगा हो। यह मोहन उस गंगा का एक क्षुद्र यात्री मात्र है। संसार की कोई आपत्ति उसे अव अपने मार्ग से च्युत न कर सकेगी।

[कालिन्दी तृषित दृष्टि से मोहन की ओर देखती हुई जाती है। मोहन भी धीरे-धीरे सिर नीचा किये और हाथों को मलता हुआ जाता है। एक आम के वृक्ष की आड़ से यशवन्त और दुर्जनसिंह निकलते हैं। यशवन्त लगभग साठ वर्ष का लम्बा, गोरा और दुबला आदमी है। सफेद मूँछें और छोटी दाढ़ी है। अचकन और पाजामा पहने है, सिर पर दोपलिया टोपी। दुर्जनसिंह लगभग तीस वर्ष का साँवला कुछ मोटा और ठिगना आदमी है। काली मूँछें है। कुरता और धोती पहने है। वड़े-वड़े वाल हैं, और दोपालिया टेढ़ी टोपी लगी है। गले में वेले की दो मालाएँ हैं।]

दुर्जनसिंह : समझे, भाई यशवन्त, यहाँ भी ऐसी आग भड़काऊँगा

कि···बस······ह ! ह ! ह ! ह ! बस पर ही अटक गया; उपमा या उत्प्रेक्षा कुछ न सूझी। न जाने इन कवियों के मस्तिष्क में कैसी पवनचक्की या पनचक्की या फ्लावर मिल चलती है, कि धड़ाधड़, नहीं, नहीं, एकदम सरपट–घुड़दौड़ के सदृश–हः, हः, हः, हः, उपमा या उत्प्रेक्षा या दोनों ही निकल पड़ती हैं। नहीं, नहीं, पिस-पिसकर निकलने लगती हैं। ऊँ हूँ, बहने लगती है। लो यह भी ठीक न हुआ तो·········ठीक स्मरण नहीं आता कि इस स्थान पर कौनसी क्रिया ठीक होगी ?

यशवन्त : पर आपने किसकी क्रिया करने की ठानी है, दुर्जन-सिह जी ?

दुर्जनसिंह : बीच मे क्यों बोलते हो जी ? इस समय कविता की बात हो रही है। हाँ, तो कविता करना कुछ हँसी थोड़े ही है। किन्तु देखो, प्रयत्न करने से कितनी शीघ्र सफलता हुई। पवन चक्की, पनचक्की, फ्ला-वर मिल, घुड़दौड़, कितनी उपमाएँ, नहीं उत्प्रेक्षाएँ, ऊँ हूँ उपमाएँ, नहीं, नहीं उत्प्रेक्षाएँ···समझ नहीं पड़ता कि उपमाएँ कहूँ या उत्प्रेक्षाएँ ? जो कुछ हो, पर ये घास के पूलों के समान कितनी इकट्ठी हो गयी। बस इसी प्रकार प्रयत्न करके कवि बनूँगा।

यशवन्त : जब बनना तब बन जाना, किन्तु इस समय क्या इच्छा है, यह तो कहिए।

दुर्जनसिंह : इस समय, अजी, इस समय, अच्छी-अच्छी रमणियाँ प्राप्त······फिर भूल हुई, कोई दूसरी क्रिया चाहिए ······हाँ तो, अच्छी-अच्छी रमणियाँ······या सुन्दरी नहीं-नहीं, सुन्दरियाँ, दोनों वहुवचन चाहिएँ, दोनों शब्द ही उपयुक्त हैं, सर्वथा ठीक हैं, ढूँढ़कर, खोज-कर, लाकर, देकर, हः, हः, हः, हः, कैसा अच्छा अनुप्रास मिला और यमक भी······चन्द्रसेन से इनाम···अररररर यावनी शब्द आ गया, हाँ तो पारितोषिक प्राप्त करता हूँ, और फिर जानते हो, महाशय, फिर क्या होगा ?

यशवन्त : मैं तुम्हारी लीला क्या जानूं, भाई।

दुर्जनसिंह : तो सुन लो; कवि वनने के पश्चात् ··· अच्छे-अच्छे वृत्त-छन्द-पद्य-दण्डक बनाकर उपहार प्राप्त करूँगा। हः, हः, हः हः, पारितोषिक और उपहार दोनों कैसे अच्छे शब्द हैं। उन्नति होती जाती है। अलंकार और शब्द दोनों का भण्डार मस्तिष्क में भर रहा है। हाँ तो इस प्रकार डबल आमदनी अररररर यावनी शब्द आगया, साथ ही आँग्ल भी ! दुहरे विदेशी। डबल के स्थान पर चाहिए- द्विगुण, द्विगुण; द्विगुण कैसा अच्छा शब्द स्मरण आया। हाँ तो, द्विगुण आमदनी, गंगा मदार का जोड़ा है, क्या करूँ आमदनी के स्थान पर कोई शब्द ही स्मरण नहीं आता; अच्छा धीरे-धीरे उन्नति होगी।

हाँ तो द्विगुण आमदनी आय……अहह ! आ गया अन्ततोगत्वा आ ही गया—आय हो जायगी। इतना ही नहीं होगा, द्विगुण प्रतिष्ठा भी होगी। सच कहा है — दुनिया झुकती है, झुकाने वाला चाहिए; नहीं नहीं, नर करणी करे तो नर से नारायण होय। समझे, महाशय ? अर्थात् संक्षेप में चन्द्रसेन जी को नेहनगर का नाका नापना ही पड़ेगा। समझे ?

यशवन्त : (घबराकर) अब समझ गया, समझ गया; बहुत देर में समझा; बड़े प्रयास से समझा; पर सब कुछ समझ गया।

दुर्जनसिंह : तो मेरी कविता में प्रसाद गुण भी है ?

यशवन्त : यहाँ भी आप बण्टाढार किये बिना न रहेंगे।

दुर्जनसिंह : (क्रोध से) तुम चुप रहो जी, तुम्हें पूछता ही कौन है ? मेरी कृपा है, जो आज ले आया हूँ। चलो फिर विलासपुर और आरम्भ हो कार्य।

यशवन्त : भगवान् तुमसे संसार की रक्षा करे।

[दुर्जनसिंह का जल्दी से प्रस्थान। यशवन्त का भी धीरे-धीरे उसी ओर प्रस्थान।]

परदा गिरता है।

चौथा दृश्य

स्थान . एक जंगली मार्ग

समय · प्रात काल

[मोहन और बलदेव का प्रवेश ।]

मोहन : दुख है, सर्वत्र दुख है, तब मुझे ही सुख कहाँ से मिल सकता है ? कल तक कालिन्दी के प्रेम की इच्छा का दुख था, आज .

बलदेव : (बात काटकर) यह दुख तो कल दूर हो गया, मित्र ! अब तो दूसरे पाठ का प्रारम्भ होता है ।

मोहन : साथ ही उससे भी बड़े दुःख का आरम्भ ।

बलदेव : कैसा ?

मोहन : कल तक मुझे केवल अपने सुख की चिन्ता थी, पर आज से अपने साथ-साथ कालिन्दी के सुख की चिन्ता का भार भी मुझ पर ही आ पड़ा । एक सुख की प्राप्ति ने मानो दुहरे दुःख को जन्म दिया है । इसी-लिए मै कहता हूँ, सर्वत्र दुख है । फिर समझ में नही आता कि संसार में प्रेम की इतनी गाथा क्यों गायी जाती है ? जिस प्रेम से स्वयं प्रेमी को सुख

नहीं होता, जिस प्रेम से किसी का उपकार नहीं होता, उस प्रेम का इस संसार में इतना उच्च स्थान क्यों है ?

बलदेव : मित्र, तुम्हारी वातों का उत्तर मेरी शक्ति के वाहर है।

[नेपथ्य में गान होता है।]

मोहन : कौन गा रहा है ? यह तो माता प्रमोदिनी जी जान पड़ती हैं।

(राग मालकंस)

है प्रेम लालसा में अन्तर अतीव भारी।
दिन तुल्य सुखद यह, वह निशि तुल्य भीतिकारी।

बलदेव : तब मैं तो जाता हूँ। वे ही आ रही हैं। उनकी बात कभी मेरी समझ में नहीं आती। (प्रस्थान)

[प्रमोदिनी का प्रवेश। मोहन अभिवादन करता है। प्रमोदिनी आशीर्वाद देती है। प्रमोदिनी लगभग सत्तर वर्ष की गौर वर्ण की ऊँची और साधारणतया मोटी स्त्री है। लम्बी श्वेत रंग की जटा कमर तक फैली हुई है। एक भगुआ रंग का झोला कंधे से पैर तक लम्बा पहने हैं। हाथ में कमण्डल और पैर में खड़ाऊँ हैं। वृद्धावस्था का कोई प्रभाव मुख पर दृष्टिगोचर नहीं होता और मुख पर कान्ति है।]

मोहन : माता, आज बहुत दिन पश्चात् कृपा हुई और वह भी ठीक समय। इस समय मैं वड़े दुख में पड़ा हूँ।

प्रमोदिनी : (मुस्कराकर) कैसा दुख, वेटा ?

मोहन : जब संसार ही दुखमय है तब मैं किस प्रकार सुखी रह सकता हूँ। प्रेम-पथ के पथिकों को सुख कहाँ ?

प्रमोदिनी : ऐसी बात तो नहीं है, बेटा; जो संसार में सुख से रहना चाहें, उन्हें कभी दुख नही हो सकता, और प्रेम-पथ मे दुख कैसा ? प्रेम-पथ के पथिक तो कभी दुखी हो ही नहीं सकते। हाँ, लालसा में अवश्य दुख होता है। संसार में लोग लालसा को ही अधिकतर प्रेम समझते है। पर यथार्थ में यह ठीक नहीं है। सुन (गाती है।)

(राग—मालकंस)

है प्रेम लालसा में अन्तर अतीव भारी।
दिन तुल्य यह सुखद, वह निशि तुल्य भीतिकारी।
पर्वत समान थिर यदि, पीयूप पुंज यह है,
तो राशि रेणु सम वह, विप की बुझी कटारी।
है व्याप्त व्योम सा यह, संकीर्ण वह सुई सी,
चुभती रहे हृदय में, लगती तथापि प्यारी।
यह नीर तुल्य निर्मल, वह कीच तुल्य मैली,
यह हृदय शान्तिदायक, वह चित्त धैर्य-हारी।
यह रूप ईश का है, स्वर्गीय सौख्यदाता,
माया समान वह है, संसार में विकारी।

वत्स, प्रेम और लालसा में आकाश-पाताल का अन्तर है। प्रेम में कामना नहीं है, वासना नहीं है। जहाँ कामना नहीं, वासना नहीं, वहीं सुख है।

ऐसा सुख केवल प्रेम से उत्पन्न होता है। इस प्रेम का पात्र समस्त विश्व है। ऐसे प्रेमी को कभी वियोग का दुख नही, भय नहीं, क्रोध नहीं, लोभ नही, मोह नहीं, कभी चिन्ता नहीं, कभी द्वेष नहीं। प्रेमी को किसी वस्तु विशेष की इच्छा नहीं। जहाँ कोई इच्छा हुई, वहाँ प्रेम नहीं रहा; वहाँ लालसा है। कामना और वासना का बन्धन ही पराधीनता है। यह पराधीनता ही दुख की जड़ है। प्रेम और लालसा मे भारी अन्तर है। इसमें जितना भी सुख है, उसमे उतना ही दुख है।

मोहन : परन्तु यह तो अद्भुत प्रेम है, माता !

प्रमोदिनी : नही, बेटा, अद्भुत तो नहीं है। यही प्रेम स्वाभाविक प्रेम है।

मोहन : **(आश्चर्य से)** अच्छा !

प्रमोदिनी : इस स्वाभाविक और सुखमय प्रेम का अनुभव आरम्भ में सभी को होता है। जब तक मनुष्य की बाल्यावस्था रहती है, और उसके हृदय पर किसी बाहरी वस्तु विशेष का आवरण या प्रभुत्व नहीं जम जाता, अथवा भीतरी अहंकार प्रबल नहीं हो जाता, तभी तक वह इसका अनुभव करता है। इसीलिए, बेटा, यह कहावत प्रचलित-सी हो गयी है कि संसार में बालक के समान कोई सुखी नहीं होता। तू यदि अपनी ही बाल्यावस्था का स्मरण करेगा, तो तुझे

स्मरण हो आएगा, कि तुझे भी उस समय इसका अनुभव होता था।

मोहन : (कुछ सोचकर) हाँ, माता, उस समय तो होता था, पर आज तो नहीं होता।

प्रमोदिनी : क्योंकि वाहरी आवरण और भीतरी अहंकार ने उस अनुभव को आच्छादित कर दिया है।

मोहन : हो सकता है, पर आज तो उस आवरण का निवारण वड़ा कठिन समझ पडता है।

प्रमोदिनी : आवरण मोटा हो जाने से आरम्भ मे उसका निवारण कठिन प्रतीत होगा ही, पर प्रयत्न करने पर यह कठिनता दूर हो जायगी। हाँ, इसके लिए एक वड़े भारी वलिदान की अवश्य आवश्यकता पड़ेगी।

मोहन : किस प्रकार के वलिदान की, माता ?

प्रमोदिनी : अपने स्वार्थ के वलिदान की। जिस मनुष्य को इस प्रेम-पथ पर चलना होता है उसे स्वार्थ का त्याग कर देना पड़ता है। इस नष्ट होने वाले शरीर की, इन अनित्य इन्द्रियों की लालसा से सदा के लिए उसे अपना मुख मोड़ लेना पड़ता है।

[मोहन चुप रहता है]

प्रमोदिनी : क्यों, वेटा, इतना गम्भीर क्यों हो गया ?

मोहन : मै सोच रहा हूँ, विचार कर रहा हूँ कि मुझमें इतना साहस है या नही कि मैं इस मार्ग पर चल

सकूँ। मन से पूछ रहा हूँ कि इस अनन्त सुख को प्राप्त करने का तुझ में वल है, या नही।

प्रमोदिनी : क्या उत्तर मिल रहा है ?

मोहन : (सोचते हुए) कुछ स्पष्ट नहीं। कभी मन इस ओर झुकता है, कभी उस ओर।

प्रमोदिनी : और बुद्धि क्या कहती है ?

मोहन : बुद्धि यही कहती है, कि, रे मन ! दृढ़ होकर उस नित्य सुख को प्राप्त करने का उद्योग कर।

प्रमोदिनी : फिर कुछ तो निश्चय करना ही होगा।

मोहन : (कुछ सोचकर) माँ,मै मन से आजन्म लड़ूँगा और उस अनन्त सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न करूँगा। बुद्धि का निर्णय अब मुझे स्वीकृत है।

प्रमोदिनी : वत्स, धन्य है तू, तेरा साहस धन्य है ! अब तू कभी दुखी नही हो सकता।

मोहन : अच्छा, माता, अब आज से मेरी कार्य-दिशा क्या होगी ?

प्रमोदिनी : कार्य-दिशा ? सुन – (गाती है।)

(राग भैरवी)

स्वार्थ भूल अब, प्रेमी वनकर, प्रेम सभी से ठान।
तजकर भेद-भाव यह सारा, समता सब में मान।
प्रेम रूप हो, विमल प्रेम की, कीर्त्ति सदैव बखान।
अन्त समय तक चल इस पथ पर सफल जन्म तब जान।

मोहन : आज के पश्चात् किसी व्यक्ति या किसी स्थान से

प्रेम करना क्या मेरे पथ से विचलित होना होगा ?

प्रमोदिनी : कदापि नहीं; हाँ, उसमे लालसा का सम्मिश्रण होना अवश्य पथ-भ्रष्ट होना होगा। बेटा, विश्व-प्रेम का पथिक किसी भी व्यक्ति या स्थान से प्रेम कर सकता है।

मोहन : अच्छा।

प्रमोदिनी : विश्व क्या है ? सारे व्यक्तियों और स्थानों की समष्टि ही तो विश्व बनाती है। निकटवर्ती व्यक्तियों और स्थानों पर प्रेम का प्रदर्शन होना स्वाभाविक है, क्योंकि मनुष्य की पहुँच सारे विश्व मे नहीं हो सकती। जिस प्रकार समुद्र की लहर जिस स्थान से उठती है, वहाँ अधिक ऊँची रहती है, और जैसे-जैसे आगे बढ़ती जाती है स्वभावतः छोटी होकर विलीन हो जाती है, उसी प्रकार विश्व-प्रेमी का प्रेम भी निकटवर्ती वस्तुओं और स्थानों पर अधिक प्रदर्शित होता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि शेष विश्व से उसका प्रेम नहीं है। उसके हृदय में किसी से प्रेम, किसी से घृणा, यह नही हो सकता. सब पर प्रेम-दृष्टि उसका स्वाभाविक गुण हो जाता है। समझा, बेटा ?

मोहन : आप सदृश गुरु को पाकर किस शिष्य के हृदय में शंका रह सकती है ? मेरे अन्तःकरण के सारे अन्धकार को आपने दूर कर दिया। जिस प्रेम का धुँधला-

था स्वच्छ बाल्यावस्था में मैंने देखा था उसी को आपने स्पष्ट रूप दिया. मो: अब आशीर्वाद दीजिए, मां. कि आपके बताये हुए मार्ग पर चलकर मैं सच्चे और स्वाभाविक आनन्द को प्राप्त कर सकूं।

[प्रमोदिनी दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद देती हुई जाती है। पीछे-पीछे मोहन का भी प्रस्थान।]

परदा उठता है।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : यशवन्त का मकान

समय : प्रातःकाल

[मकान देहाती ढंग का है। यशवन्त बैठा हुआ है। दुर्जन-सिंह का प्रवेश।]

दुर्जनसिंह : प्रणाम, नमस्कार, राम-राम, जयगोपाल, जय-श्रीकृष्ण, जय रघुनाथ जी की, नमस्ते, जुहार, जय जिनेन्द्र, सत्य श्री अकाल, सलाम, आदाब, तस्लीमात, साहब जी, गुड मार्निंग, आदि-आदि हः, हः, हः, हः।

यशवन्त : (रुष्ट होकर) यह कौनसी नयी लीला है ?

दुर्जनसिंह : अजी महाशय, कविता है, कविता। (बैठकर) एक विषय के लिए कविता जितने (सोचकर) हाँ तो देखो, वह कौनसी बाजी कहलाती है ? (सोचता है) हाँ, हाँ, हाँ, स्मरण आ गया, पर्याय बाजी ! हाँ तो इस बाजी में एक अर्थ के लिए जितने शब्द रखे जायँ, उतनी ही कविता की शोभा बढ़ती है। जैसे – आप ही के लिए लीजिए, कितने शब्दों का

दुर्जनसिंह : अब तक नर्क था, अब आया प्रायश्चित्त। अजी महाशय, यदि हिन्दू रहा तो मरने से पहले एक बार गंगा में नहाकर सब पापों को धो डालूँगा, और मुसलमान हो गया, तो तौबः, तौबः, दो बार कह दूँगा; तब तो स्वर्ग या बिहिश्त मिल जायगा और फिर अब तो हमारे देश में एक धर्म और आया है। क्रिश्चियन हो गया तो मरने के दो पल पूर्व किसी भी लम्बी दाढ़ी वाले पादरी के सम्मुख कनफ़्यूज़न, नहीं-नहीं, देखो, क्या कहते हैं उसे (**कुछ सोचता है**) भूल गया। अच्छा जो कुछ वे कहते हैं, कर लूँगा। फिर तो पैरेडाइज़ मिल जायगा न?

यशवन्त : (**क्रोध में**) चल, हट, पापी, अब कभी मेरे घर न आना।

दुर्जनसिंह : हाः! हा·! हाः! तुमने बुलाया, इसलिए आया। वाह! रे क्रोधवन्त, हसवन्त, रोवन्त, यशवन्त, पशुवन्त हा·! हाः! हाः!

[**दुर्जनसिंह जाना चाहता है; यशवन्तसिंह उसे पकड़कर बैठ जाता है।**]

परदा गिरता है।

छठवाँ दृश्य

स्थान : भोलानाथ का घर

समय : प्रातःकाल

[भोलानाथ का प्रवेश। भोलानाथ लगभग चालीस वर्ष का साँवले रंग का ठिगना आदमी है। काली मूँछें हैं जो ऊपर चढ़ी हुई हैं। अंगरखा और पाजामा पहने है। सिर पर गोल पगड़ी है।]

भोलानाथ : उमा ! उमा !

[उमा का प्रवेश।]

उमा : कहिए, नाथ, आज तो मालिक की हाँ में हाँ मिला कर नही आये हैं।

भोलानाथ : (पैर पटककर) लो, निःसन्देह फिर वही बात। अरे बाबा, मैं तो निःसन्देह काम करते-करते थककर कुछ विश्राम करने यहाँ आया और तुम्हारी खोपड़ी से मुझे देखते ही निःसन्देह फिर वही निकल आया।

उमा : विश्राम तो आप सुख से करें, पर विश्राम के समय ही इन बातों को सोचना भी ......

भोलानाथ : इतना काम, ओह ! एक-दो क्या ? निःसन्देह दस

आदमी भी नहीं कर सकते। सैकड़ों गाँवों की जमींदारी की देखभाल, व्यापार की देखरेख, और इतने पर आज अमुक व्यापारी आया, कल ठेकेदार आ फटका, परसों राजा आये, नरसों ताल्लुकदार पहुँचे, फिर ज़मीदार आ धमके। इन सबकी आव-भगत और सेवा का प्रबन्ध भी निःसंदेह मेरे सिर।

उमा : यह तो⋯ ⋯

भोलानाथ : कल से चन्द्रसेन आये हैं। उनके सत्कार का तो निःसन्देह ठिकाना ही नहीं है। निःसन्देह, आज तक किसी राजा का भी इतना सत्कार नहीं हुआ था।

उमा : यह तो देखती हूँ, कि आपको बहुत काम रहते हैं, और आप उन्हें योग्यता और परिश्रम से करते भी हैं; परन्तु फिर भी आप जो सदा स्वामी की हाँ में हाँ मिलाया⋯⋯

भोलानाथ : (बात काटकर एक परिक्रमा लगा) लो, घूम-फिर कर फिर निःसन्देह वहीं की वहीं, इतना काम करके आया, इतना तुम्हें समझाया, पर उस पर तुम्हारी आपत्ति, निःसन्देह कम न हुई। न जाने स्त्रियों का मस्तिष्क कैसा होता है, जहाँ कोई बात उनके सिर मे घुसी, वहाँ उसका निकलना कठिन क्या निःसन्देह असम्भव हो जाता है। तुम यह निःसन्देह नहीं जानतीं, कि श्रीमानों के साथ किस प्रकार का वर्ताव करना चाहिए।

उमा : किस प्रकार करना चाहिए, नाथ ?

भोलानाथ : निःसन्देह उसी प्रकार जैसा मैं करता हूँ। देखो जहाँ उनकी सम्मति के विरुद्ध कुछ कहा कि उनकी आँखें निःसन्देह आगयीं भौहों पर और भौहें निःसन्देह चढ़ गयीं मस्तक पर। इसलिए हाँ में हाँ निःसन्देह मिलानी ही पड़ती है। यदि मुझमें 'हाँ में हाँ' मिलाने का उच्च गुण न होता तो, निःसन्देह आज में श्रीमान ठाकुर शूरसेन जी का मन्त्री श्रीमान् भोलानाथ जी साहव न कहलाता। **(मूँछों पर हाथ फेरता है)**

उमा : **(उदास भाव से)** नाथ, आप इस दुर्गुण को उच्च गुण समझ रहे हैं। यदि आप एक इसे ही छोड़दें तो सर्वगुणसम्पन्न हो जायँ।

भोलानाथ : **(जोर से)** तुम्हारी समझ में निःसन्देह कभी न आयगा। अरे यदि मुझ में से यह गुण निकल जाय तो सर्वगुणसम्पन्न होने के स्थान पर निःसन्देह निर्गुण अवश्य हो जाऊँगा। फिर मुझ में रह ही क्या जायगा ? **(दोनों हाथ के अँगूठे हिलाता है।)**

उमा : **(दुःख से)** तो फिर आप इसे न छोड़ेंगे ?

भोलानाथ : **(खीझकर)** और तुम घड़ी-घड़ी टोकना न छोड़ोगी ?

उमा : **(विवश होकर)** अच्छा यह भी अभी जाने दीजिए, यह वताइए कि चन्द्रसेन किस लिए आये हैं ?

भोलानाथ : हाः ! हाः ! हाः ! हाः ! किस लिए आयें हैं ! निःसन्देह

आनन्द करने के लिए आये हैं और किस लिए आये हैं।

उमा : नहीं, मुझे कुछ सन्देह होता है।

भोलानाथ : कैसा सन्देह ?

उमा : आपने कहा न, कि उनका बड़ा सत्कार हो रहा है।

भोलानाथ : सो निःसन्देह होने दो। उससे तुम्हारा जी क्यों जलता है ?

उमा : नही-नही, जी नही जलता; उससे मुझे यह शंका होती है, कि कहीं ठाकुर साहब कालिन्दी देवी का विवाह उनसे करने का विचार न कर डाले।

भोलानाथ : (हर्ष से उछलकर) निःसन्देह अच्छा कहा। वाह ! वाह ! यदि न भी करते होंगे तो मैं अभी जाकर सुझाता हूँ; विश्राम-इश्राम कुछ नहीं, तत्काल वहाँ चला। जैसा धनवान जामाता ठाकुर साहब चाहते थे निःसन्देह वैसा ही मिल गया। अब निःसन्देह क्या पूछना है। ऐसी सम्मति देने से ठाकुर साहब निःसन्देह मुझ पर बड़े प्रसन्न होंगे। (उछलता हुआ बाहर जाने लगता है।)

उमा : (आगे बढ़ती है) ठहरिए-ठहरिए, सुनिए भी तो।

[भोलानाथ का शीघ्रता से प्रस्थान। उमा भी—"थोड़ा तो सुनिए, थोड़ा तो सुनिए" कहते हुए पीछे-पीछे जाती है।]

परदा उठता है।

सातवाँ दृश्य

स्थान : शूरसेन का बैठकखाना

समय : प्रातःकाल

[बड़ा-सा कमरा है, हरिया थूथे के रंग से पुता है। देवताओं की बड़ी-बड़ी तस्वीरें और आईने दीवालों पर लगे हैं। छत से काँच की खरबूजे के ढंग की हंडिएँ और गोले लटक रहे हैं। बीच मे मोमबत्ती का झाड़ झूलता है। कमरे में लाल जाजम बिछी है। उस पर मिर्जापुरी गलीचा है। गलीचे के तीन ओर लाल जाजम का कुछ भाग दिखायी देता है। गलीचे के ऊपर गद्दी बिछी है, जिस पर सफेद चादर है। दो मसनद सफेद खोली से ढँके रखे हैं। एक के सहारे शूरसेन बैठा है। गद्दी के नीचे गलीचे पर मोहन बैठा है। शूरसेन के सामने चाँदी का हुक्का चाँदी के थाल में रखा है। लड़ी से मढ़ी हुई सटक है। शूरसेन हुक्का पी रहा है। शूरसेन लगभग पचास वर्ष का गेहुएँ रंगका ऊँचा-पूरा भरे शरीर का आदमी है। सिर और मूँछों के बाल सफेद हो चले है। अचकन और धोती पहने हैं। सिर पर गोल पगड़ी है। भोलानाथ का प्रवेश।]

भोलानाथ : निःसन्देह मै एक ऐसी वात सोचकर आया हूँ जिसे

सुनते ही श्रीमान निःसन्देह प्रसन्न हो जायँगे, पर उसे कहूँगा निःसन्देह एकान्त में। (**बैठता है।**)

शूरसेन : (**हुक्के का धुआँ मुँह से छोड़ते हुए**) अच्छा फिर कहना। (**मोहन से**) तो, बेटा, तुम मानते हो कि जो कुछ मैं कहूँगा, तुम्हारे हित के लिए ही कहूँगा ?

मोहन : हाँ, पिता जी, बड़े जो कुछ कहते हैं भले के लिए ही कहते हैं।

शूरसेन : सच कहा, बेटा, तुम तो सब प्रकार से बुद्धिमान् हो। (**फिर हुक्का पीकर**) अच्छा और साथ ही तुम यह भी मानते हो कि बड़ों की आज्ञा मानना छोटों का कर्त्तव्य है।

मोहन : हाँ, पिता जी।

शूरसेन : बहुत-ठीक, बहुत-ठीक ! (**फिर हुक्का पीकर**) और क्यों, बेटा, मैं यह भी सुनता हूँ कि बड़ों की आज्ञा चाहे अनुचित हो तो भी उसे मानना धर्म है।

मोहन : हाँ, पिता जी, परन्तु धर्म की बात तो सदा विचार-णीय रहती है।

शूरसेन : वाह, बेटा, निःसन्देह तुम बड़े विद्वान् हो। (**हुक्का गुड़गुड़ाते हुए**) अच्छा तो अब मैं तुम्हें एक छोटी-सी आज्ञा देता हूँ।

मोहन : (**हाथ जोड़कर**) कहिए, पिता जी।

शूरसेन : तुम से एक पत्र लिखवाना चाहता हूँ।

मोहन : (**हाथ जोड़कर**) कैसा पत्र ?

शूरसेन : कालिन्दी के नाम एक पत्र इस प्रकार का लिख दो, कि जो वचन आज तक मैंने तुम्हें दिये उन सबको मैं इस पत्र से तोड़ता हूँ। तुमसे और मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं।

[मोहन चौंककर चुप रहता है।]

शूरसेन : क्यों, बेटा ! चौंक कैसे पड़े ?

[मोहन फिर चुप रहता है।]

शूरसेन : (क्रोध से) क्यों चुप क्यों हो, क्या यह पत्र लिखना तुम्हें स्वीकार नहीं है ?

मोहन : (भर्राये हुए शब्द से) सोच रहा हूँ।

शूरसेन : इसमें इतने अधिक सोचने की क्या बात है ?

मोहन : जीवन-मरण की और धर्म-रक्षा की।

शूरसेन : इसमें मरना, जीना और धर्म-रक्षा का कैसा प्रश्न है ?

मोहन : यही कि आपकी यह आज्ञा मेरे पूर्व-निश्चित धर्म-पथ के प्रतिकूल है।

शूरसेन : (उत्तेजित भाव से) किन्तु तू तो यह भी कहता था न, कि बड़ों की आज्ञा मानना कर्त्तव्य है।

मोहन : वहीं तक जहाँ तक कि अपने धर्म पर आघात न पहुँचे।

शूरसेन : (क्रोध से) तो तुझे पत्र लिखना स्वीकार नहीं ?

मोहन : क्षमा कीजिए, पिता जी, मैं आपकी इस आज्ञा का पालन नहीं कर सकता।

शूरसेन : (अत्यन्त क्रोध से खड़े होकर) रे नीच ! मेरे ही घर के टुकड़े खाकर पला है और मेरी ही आज्ञा टालता है ! निकल मेरे घर से !

मोहन । (शान्ति से) आपकी पहली आज्ञा यद्यपि मैं नहीं मान सकता, पर आपकी यह आज्ञा मैं सहर्ष मानता हूँ। पिता जी, इन चरणों को अन्तिम वार नमस्कार कर मैं चलता हूँ । आपने मुझे पाला है । मेरे ऊपर आपके अगणित उपकार है । उनसे मैं इस जन्म में उऋण नहीं हो सकता। सदा आपका अनुग्रहीत रहूँगा, सदा उन उपकारो का स्मरण करूँगा। आशीर्वाद दीजिए कि मै अपने धर्म की आजीवन रक्षा कर सकूँ ।

[मोहन शूरसेन के पैर पड़ने लगता है ।]

शूरसेन : (पैर हटाते हुए) चल हट, मुझसे ही आशीर्वाद चाहता है। तेरा काला मुँह हो, यही आशीर्वाद है। निकल · ···

भोलानाथ : (खड़े हो) निःसन्देह निकल ········

यवनिका

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान : कौमुदी का कमरा

समय : सन्ध्या

[कौमुदी और उमा खड़ी हैं। कौमुदी लगभग सोलह वर्ष की परम सुन्दर युवती है। वस्त्राभूषण कालिन्दी के सदृश हैं।]

उमा : तो तुम समझती हो, कि चन्द्रसेन अवश्य ही कालिन्दी के योग्य है।

कौमुदी : मेरा तो यही मत है। ऐसी सुन्दरता और ऐसा वैभव आज तक देखने में क्या, सुनने मे भी नहीं आया। जैसा सुन्दर चन्द्रसेन नाम है, वैसा ही रूप है और फिर उन जगमगाते हुए जरी के कपड़ों और आभूषणों ने तो उन्हें साक्षात् चन्द्रमा ही बना दिया था। नेह नगर दो-चार आदमी साथ लेकर आ जाते, पर तुमने नहीं देखा कि बाईस मुसाहिब और चालीस नौकर साथ थे। घोड़ों और रथों को देखा था। चाँदी के मढ़े हुए रथ और घोड़ों पर चाँदी का साज क्या किसी के भी पास है ? मैं तो समझती थी कि चाचा जी के पास ही सब कुछ है, पर उनके

सम्मुख चाचा जी भी क्या हैं ?

उमा : (मुस्कराकर) इस वर्णन में तुम एक बात तो भूल ही गयीं कौमुदी, सोने के हुक्के और पानदान तथा सोने के भोजन के वर्त्तनों का तो तुमने उल्लेख ही न किया।

कौमुदी : (रुष्ट होकर) इसमें भी व्यंग ! वहन का और तुम्हारा सिर तो घूम ही गया है। तुम लोगों के सामने तो बोलना कठिन है। तुमने पूछा कि वह वहन के योग्य हैं या नहीं, इसी से मैंने यह सब कहा ; नही तो मुझे क्या पड़ी थी जो तुमसे बोलती। (जाना चाहती है।)

उमा : (रोककर) लो तुम तो अप्रसन्न हो गयीं। मैंने तो एक बात का स्मरण भर दिलाया था जो तुम भूल गयी थी ; यदि तुम्हें उनके इस लम्बे-चौड़े वैभव के वर्णन से पूरा-पूरा आनन्द नही आया हो तो कुछ उनके लाछन सुन लो। मदिरा से चढ़े हुए उनके नेत्र, उसकी सुगन्ध से युक्त मुख, गर्व से भरी हुई बोली, और चन्द्र की बढ़ती-घटती कला के अनुसार ....

कौमुदी : (रोते हुए) नहीं नहीं, तुम लोग मुझे वहुत तंग करती हो। मै चाचा जी से कह दूंगी कि वे मुझे कही भेज दे, या, मै ही कहीं चली जाऊँगी।

उमा : क्षमा करो, वहन, जिस चन्द्र की अतुलनीय शोभा

का वर्णन तुमने किया था उसी के अवशिष्ट गुणों का उल्लेख मैंने भी कर दिया। चन्द्र में लांछन भी शोभा देता है। (कुछ ठहरकर) अच्छा, यह तो बताओ, चन्द्रसेन से और तुमसे भी तो बहुत सी बातें हुई थीं। वे क्या कहते थे ?

कौमुदी : (कुछ शान्त होकर) विशेष कोई बात नहीं हुई। उन्होंने मुझ पर प्रेम अवश्य दर्शाया। बहन के साँवले होने के कारण वे उन्हें विशेष पसन्द नहीं हैं।

उमा : (कुछ मुस्कराकर) तो, कौमुदी, तुम्हारा और उनका ही विवाह क्यों न कर दिया जाय ? चन्द्र और कौमुदी की जोड़ी भी सुन्दर मिल जायगी !

कौमुदी : (लज्जित होकर) छिः छिः कैसी बात करती हो। अब मैं तुम से कभी न बोलूंगी। (जल्दी से जाती है।)

उमा : (आगे बढ़ती हुई) सुनो, सुनो तो, अरे तुम तो भाग ही गयीं। (पीछे-पीछे जाती है।)

परदा उठता है।

दूसरा दृश्य

स्थान . चन्द्रसेन का वैठकखाना

समय रात्रि

[कमरा टेसू के फूल के पीले रंग से रँगा है। सुन्दर-सुन्दर स्त्रियों की बड़ी-बड़ी तस्वीरें और आईने दीवाल पर लगे हैं। छत से झाड़, हंडियाँ और गोले झूल रहे हैं। जमीन पर आगरे की लाल पट्टेदार दरी और उसके तीनों ओर विलायती गलीचे की पट्टियाँ विछी हैं। दरी के बीच में सफेद चादर तनी हुई है। जिस पर वेश्या का नाच हो रहा है। तवलची और सारंगी वाले भी हैं। गलीचे की पट्टियों पर सफेद खोली चढ़ी हुई मसनदों की कतार लगी हुई है। इसके सहारे कई लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्र पहने बैठे हैं। सामने की ओर बीच में एक छोटी-सी गद्दी है जिसके पीछे मसनद और दोनों ओर दो हाथ तकिये हैं। गद्दी तकियों पर मलमल की खोली है जिसके भीतर से कमखवाब चमक रहा है। इस गद्दी पर जरी के किनारी की धोती, काम-दानी के काम का लखनऊ का कुरता पहने और जरी की टोपी लगाये चन्द्रसेन बैठा है। चन्द्रसेन के गले में मोती की कण्ठी और हाथ में जड़ाऊ कड़े हैं। चन्द्रसेन की अवस्था लगभग २२

वर्ष की है। सुन्दर युवक है। मद्य-पान हो रहा है। नाच के पश्चात् गान होता है।]

(राग-बिहाग)

आओ, आओ करें सुख-भोग अभी।
हाय ! हाय ! हो क्यों नित करते, जावेगा क्या साथ सभी।
है चल वसना, सव छूटेगा, फिर न मिलेगा समय कभी।
प्याले पियो, पिलाओ, आओ, होगा जीवन सफल तभी।

[प्रतीहारी का प्रवेश।]

प्रतीहारी : दुर्जनसिंह जी आये हैं, श्रीमान् के पास उपस्थित होना चाहते हैं।

चन्द्रसेन : (मदिरा के मद में चूर) स: स: स: सव मिट्टी में मिला दिया।

एक सभासद : हाँ, जी, सव मिट्टी कर दिया।

दूसरा सभासद : सर्वथा।

चन्द्रसेन : (कुछ ठहरकर) अच्छा, आ-आ-आ-आने दो।

[प्रतीहारी का प्रस्थान और दुर्जनसिंह का प्रवेश। वह प्रणाम करता है।]

चन्द्रसेन : (प्रणाम का उत्तर संकेत से देकर) क: क: क: क: क: कहो, दुर्जन ! कव आये ?

दुर्जनसिंह : आये तो मुझे वहुत विलम्व हुआ, किन्तु श्रीमान् की इस आज्ञा के कारण, कि 'जव तक एक गाना पूरा न हो जाय, किसी के आने की सूचना न करना', मैं द्वार पर उसी प्रकार खड़ा रहा, जिस प्रकार वलि

के द्वार पर वामन भगवान खड़े रहे थे।

चन्द्रसेन : (खीझकर) तु: तु: तु: तुम झटपट काम की वात कह डालो। ये उपमाएँ र: र: र: रहने दो। यहाँ तो, तो सारा मजा कि. कि: कि: किरकिरा हो रहा है।

दुर्जनसिंह : वहुत अच्छा, श्रीमान्, काम और तो इस समय कष्ट देने का कुछ नहीं था, केवल जिस वात का पता लगाने की आज्ञा दी गयी थी, उसी का मैं पालन करके आया हूँ।

चन्द्रसेन : (उत्सुकता से) प··प···प···पालन कर आये ? त: तो, तो तुम मोहन का पता लगा लाये ?

दुर्जनसिंह : भला कोई वात है, कि पता न लगे। पता लगाने में आप मुझे राजा वलि का चेला शुक्राचार्य, नहीं-नहीं भूल गया, संस्कृत में कौनसे भेदिये की वड़ाई की गयी है ? हाँ तो देखिए सोचता हूँ। **(सोचता है।)**

चन्द्रसेन : (खीझकर) फि: फि: फि: फिर यही व: व: व: वात तुम उपमाएँ छोड़कर जो कुछ क: क: कहना हो जल्दी से क: क: कह डालो।

एक सभासद : सव मिट्टी में मिला दिया।

दूसरा सभासद : हाँजी, सव गुड़ गोवर कर दिया।

दुर्जनसिंह : तो मैं संक्षेप से कहकर फिर सव गुड़ शक्कर किये देता हूँ। जान पड़ता है कि श्रीमान् को संक्षिप्त वर्णन ही प्रिय है। अपनी-अपनी रुचि तो ठहरी। किसी को कालिदास का विस्तृत वर्णन पसन्द आता

है और किसी को भूति-भव का संक्षिप्त ।

एक सभासद : (उठकर) अजी आप भूलते है। कालिदास का वर्णन संक्षिप्त है और जिन्हे आप भूतिभव कह रहे हैं उनका नाम है भवभूति; उनका वर्णन है विस्तृत।

चन्द्रसेन : (अत्यन्त रुष्ट होकर) तु: तु: तु: तुम लोगों को हुआ क्या है ? क: क: क: काव्य की बात पूछता कौन है ? च: च: च: चलो बैठो। (वेश्याओं से) तु: तु: तु: तुम लोग गाओ। कोई अ-अ-अ अच्छा गाना गाओ। स:स:स· सब गुड़ मिट्टी कर दिया।

एक सभासद : सब शक्कर गुड़ कर दिया।

[वेश्याएँ गाती है, दुर्जनसिंह बैठ जाता है।]

(तर्ज - मन तू राधाकृष्णा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल)

आहा ! भाग्यवान श्रीमान् जग में चैन उड़ाने आते।
जो मस्तिष्क सुशोभित रहता, मद से गीला नित,
न कि ध्यान योग इन्द्रियजित, वे सिर में कभी गड़ाते।
नित आँखें अति सुकुमारी, रमणी-छवि देखें प्यारी,
न कि भक्ति-घटा अँधियारी, वे उन पर है फैलाते।
जो नाक बड़ी मन भावन, वह सूँघे गन्ध सुहावन,
कर प्राणायाम तपावन, वे उसको नहीं तपाते।
जो कान शंख सम सुन्दर, सुनते है गायन बढ़कर,
न कि धर्म-नीति सुनवा कर, उनको वे वधिर बनाते।
जो ओंठ कमल सम विकसित, वे पान करें अधरामृत,
न कि हरि यश कठिन अपरिचित, वे उनसे कभी गवाते।

कर करें सदा ही कोमल, प्रिय आलिंगन युवती दल,
न कि उन्हें उठाकर प्रतिपल, वे नमस्कार करवाते।
जो चरण बड़े ही मृदुतर, हों शोभित वे गद्दों पर,
न कि इधर उधर या पर घर, वे चक्कर उन्हें खिलाते।

एक सभासद : (दूसरे सभासद का हाथ ठोक) बहुत ठीक, बहुत ठीक, क्या बात है! भाग्यवान श्रीमानों और अभागे निर्धनों में बस यही तो अन्तर है।

दूसरा : भाई, मेरी सम्मति में तो वह श्रीमान् ही नहीं जो ऐसा आनन्द न करता हो।

तीसरा : और क्या, वह तो लक्ष्मी पर बैठे हुए सर्प के तुल्य है।

चौथा : (सिर हिलाते हुए) और, भाई, यदि श्रीमान् भी ऐसा न करें तो फिर निर्धन तो करेंगे ही क्या ?

पाँचवाँ : इसमे क्या सन्देह है ?

छठवाँ : बहुत ठीक, बहुत ठीक।

[बाकी सभासदों का "वाह वाह" करना और सभी का मद्य-पान।]

चन्द्रसेन : दु···दु · दु ·दुर्जनसिंह !

दुर्जनसिंह : (खड़े होकर) श्रीमान् !

चन्द्रसेन : (उसी प्रकार नशे मे) हाँ तो तु-तु-तु तुम मोहन का व···व···व···वृत्तान्त कहते थे न ?

दुर्जनसिंह : जब कह पाऊँ, श्रीमान् ? मेरा कहना तो उसी प्रकार रोक दिया जाता है जिस प्रकार मेघ का प्रकाश सूर्य रोक देता है। ओह मुँह से उल्टी बात निकल ही

जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे खाया हुआ भोजन···

चन्द्रसेन : अ-अ अच्छा, अच्छा अब कहो। इधर-उधर की मत उड़ाओ। पः पः पर कहना संक्षेप में; समझे ?

दुर्जनसिंह : सर्वथा संक्षेप से लीजिए, श्रीमान। संक्षेप में उसने बड़ा उच्च पद प्राप्त कर लिया है, और भारी प्रतिष्ठा पायी है।

चन्द्रसेन : (**आँख खोलकर अचम्भे से**) ऐ! हाँ! हाँ! हाँ। उल्टा तो नहीं कह गये ?

दुर्जनसिंह : नहीं, श्रीमान्, सीधा है।

चन्द्रसेन : पर तु, तु तुमने यह तो बतलाया ही नहीं कि कैसे ?

दुर्जनसिंह : श्रीमान् ने कहा था न कि बहुत संक्षेप मे कहो।

चन्द्रसेन : इतना संक्षेप से नहीं कि पूरी बात ही न जान पड़े। पः पः पूरा वृत्त तो बताओ, पर शीघ्रता से।

दुर्जनसिंह : पूरा वृत्त शीघ्रता से सुन लीजिए। (**बहुत ही जल्दी-जल्दी**) शूरसेन के यहाँ से जाते ही वह अयोध्या गया। वहाँ के मन्त्री ने उसे अपने घर में रख लिया। तब से वह राजसभा में जाने लगा है।

चन्द्रसेन : थ··थ···थोड़ा धीरे।

दुर्जनसिंह : कभी श्रीमान् कहते हैं संक्षेप में कहो, जब संक्षेप से कहता हूँ तब पूरी बात कहने की आज्ञा होती है और वह शीघ्रता से, जब शीघ्र गति से कहता हूँ तब आप कहते हैं धीरे-धीरे कहो। इसमें तो आदमी की दशा चमगीदड़ जैसी हो जाती है।

चन्द्रसेन : भ…भ… भ भाई, न बहुत संक्षेप से हो, न बहुत विस्तार से; न बहुत न धीरे, बहुत शीघ्रता से।

दुर्जनसिंह : बहुत अच्छा; (**उँगली पर गिनते हुए**) अब न संक्षिप्त और न विस्तृत; न शीघ्र और न धीरे, इसी चतुष्पाद प्रणाली से लीजिए। हाँ तो वहाँ से अर्थात् शूरसेन जी के यहाँ से जाकर…

चन्द्रसेन : (**बात काटकर**) य - य - य - यह तो मै सुः सुः सुः सुन चुका हूँ।

दुर्जनसिंह : आपने कहा न कि धीरे-धीरे कहो।

चन्द्रसेन : व - व वहीं से ज -ज जहाँ से मैने सुना नहीं।

दुर्जनसिंह : यह मैं कैसे जानूँ कि आप कहाँ तक सुन चुके है ?

चन्द्रसेन : अ - अ - अ - अयोध्या मे व - व वह राज-सभा में जाने लगा।

दुर्जनसिंह : तो बस अब सुनने को शेप ही क्या रहा ?

चन्द्रसेन : तु - तु तुमने कहा न कि उ - उ उसने बड़ा उ - उ - उ उच्च पद पाया है ?

दुर्जनसिंह : यह पद क्या नीचा है।

चन्द्रसेन : अ - अ और प्रतिष्ठा ?

दुर्जनसिंह : सो बात अलग है।

चन्द्रसेन : क: क: कैसे ?

दुर्जनसिंह : राज्य का रुपया बाल-आश्रमों, औषधालयों, धर्मशालाओं, पाठशालाओं, दरिद्र-शालाओं आदि कई आश्रमों, आलयों और शालाओं ..

चन्द्रसेन : (खीझकर) कै - कै कैसी शाखाओं ?

दुर्जनसिंह : मैंने कहा न, पाठशालाओं, दरिद्रशालाओं, धर्मशालाओं……

चन्द्रसेन : (खीझकर) य - य यह सः सः सब तो सुना, पर इस का अर्थ क्या ?

दुर्जनसिंह : टीका करूँ। अच्छी बात है। टीका यही कि इस प्रकार राज्य के धन का नाश करके उसने प्रजा में बड़ी प्रतिष्ठा पायी है। अब वह ठीक चाणक्य के मन्त्री चन्द्रगुप्त के सदृश··

एक सभासद : (बीच ही में) फिर भूल हुई।

चन्द्रसेन : (खीझकर, खड़े होकर क्रोध से झूमते हुए) ऐ - ऐ ऐसी प्रतिष्ठा! ल-ल लाओ तलवार, ल-ल लाओ !

एक सभासद : क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए, श्रीमान् !

दूसरा : यदि आप ऐसा क्रोध करेंगे तो प्रलय हो जायगी।

तीसरा : अजी आकाश फट पड़ेगा आकाश ! (वेश्याओं से) गाओ, गाओ।

[चन्द्रसेन नशे में गिरना चाहता है। सभासद सम्हालते। फिर तबला ठनकता है।]

परदा गिरता है।

तीसरा दृश्य

स्थान . रूपसेन के मकान की दालान

समय : सन्ध्या।

[मोहन और बलदेव का प्रवेश ।]

मोहन : संसार सचमुच विचित्र है, मित्र। हर बात में विचित्रता देख पड़ती है कहीं भी समानता नहीं। आकाश के दो तारे एक से नही। पर्वत के दो शिखर एक से नहीं। नदियों की दो धाराएँ एक सी नहीं। एक ही जाति के दो वृक्ष एक से नहीं, उनकी दो टहनियाँ एक सी नहीं, दो पत्र एक से नहीं, दो पुष्प एक से नही, दो फल एक से नहीं, घास के दो अंकुर एक से नहीं। एक ही जाति के दो पशु, दो पक्षी, दो कीट तक एक से नही, मनुष्यों मे भी एक माता से जन्मे हुए दो पुत्र, दो कन्याएँ एक सी नहीं।

बलदेव : हम दोनों के हृदय अवश्य एक से है।

मोहन : (मुस्कराकर) इसमें क्या सन्देह है ? नहीं तो क्या हम लोग सदा साथ रह सकते थे ? नेह नगर से तुम्ही साथ आये और कोई तो न आया। (कुछ

ठहरकर) फिर कोई भी वस्तु हरेक को प्रिय नहीं। यदि एक को एक वस्तु प्रिय है तो दूसरे को अप्रिय। एक जिस वस्तु का मान करता है, दूसरा उसी का अपमान। सर्व प्रिय और सर्व सम्मानित वस्तु संसार में दृष्टिगोचर होती ही नहीं। कोई कहते हैं कि लक्ष्मी सब कुछ है, परन्तु अनेक ऐसे भी हैं जो उससे कहीं अधिक आदर गुणों का करते हैं। हमारे मन्त्री जी भी गुणों का ही पूजन करने वालों में हैं। जिसमें कुछ भी गुण है, उसका आदर रूपसेन हृदय से करते हैं। मेरे सदृश अल्पज्ञ तक को मन्त्री जी ने इतने मानपूर्वक आश्रय दिया है।

बलदेव : इतना ही नहीं, अपना कार्य-भार तक तुम्हें सौंपकर उन्होंने सदा के लिए तीर्थाटन का निश्चय किया है।

मोहन : हाँ, मित्र, मन्त्री जी, शूरसेन जी के समान केवल धन का मान करने वाले नहीं हैं। लोग तो धन के पीछे अपनी आत्मजा तक को बेच देते हैं, पर हमारे मन्त्री जी वैसे नहीं।

बलदेव : तभी तो इतने धनवान कुमारों की माँग आने पर भी रूपवती के लिए वे किसी गुणज्ञ को ढूँढ रहे हैं।

मोहन : यही तो, बलदेव, प्रकृति वैषम्य है। यही संसार की विचित्रता है। और जैसे मन्त्री जी हैं वैसे ही अयोध्या नरेश भी ·····

बलदेव : अब तो, मोहन, तुम विचित्रता के स्थान पर समानता

का प्रतिपादन करने लगे। यहाँ तो मै तुमसे सहमत नही हूँ। ससार मे ईश्वर ने समानता को केवल हम ्ोनों के हृदयों को ही दी है और किसी वस्तु को नही।

मोहन : (मुस्कराकर) हाँ, हाँ, भूल हुई। मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही था कि राजा और मन्त्री दोनों ही प्रजा की ओर पूर्ण दृष्टि रखते है।

वलदेव : सो हो सकता है। पर इसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि जैसे मन्त्री है वैसे अयोध्या-नरेश भी हैं। यह समानता तो केवल दो व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त की जा सकती है कि जैसा मोहन है, वैसा ही वलदेव और जैसा वलदेव है, वैसा ही मोहन। संसार की इस विचित्रता के नियम में केवल हम दो की समानता ही एक अपवाद है और इस अपवाद से उस नियम का प्रमाण मिलता है। यदि अनेक अपवाद हो जायँगे तो वह नियम ही असत्य हो जायगा।

मोहन : (मुस्कराकर) मान लेता हूँ।

वलदेव : (कुछ ठहरकर) कहो, मित्र, यहाँ आने से कुछ शान्ति मिली ? यहाँ से तो तीसरे पाठ का प्रारम्भ हुआ है।

मोहन : कुछ शान्ति तो अवश्य मिली। माता प्रमोदिनी के उपदेश पर अपने कर्त्तव्य-पालन का प्रण करने वाले को अनुकूल सामग्री यहाँ अवश्य प्राप्त है।

बलदेव : किन्तु फिर भी कालिन्दी का ध्यान मन से दूर नहीं होता, क्यों ?

मोहन : **(लम्बी साँस लेकर)** क्या कहूँ ?

बलदेव : जो कुछ भी हो; अब यहाँ से तो तीसरे पाठ का आरम्भ करना ही होगा।

मोहन : क्या इसका प्रयत्न नही कर रहा हूँ ? दिन और रात इसी प्रयत्न में तल्लीन रहता हूँ। हृदय को माताजी के बताये हुए मार्ग की ओर, अटल शान्ति के मार्ग की ओर, लाने के लिए मैंने कौनसा यत्न उठा रखा है ? **(कुछ रुककर)** अच्छा चलो, सभा का समय होरहा है।

[**दोनों का प्रस्थान**]

परदा उठता है।

चौथा दृश्य

स्थान : शूरसेन के मकान मे कालिन्दी का कमरा

समय प्रात.काल

[कौमुदी के कमरे के सदृश यह कमरा भी है। कालिन्दी और उमा खड़ी है।]

कालिन्दी : वे निकाल दिये गये, अपमानपूर्वक निकाल दिये गये ! क्यों ? (उत्तेजना से) इसीलिए न कि वे निर्धन है; पर, ऐसे निर्धन को अयोध्या के मन्त्री ने कैसे आश्रय दे दिया ?

उमा : उनमें और शूरसेन जी मे बहुत अन्तर है, सखि।

कालिन्दी : संसार मे धन ही सुख का मूल समझा जाता है; परन्तु क्या यह सत्य है ?

उमा : कहना कठिन है।

कालिन्दी : सर्वथा सरल, उमा। मेरा तो स्पप्ट मत है कि इस धन से उल्टा दुःख होता है, सुख नहीं।

उमा : कैसे ?

कालिन्दी : दिनभर के कठिन परिश्रम के पश्चात् दरिद्री रात को सुखपूर्वक सो तो सकता है, पर धनवान वह भी

नहीं कर सकता। हाँ, धन से इन्द्रियों की तृप्ति, क्षणिक सुख अवश्य प्राप्त हो सकता है परन्तु क्या यही सच्चा सुख है ?

उमा : यह चाहे सच्चा सुख न हो, पर धन से सच्चे सुख भी मिल सकते है।

कालिन्दी : कदापि नहीं, सच्चा सुख है मेरे आराध्य देव के बतलाये हुए एक विश्व-प्रेम मे। उस सुख का वर्णन नहीं हो सकता, केवल अनुभव ही किया जा सकता है।

उमा : परन्तु क्या उस सुख के प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के अधैर्य और विह्वलता से काम चलेगा ?

कालिन्दी : **(दीर्घ निःश्वास ले)** क्या कहूँ, उमा, हृदय को जब उनका स्मरण हो आता है तब उस पर साँप-सा लोट जाता है। इस धन पर ऐसा क्रोध आता है कि कहा नहीं जाता। फिर कुछ लोग कहते हैं धन से उपकार होता है पर मेरी समझ मे उससे उलटा अपकार होता है।

उमा : यह भी पूर्ण रीति से नही कहा जा सकता।

कालिन्दी : अवश्य कहा जा सकता है। जिस धन के मद से किसी का अपमान हो, जिस धन के कारण किसी हृदय पर आघात पहुँचे, वह उपकार का साधन कैसा ? इसी धन के कारण अनेक हृदयों पर चोट पहुँचती है। अनेक हृदय टूक-टूक हो जाते हैं ! **(जोर से)** धन ! ओह ! जिस धन के कारण ही मुझे सच्चे

सुख का मार्ग बताने वाले मेरे हृदयेश का अपमान हुआ, वह सुख और उपकार की जड़ ! ऐसे धन को तो सौ बार, लाख बार, करोड़ बार धिक्कार है !

[नेपथ्य में गाना होता है। कालिन्दी और उमा ध्यान से सुनती है।]

(राग भैरवी)

इस द्रव्य से बढ़ कर जगत उपकार करने के लिए,
है दीख पड़ती भूमि पर तो वस्तु कोई भी नहीं।
साहित्य-सेवा, अतिथि-सेवा, रुग्ण शुश्रूषा तथा,
करना जहाँ चाहो तुम्हे धन चाहना होगा वहीं।
शुभ दान पुरुषादिक सभी इस द्रव्य के परिणाम हैं,
धन के बिना शुभ कार्य ये जग मे न हो सकते कहीं।
धनवान होना है अहो ! फल पूर्व संचित पुण्य का,
सारी जगत-शुभ कामनाएँ पूर्ण इस से हो रहीं।

कालिन्दी : (गान पूर्ण होने पर कुछ क्रोध से) यह लो, यहाँ भी धन की ही महिमा गायी जा रही है। सखि, बुला तो इसे, यह कौन है। मै एक क्षण में इसको आँखें खोल दूंगी।

[उमा का प्रस्थान और प्रमोदिनी के साथ प्रवेश।]

कालिन्दी : (हाथ जोड़ और सिर झुकाकर) संन्यासिनी जी, प्रणाम।

प्रमोदिनी : (हाथ उठाकर) कल्याण हो।

कालिन्दी : (हाथ जोड़े हुए) क्षमा कीजिए, भगवती, मैंने आप को कष्ट दिया, किन्तु आपका गाना सुनकर मुझसे

न रहा गया; इसलिए कष्ट देना पड़ा।

प्रमोदिनी : नहीं, वेटी, इसमें कष्ट देने की क्या वात है? कदाचित् धन की महिमा का गान तुझे अच्छा नहीं लगा।

कालिन्दी : (अचम्भे से) आप तो सर्वज्ञ जान पड़ती हैं। यही बात मेरे हृदय मे उठी थी, माता जी।

प्रमोदिनी : किन्तु, वेटी, यह वात तेरे हृदय मे अनुचित उठी।

कालिन्दी : (उत्सुकता से) कैसे ?

प्रमोदिनी : ससार में इस प्रकार की अनेक वस्तुएँ हैं जिनका उपयोग दो प्रकार से हो सकता है।

कालिन्दी : किस प्रकार ?

प्रमोदिनी : अच्छे मार्ग से, और वुरे मार्ग से। अतएव तू ही वता, वुरा उपयोग वुरा कहा जा सकता है या वह वस्तु वुरी कही जा सकती है जिसका उपयोग वुरे प्रकार से किया जाता है।

कालिन्दी : वुरा उपयोग वुरा कहा जायगा, वस्तु नहीं।

प्रमोदिनी : बस, वेटी, यही वात धन की भी है। यह धन अच्छे से अच्छे मार्ग में भी लगाया जा सकता है, और वुरे-से-वुरे मार्ग मे भी। फिर धन को धिक्कारना उचित नहीं।

कालिन्दी : (शान्ति से) ठीक है, माता जी, आपने मेरे अन्तः-करण के एक वड़े अन्धकार को दूर कर दिया। इस वात को जानते हुए भी कि इन वस्तुओं का उपयोग अच्छे और वुरे दोनों मार्गो से हो सकता है इन दिनों मैं भारी भ्रम में पड़ गयी थी।

प्रमोदिनी : उत्तेजना विवेक को सदा नष्ट कर देती है, बेटी; उत्तेजना मे साधारण बात का भी ज्ञान नहीं रह जाता।

उमा : आप ठीक कहती है, माता जी, इस समय इनकी यही दशा थी। यह तो हर्ष की बात है कि आपने उपदेश देकर इनका भ्रम दूर कर दिया। ये तो सारी धन-सम्पत्ति छोड़ देने पर उद्यत थीं।

प्रमोदिनी : मैंने तो कोई बड़ा भारी उपदेश नहीं दिया, बेटी; ऐसे अवसरों पर कभी-कभी साधारण-सी बात भी बड़ा भारी कार्य कर डालती है।

कालिन्दी : अच्छा, माता, अब जिस प्रकार दया कर आपने क्षण मात्र ही में मेरे हृदय के अन्धकार को दूर किया है उसी प्रकार कृपा कर अब कोई ऐसा मार्ग बताइए, जिससे, इस धन द्वारा, मैं समाज की सेवा भी कर सकूं।

प्रमोदिनी : बेटी, तुझे सेवा करना क्या बताया जाय ? यह तेरी ही सेवा का फल है कि इस ग्राम में भूखों का आर्त-नाद नही सुनायी देता और रोगियों की उचित शुश्रूषा होती है। अनाथ बालक भी सनाथवत रहते है और विधवाओं को भी किसी प्रकार का त्रास नहीं उठाना पड़ता। यदि और भी अधिक सेवा करने का विचार है तो बालिकाओं के लिए एक कुमारिकाश्रम की स्थापना कर, जहाँ उनकी शिक्षा

की व्यवस्था हो।

कालिन्दी : जो आज्ञा, परन्तु इसका सब प्रबन्ध कृपा कर आप को ही करना होगा।

प्रमोदिनी : तथास्तु।

परदा गिरता है।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : शूरसेन के मकान की दालान

समय : सन्ध्या

[शूरसेन और उनके पीछे भोलानाथ का प्रवेश। वे टहल-टहलकर बातें करते है।]

शूरसेन : लोग क्या-क्या कहते है, सुना है, भोलानाथ ? कल एक ज़मींदार कहते थे कि पहले बड़े घरों की बहू-बेटियाँ घर से बाहर निकलने मे भी लज्जा करती थीं, पर अब तो उन्होंने निर्लज्जता की साड़ी पहन ली है। यह ताना कालिन्दी के लिए ही था ?

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्।

शूरसेन : भोलानाथ, कालिन्दी का घर-घर घूमते फिरना, चम्हारों और महतरों तक के घर जाना, सचमुच मेरे कुल के लिए अत्यन्त अप्रतिष्ठा की बात है।

भोलानाथ : निः सन्देह,श्रीमान्।

शूरसेन : पड़ोसियोंतक से उसकीस्वच्छन्दता नहीं देखी जाती, नित्यही कोई न कोई बात कानों तक पहुँचती है। अब कुमारिकाश्रम स्थापित हुआ है।

भोलानाथ : निःसन्देह श्रीमान्, मुझे तो…

शूरसेन : दो-तीन दिन हुए किसी ने कहा था कि आप तो बड़े शान्त हैं, आपके पिताजी होते तो न जाने इस समय क्या कर डालते, किन्तु मेरा स्वभाव तो तुम जानते ही हो, भोलानाथ। जब किसी को दुखी करना मेरे लिए सम्भव नही तब घर के बच्चों को तो क्योंकर दुखी किया जाय ?

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान् का हृदय क्या है, दया का समुद्र है।

शूरसेन मैंने तो, भोलानाथ, उसे इसलिए पढ़ाया-लिखाया था कि वह अच्छी निकलेगी, पर किया कुछ, और हो गया कुछ। सारा समाज ही उसकी बुराई करता है।

भोलानाथ : निःसन्देह, क्या कहा जाय, श्रीमान् ?

शूरसेन : पर इस बढ़ती हुई निन्दा को अब कहाँ तक सहूँ ?

भोलानाथ : श्रीमान् बहुत ठीक कहते है। निःसन्देह कहाँ तक यह निन्दा सही जायगी ?

शूरसेन : (लम्बी साँस लेकर) क्या कहूँ, बड़ी भूल हुई। यदि आरम्भ से ही उसकी और उस दुष्ट मोहन को संगति न रहती तो वह इतनी न बिगड़ती। देखो कौमुदी उसके साथ नहीं रही। वह बेचारी कैसी सीधी-सादी है।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्।

शूरसेन : तुमने उस मोहन का भी कुछ वृत्तान्त सुना है ?

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, सुना है। उसे अयोध्या के मन्त्री ने आश्रय दिया है।

शूरसेन : नहीं नहीं, केवल इतना ही नहीं, सुना है, मन्त्री तीर्थाटन को चले गये हैं और अब वही मन्त्री भी है।

भोलानाथ : अच्छा !

शूरसेन : अयोध्या के कोष को भी उसने उड़ाना आरम्भ कर दिया है।

भोलानाथ : कैसा, श्रीमान् ?

शूरसेन : कही धर्मशाला, कहीं पाठशाला, कहीं दरिद्रशाला कहीं कुछ, और कहीं कुछ बनवा रहा है।

भोलानाथ : **(सिर हिलाकर आश्चर्य से)** हाँ !

शूरसेन : यदि यही दशा रही तो कुछ दिनों में अयोध्या-नरेश अवश्य भिखारी हो जायँगे।

भोलानाथ : निःसन्देह हो जायँगे, श्रीमान्।

शूरसेन : देखो तो, वह राजा कितना मूर्ख है कि स्वयं ही अपनी जड़ कटवा रहा है।

भोलानाथ : निःसन्देह, मूर्खो के कोई सीग थोड़े ही होते हैं, श्रीमान्।

शूरसेन : भाई, मेरे साथियों के कथनानुसार मेरा सिद्धान्त तो यह बन गया है कि जिसे ईश्वर ने ही दरिद्री बनाया है, रोगी बनाया है, उसकी सहायता करना ईश्वर की अवज्ञा करना है। फिर कर्मों की गति को

कौन टाल सकता है।

भोलानाथ नि:सन्देह, श्रीमान्, कर्मों की गति को कौन टाल सकता है ?

शूरसेन अतः यदि तुम इस जन्म मे उन्हें सहायता दोगे और तुम्हारी सहायता से उनका कल्याण भी हो गया तो फिर अपने पूर्वकृत पापों का फल भोगने उन्हें उसी प्रकार का दूसरा कष्टमय जन्म ग्रहण करना पड़ेगा।

भोलानाथ नि:सन्देह, श्रीमान्।

शूरसेन और इस प्रकार उनको सहायता कर उनके कष्ट-निवारण के स्थान पर तुम उनके कष्ट बढ़ाने के कारण होगे।

भोलानाथ नि:सन्देह, श्रीमान्।

शूरसेन और फिर एक बात और।

भोलानाथ नि:सन्देह एक बात और।

शूरसेन इस प्रकार ईश्वर की अवज्ञा कर जो कर्म तुम करोगे उसका बुरा फल तुम्हें अगले जन्म में भोगना पड़ेगा।

भोलानाथ नि:सन्देह, नि:सन्देह, श्रीमान्।

शूरसेन इस प्रकार, भोलानाथ, अयोध्या नरेश और वह मोहन तथा यहाँ यह कालिन्दी घोर पाप-कर्म में प्रवृत्त हैं।

भोलानाथ नि:सन्देह, श्रीमान्।

शूरसेन हाँ, एक आश्चर्यजनक बात तुमने और सुनी ?

भोलानाथ : वह क्या, श्रीमान् ?

शूरसेन : अयोध्या के मूर्ख मन्त्री ने अपनी सम्पत्ति और अपनी पुत्री रूपवती के लिए एक वसीयत लिखी है।

भोलानाथ : अच्छा !

शूरसेन : वसीयत का बन्द लिफाफा मोहन को दिया है।

भोलानाथ : और उस वसीयत में क्या लिखा है, श्रीमान् ?

शूरसेन : वह लिफाफा खुला नहीं है। रूपसेन ने एक वर्ष पश्चात् उसे खोलने का आदेश किया है। आश्चर्य तो यह है कि एक अनजान मनुष्य पर इतना भरोसा !

भोलानाथ : निःसन्देह आश्चर्य की बात है, और मूर्खता की भी सीमा, श्रीमान् ! फिर ऐसे उस मोहन पर इतना भरोसा जिसे आपने अपने यहाँ से निकाल दिया था।

शूरसेन : क्या कहूँ, भाई, आजकल जो न हो सो थोड़ा है। (लम्बी साँस लेकर) समय ही टेढ़ा है ! अब तो ईश्वर शीघ्र बुला लें तो अच्छा।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान् ! (चौंककर) नहीं नहीं, राम राम राम, श्रीमान् आप यह क्या कहते हैं ?

शूरसेन : क्या कहूँ, भाई, यह सब देखा नहीं जाता। (लम्बी साँस छोड़ता है।)

परदा गिरता है।

छठवाँ दृश्य

स्थान : अयोध्या का मार्ग

समय : सन्ध्या

[चार नगरवासी आते हैं।]

एक : न जाने, भाई, किस पाप से प्रजा पर यह भयानक ईश्वरीय कोप हुआ है।

दूसरा : हाँ, भाई, सारे राज्य में घोर अकाल और फिर अयोध्या में तो गत दस दिनों से इस हैजे ने अनर्थ कर रक्खा है।

तीसरा : राज्य ही में क्या, राज्य के बाहर भी दूर-दूर तक अकाल की यही दशा है।

चौथा : यह तो, भाई, नये मन्त्रीजी की दयालुता और कार्य-परायणता का फल है कि प्रजा को इस समय भी इतनी सुविधा मिल रही है।

पहला : इसमें सन्देह नहीं, उन्हीं के कारण स्थान-स्थान पर अन्न-सत्र खुले हैं, पहले किसी दुष्काल में ऐसा नहीं था।

दूसरा : फिर वैद्य, औषधियों के साथ नगर में दिन भर चक्कर

लगा रहे हैं; ऐसा औषधि प्रबन्ध भी पहले कभी नहीं हुआ।

तीसरा : और यही नहीं कि जिन्हें उन्होंने अन्न-सत्र और चिकित्सा-कार्य पर नियुक्त किया है उन्हीं पर सारा भार छोड़ दिया हो।

चौथा : हाँ, हाँ, उनका भी प्रातःकाल से सायंकाल तक का समय मुहल्ले-मुहल्ले और घर-घर घूमते बीतता है।

पहला : और रात्रि को ? रात्रि को भी उन्हें विश्राम कहाँ?

दूसरा : विश्राम का तो नाम ही न लो; खाने-पीने और शयन तक की उन्हें सुधि नहीं है।

तीसरा : और, भाई, रूपवती क्या कम सेवा करती है ?

चौथा : सचमुच स्त्रियों की रक्षा तो वही कर रही है।

पहला : महाराज भी अपना कर्त्तव्य करने में एक डग भी पीछे नहीं हटते।

दूसरा : हाँ, स्वयं नगर भर मे घूमते हैं।

तीसरा : कोष भी खुलवा दिया है।

चौथा : और समस्त राज्य-कर्मचारी इस समय तो प्रजा की इसी सेवा के लिए नियुक्त हैं।

पहला : भाई, राजा का कर्त्तव्य प्रजा की सेवा ही है। जो राजा प्रजा की सेवा तन, मन, धन से नहीं करता वह नरक का अधिकारी होता है। तुलसीदास जी ने कहा है — जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

दूसरा : और, देखो तो, स्वयंसेवक भी कैसा अच्छा कार्य कर रहे हैं।

[घबराये हुए एक नगरवासी का प्रवेश।]

आगन्तुक : (भर्राये हुए शब्द से) अजी तुम लोगों ने सुना भी ? मन्त्री जी का स्वास्थ्य एकाएक बिगड़ गया है। उन पर भी भयानक रूप से हैजे ने आक्रमण किया है।

पहला : (आश्चर्य और दुःख से) ऐं ! यह क्या ! प्रातःकाल तो वे घूम रहे थे।

दूसरा : (उसी स्वर में) मैंने तो उन्हें दस बजे कई स्वयं सेवकों के सहित जाते देखा था।

आगन्तुक : मुझे अभी-अभी सूचना मिली। मैं उनके घर जाकर भी पूछ आया हूँ। बात सत्य है। ईश्वर उनकी रक्षा करे।

पहला : (ऊपर देखकर) हे दयामय ! अवश्य उन्हें नीरोग कीजिए, नहीं तो अयोध्या राज्य की क्या दशा होगी।

दूसरा : हाय ! हाय ! हम लोग तो अनाथ हो जायँगे।

तीसरा : लाख मरे, पर लाख का पालने वाला न मरे।

चौथा : चलो, भाई, चलें, हम लोग देखें वे कैसे हैं ?

पहला : हाँ, भाई, हम लोगों की रक्षा के लिए उन्होंने अपने प्राण संकट में डाले हैं।

[सब का प्रस्थान]

परदा उठता है।

सातवाँ दृश्य

स्थान : रूपसेन के मकान का कमरा

समय : मध्याह्न

[सुन्दर सजा हुआ कमरा है। नारंगी तैल रंग से पुता हुआ है, जिस पर अनेक रंग के वेलबूटे बने हुए है। श्रीरामपंचायतन, अयोध्या-नरेश, रूपसेन और अयोध्या के दृश्यों के चित्र दीवालों पर लगे है। छत सागौन के पटियों से पटी है और वह भी इसी रग से रंगी है। नारंगी रंग के झाड़, फानूस, हंडी, गोले लटक रहे है। जमीन पर उसी रंग का रेशमी गालीचा है, जिस पर बेल-बूटे है। बायों ओर चाँदी के पायों के पलँग पर मोहन लेटा है। पास ही मे एक कुर्सी पर रूपवती, और दूसरी पर वैद्य उपस्थित है। रूपवती लगभग सत्रह वर्ष की गोरी, ऊँची, गठे हुए शरीर की अत्यन्त सुन्दर युवती है। मुख और शरीर साँचे से ढले जान पड़ते है। वनारसी रेशम की जरीदार साड़ी और चोली पहने है। आभूषण सब हीरे और मोती के है।]

मोहन : (क्षीण स्वर से, वैद्यराज से) सात दिन तो हो चुके अब मुझे स्वस्थ होने में और कितना समय लगेगा, महाराज ?

वैद्य : अब बहुत शीघ्र नीरोग हो जायँगे, श्रीमान् ।

मोहन : यह तो भाग्य की बात है। ईश्वर को इस समय मुझ से सेवा लेना स्वीकार न था।

[**स्वयंसेवकों के अध्यक्ष का प्रवेश।**]

मोहन : (**क्षीण स्वर में अध्यक्ष से**) कहिए, महाशय, अब नगर की क्या दशा है ?

अध्यक्ष : आप अधिक चिन्तित न हों। स्वयं अयोध्या नरेश सब काम देख रहे हैं। और स्त्रियों की रक्षा तो (**रूपवती की ओर संकेत कर**) इन्होंने ही की है । बल्देव जी ने इतना कार्य किया है, कि उसका वर्णन नहीं हो सकता, इस समय भी वे कार्य में लगे हैं। हैजे का उपद्रव कम है, किन्तु अन्न-सत्रों में अब प्रायः कुछ भी अन्न शेष नहीं बचा।

मोहन : आज प्रमोदिनी माता के अन्न लाने की अवधि भी पूरी होती है।

[**रसोइये का पथ्य लेकर प्रवेश।**]

वैद्य : अब विलम्ब न कीजिए, श्रीमान्, पथ्य का समय हो गया; आज पहला दिन है, इसलिए आयुर्वेद की आज्ञा के अनुसार ठीक समय पर पथ्य हो जाना चाहिए।

मोहन : जो आज्ञा।

[**दो सेवक मोहन को उठाते हैं। रसोइया थाली लेकर आगे आता है। नेपथ्य में एक स्त्री का करुण शब्द होता है— "हाय**

मेरे दोनों बच्चे भूख के मारे तड़प रहे हैं ! अरे ! कोई तो इन्हें बचाओ!"]

मोहन : (उस ओर कान लगाकर) हैं ! यह कैसा करुणोत्पादक शब्द ? (रसोइये से) महाराजा, पहले उन बालकों के लिए खाने को कुछ ले जाइए।

रसोइया : श्रीमान्,इससे अधिक भोजन अभी तैयार नहीं किया है। बालकों के लिए अभी और तैयार करके ले जाता हूँ।

[नेपथ्य में "भूख के मारे बालकों के प्राण निकलना चाहते हैं। हे भगवन् ! कोई भी नहीं सुनता !"]

मोहन : मैं सुनता हूँ। जाओ, यह भोजन ले जाकर बालकों को दो। मैं अभी पथ्य न लूँगा।

वैद्य : यह नहीं हो सकता, श्रीमान्, आपको पथ्य अभी लेना ही होगा। ठीक समय पर पथ्य न लेने से स्वास्थ्य फिर बिगड़ेगा।

मोहन : (जल्दी से उत्तेजित होकर) नहीं नहीं, यह कदापि नहीं हो सकता। मेरे द्वार पर दो बालक प्राण विसर्जन करें, और मैं पथ्य लूँ, यह सम्भव नहीं। (रूपवती से) रूप, तुम शीघ्र ही इस अन्न को ले जाकर उन बालकों की रक्षा करो।

[रूपवती रो पड़ती है।]

मोहन : (सिर उठाकर सबकी ओर बारी-बारी से देखकर) तो क्या मुझे ही उन बालकों को खिलाने के लिए

जाना पड़ेगा। (साहस कर उठ खड़ा होता है, किंतु निर्बलता के कारण चक्कर आता है, और पुनः गिरने लगता है। रूपवती और वैद्यराज सम्हालते हैं।)

यवनिका

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान : शूरसेन के मकान की दालान

समय : सन्ध्या

[शूरसेन और भोलानाथ टहल रहे हैं ।]

शूरसेन : चलो, किसी प्रकार अकाल तो मिटा ।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, नहीं तो बड़ा अनर्थ हो जाता ।

शूरसेन : मुझे तो इसी की चिन्ता थी कि अयोध्या के सदृश यहाँ भी हैजा न फैल जावे ।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, नहीं तो न जाने क्या होता ।

शूरसेन : (हाथ हिलाकर) भाई, सबसे अधिक चिन्ता तो कालिन्दी की थी ।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान् ।

शूरसेन : न जाने उस मोहन ने इसका हृदय कैसा बना दिया है ।

भोलानाथ : निःसन्देह, बहुत बुरा, श्रीमान् ।

शूरसेन : देखो न, जब तक यहाँ अकाल रहा, और राज्य की ओर से अन्न-सत्र खुला रहा, तब तक इसने एक क्षण को भी विश्राम न लिया ।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्; सोई तक नही।

शूरसेन : हर दिन ही उसका कोई न कोई नया सम्वाद आता था।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, हर दिन क्या हर क्षण कुछ न कुछ सुन पड़ता था।

शूरसेन : मुझे तो इस पर आश्चर्य हो रहा है कि जब राजा स्वयं प्रबन्ध कर रहा था, तब यह लड़की क्यों बीच में ही कूदी पड़ती थी।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, क्या कहूँ? यह बड़ी भारी मूर्खता थी।

शूरसेन : अयोध्या-नरेश के व्यय का जो वृत्त सुना है, उससे तो जान पड़ता है कि कोष मे अब कौड़ी भी न बची होगी।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, फूटी कौड़ी भी नहीं और मेरा तो अनुमान है कि अयोध्या-नरेश को ऋण लेना पड़ा होगा।

शूरसेन : तुम निश्चय जानो कि यदि वह मोहन राज्य में रहा तो अयोध्या-नरेश को भीख न माँगना पड़े, तो मेरा नाम शूरसेन नहीं।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, यह तो होना ही है।

शूरसेन : तुमने एक बात और भी सुनी है?

भोलानाथ : वह क्या, श्रीमान्?

शूरसेन : जो कुमारिकाश्रम खुला है उसका वार्षिकोत्सव होने

वाला है।

भोलानाथ : यहाँ के कुमारिकाश्रम का ?

शूरसेन : हाँ, यहीं के तो।

भोलानाथ : तब तो निःसन्देह बड़ा आनन्द होगा।

शूरसेन : (खीभकर) आनन्द क्या, धूल होगा ! मैं तो मरा जाता हूँ, तुम्हें आनन्द होगा।

भोलानाथ : (सिटपिटाकर) निः निः निःसन्देह, भ·· भ··· भूल गया, श्रीमान् ! यह कहता था, कि बड़ा निरानन्द होगा। निःसन्देह जीभ फिसल पड़ी।

[रुष्ट शूरसेन का भोलानाथ को घूरते हुए प्रस्थान। नीची दृष्टि किये हुए धीरे-धीरे भोलानाथ भी जाता है।]

परदा उठता है।

दूसरा दृश्य

स्थान : कुमारिकाश्रम

समय : प्रातःकाल

[दूर पर सरयू बह रही है, जिसकी लहरों को उदय होते सूर्य की किरणें चमका रही हैं। आम्र वृक्षों की घनी छाया में बाँयी ओर लता से छाया हुआ लम्बा गृह बना है। पुष्पों, तुलसी और मरुआ दोनों के गमले बाहर सुसज्जित हैं। दाहिनी ओर छोटासा दुर्गाजी का मन्दिर है, जिसमें दुर्गाजी की मूर्त्ति है। मन्दिर के बाहर बालिकाएँ हाथ जोड़े दुर्गा की स्तुति कर रही हैं। सभी बालिकाएँ गुलाबी रंग की साड़ियाँ और उसी रंग के पोलके पहने हैं। कौमुदी और उमा बायीं ओर के मकान के बाहर खड़ी हुई स्तुति सुन रही हैं।]

(राग बसन्त)

हे अपार, अति उदार, दयागार हे; विनती यह बार बार,
दुःख टार हे।

जहाँ एकता-स्वरूप, लेकर तूने अनूप, प्रकट किया प्रेम-रूप;
डूल रहा वहीं आज, फूट वैर से समाज, करुणाकर अब सम्हाल,
लगा पार हे।

धार शारदा-शरीर, शिक्षा का जहाँ नीर, बरसाया था गभीर;
सौ में से अहो वही, शिक्षित दस भी नहीं, लज्जा यह तो महान्,
अनिवार हे।
लिया अन्नपूर्ण वेष, किया अन्नपूर्ण देश, न था जहाँ दु.ख क्लेश;
वहीं आज पड़े काल, ध्वंस करे क्षुधा-ज्वाल, सुनो सुनो मात सुनो,
दुख पुकार हे।

[**बालिकाओं का प्रस्थान।**]

उमा : कैसा गान था, कौमुदी ?

कौमुदी : मेरी तो तनिक भी समझ में न आया कि ये गाती थी या बड़बड़ाती थी; बार-बार क्या कहती थीं—अपार अति उदार दयागार। विनती यह बार-बार दु:ख टार। इसके पश्चात् फिर, लगा पार, आ निवार, दुख पुकार, और भी न जाने क्या क्या। कैसी अपार, उदार, दयागार। कैसी विनती बार-बार, कैसा दु:ख टार और फिर कैसा लगा पार, आ निवार, दुख पुकार।

उमा : (हँसकर) दुर्गाजी की स्तुति थी, बहन।

कौमुदी : ओ हो ! यदि दुर्गा की स्तुति करनी थी तो सप्त-शती सीखती।

उमा : वह तो बहुत पुरानी हो गयी। उसमें वर्तमान, सामाजिक सुधारों की प्रार्थना कहाँ है ?

कौमुदी : परन्तु जब तक सृष्टि मे तुम्हारे जैसे प्राणियों की उत्पत्ति होगी तब तक बेचारी दुर्गाजी क्या सुधार

करेंगी ? दुर्गाजी सुधारने वाली एक, और विगाड़ने वाली तुम सहस्रों। तुम्हीं लोगों ने तो पुरानी रीतियों की अवहेलना कर-करके सब चौपट कर दिया। इसीलिए, बहन इस कुमारिकाश्रम की बड़ी प्रशंसा किया करती है। यहाँ भी लड़कियों को गाना सिखाया जाता है । ये वेचारी छोटी-छोटी सी लड़कियाँ विगड़कर बहन के समान ही सत्यानाश हो जायँगी। जान पड़ता है, इन लड़कियों का घर-द्वार कुछ नही, नहीं तो कोई इन्हें यहाँ काहे को भेजता।

उमा : इसके पहले क्या तुमने यह आश्रम नहीं देखा था ?

कौमुदी : कभी नही। कई बार बहन ने कहा इसलिए आ गयी। ईश्वर न करे, फिर कभी यहाँ आने का काम पड़े। यहाँ का सब वृत्तान्त भी चाचाजी से कहना है।

[**कौमुदी का प्रस्थान। कालिन्दी का प्रवेश।**]

कालिदी : अच्छा कौमुदी चली भी गयी ?

उमा : हाँ, अभी गयी है। और कह गयी है कि चाचाजी से यहाँ का सब वृत्त कहेगी।

कालिदी : इच्छा उसकी। पर तुम उसकी इतनी चिन्ता क्यों करती हो ? (**कुछ ठहरकर**) सखी, अकाल और हैजे मे उनकी लोक-सेवा का वृत्तान्त सुना ?

उमा : सुना; बहन, वे साधारण मनुष्य नहीं हैं।

कालिदी : तुमने कदाचित् उस दिन का वृत्तान्त न सुना होगा

जब बीमारी के पश्चात् उन्हें पथ्य दिया जाने वाला था।

उमा : मैं सब सुन चुकी हूँ। मैंने कहा न कि वे साधारण मनुष्य नही हैं।

कालिदी : और, देखो तो केवल अयोध्या ही नही, सारे राज्य और जहाँ तक हो सका उसके बाहर जहाँ-जहाँ अकाल था, उन्होंने कैसा अच्छा प्रवन्ध किया था। अपने ही गाँव मे कितना अच्छा प्रबन्ध था।

उमा : अपने यहाँ के प्रवन्ध का श्रेय तो तुम्हें भी कुछ कम नही है।

कालिदी : नही, वहन, यदि उनकी सहायता न होती तो ऐसा सुप्रबन्ध कभी सम्भव ही न था।

उमा : (कुछ ठहरकर) हाँ, मैंने सुना है कि प्रमोदिनी जी उन्हें अपने कुमारिकाश्रम के वार्षिकोत्सव में आमन्त्रित करने वाली है।

कालिदी : हाँ, वे कहती तो थी; परन्तु मुझे तो उनके आने की वहुत कम आशा है।

उमा : क्यों ?

कालिदी : क्या वे उस दिन का पिता जी द्वारा किया हुआ अपमान भूल गये होंगे ?

उमा उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं। उनकी प्रकृति देवताओं की सी है। (कुछ ठहरकर) भला, सखी, उत्सव में क्या-क्या होगा ?

कालिंदी : अभी पूरा कार्यक्रम तो नहीं बना, परन्तु कुछ शिक्षाप्रद व्याख्यानों के अनन्तर आश्रम की बालिकाओं द्वारा एक नाटक का अभिनय कराया जाय यह भी सोचा जा रहा है।

उमा : नाटक का विषय और नाम क्या है ?

कालिंदी : नाटक का नाम 'वर्तमान' है और विषय भी 'वर्तमान' होगा।

उमा : यथार्थ में वह दिन बड़े आनन्द का होगा। सचमुच तुमने बड़ा उत्तम कार्य किया।

कालिंदी : **(एक दीर्घ साँस लेकर)** उत्तम कार्य भी किसी को अप्रिय हो सकता है, यह कभी न सोचा था।

उमा : किन्तु, सखी, तुम्हें इसका दु.ख न करना चाहिए। संसार मे अच्छे से अच्छा कार्य भी सबको प्रिय नही होता, और बुरे से बुरे कार्य को भी सब बुरा नहीं कहते।

कालिंदी : ठीक है, बहन, पर यह हृदय तो नहीं मानता। जब पिता जी ही इस कार्य को बुरा और सामाजिक दृष्टि से निन्दनीय समझते हैं, तब फिर हो चुका।

(एक दीर्घ साँस लेती है।)

परदा गिरता है।

तीसरा दृश्य

स्थान : रूपसेन के मकान की दालान

समय : प्रात काल

[रूपवती और रेवती का प्रवेश। रेवती लगभग पन्द्रह वर्ष की गोरी, सुन्दर बालिका है, जो तरुणाई की ओर जा रही है। बैगनी रेशमी साड़ी और पोलका पहने है। आभूषण स्वर्ण के है।]

रूपवती : तुझे इच्छित वर प्राप्त होगा इस कारण तू तो बड़ी प्रसन्न मुख दिखायी देती है रेवती ! मुझ से हृदय के भाव छिपाना चाहती है, पर उनका प्रतिबिम्ब तो तेरे कपोलों और मुस्कुराते हुए अधरों पर स्पष्ट झलक रहा है।

रेवती : (खीझकर) मानोगी नही, तंग ही करती जाओगी। कितनी देर से तंग कर रही हो ? मुझे ही क्यों तंग करती हो ? तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध में जो पत्र चाचा जी लिख गये हैं, उसके खोलने का दिन भी तो आज ही है। आज ही वर्ष पूर्ण हुआ है। तुम्हारा हृदय भी तो अपने भाग्य का निर्णय जानने के लिए

उत्सुक हो रहा होगा।

रूपवती : (उत्तेजित होकर) क्या मुझे मेरा मोहन-(एकाएक सम्हलकर) ओह ! मुझे अधिकार नही कि मै उन्हें इस प्रकार अपना समझूं। सखि, किसी की ओर लालच भरी दृष्टि से देखना मुझे उचित नहीं है। वे गुणवान् है, सुन्दर है, सभी प्रकार से श्रेष्ठ है, किन्तु वे किस बड़भागिनी को सौभाग्य के दाम्पत्य-सुख से पूर्ण करेंगे, कौन पुण्यवती रमणी अपने पूर्व-संचित पुण्यों के फलस्वरूप उनको पायगी, यह अभी भविष्य के गर्भ में है। यह मन न जाने क्यों बार-बार प्रेमोन्मत्त होकर उनकी ओर दौड़ता है? अपने स्वार्थ के वश यह विकल हुआ जाता है। पर इसके भाग्य का निर्णय तो पिता जी का पत्र करेगा।

[**मोहन का प्रवेश। रेवती का शीघ्रता से प्रस्थान।**]

मोहन : क्यों, रूप, क्या सोच रही हो? तुम्हारे मुख को देख कर मै कह सकता हूँ कि इस समय तुम किसी गम्भीर विचार मे निमग्न हो।

रूपवती : (धीरे स्वर से) कुछ तो नहीं; पिता जी का स्मरण हो आया था।

मोहन : (उत्सुकता से) अच्छा स्मरण दिलाया, रूप। आज उनके पत्र को देखने की अवधि भी समाप्त होती है न ?

[**मोहन का प्रस्थान। रूपवती उत्सुकता से टहलती है।**

मोहन का एक छोटा-सा सन्दूक लिये हुए प्रवेश। बैठकर सन्दूक खोलता है और पत्र निकालकर पढ़ता है। पढ़कर पत्र सन्दूक पर रख देता है और विचारमग्न हो जाता है। रूपवती चुपचाप पत्र उठाकर पढ़ती है और उसे वहीं रखकर मुस्कराती हुई जल्दी से चली जाती है। बल्देव का प्रवेश।]

मोहन : (सचेत हो चारों ओर देखकर धीरे स्वर से बल्देव से) बल्देव, रूप चली गयी ?

बल्देव : जब मैं यहाँ आया तब तो यहाँ कोई न था। तुम्हीं विचार और चिन्तामग्न बैठे थे।

मोहन : (लम्बी साँस लेकर) जानते हो विचार और चिन्ता का कारण ?

बल्देव : क्या ?

मोहन : (रूपसेन का पत्र सन्दूक में बन्द कर सन्दूक उठा खड़े होते हुए) रूपसेन जी लिख गये हैं कि उनकी सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी मैं और मेरा विवाह-सम्बन्ध रूप के साथ।

बल्देव : तब तो यहाँ से चौथे पाठ का आरम्भ होता है।

मोहन : (लम्बी साँस लेते हुए) बल्देव, यह मन बड़ा स्वार्थी है। रूपवती एक अनुपम सुन्दरी है सही, किन्तु इस समय इस पत्र को पढ़कर इस मन को पहले की अपेक्षा उसमें कहीं अधिक सौन्दर्य दिखायी देने लगा है। यह उस सौन्दर्य की ओर विवश होकर मुझे खींचता-सा प्रतीत होता है।

बल्देव : तब फिर देर क्यों, मित्र ? रेवती से मेरा विवाह निश्चित किया है, रूपवती से तुम कर डालो ।

मोहन : (आश्चर्य से) क्या कहते हो, मित्र? पागल तो नहीं हो गये ? मैं इस मन के बहकाने में आनेवाला नहीं। धर्म और विवेक जो आज्ञा देंगे, वही मुझे शिरोधार्य होगी ।

बल्देव : धर्म और विवेक का इसमें प्रश्न कहाँ उठता है ? रूपसेन जी की आज्ञा न मानोगे ?

मोहन : कैसे नहीं उठता, हर वस्तु और कार्य मे इनका प्रश्न उठता है । धर्म कहता है कि यदि पाप के मार्ग पर पाँव न पड़े तो रूपसेन जी की आज्ञा, विशेषतया उनकी अन्तिम आज्ञा, मानना मुझे परमोचित है, किन्तु कालिन्दी को दिये हुए पहले वचनों को पूर्ण न करना महा पाप है । अत: रूपसेन जी का आज्ञा पालन करने के कारण कालिन्दी के समक्ष मुझे वचन-भंग होने का पाप लगता है इसलिए विवेक मुझे यही आज्ञा देता है कि मैं अनिष्टकारी मन का कहना न मानूं । मेरे पास रहकर मन स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता ।

[नेपथ्य में गायन होता है । मोहन और बल्देव का ध्यान आकर्षित होता है ।]

(राग असावरी)

प्रबल शत्रु मन ही है जग में मन को जीतहु प्यारे।
जाने यह मन विजित कियो है कारज सकल सँवारे।।
ऋषि मुनि की अति कठिन तपस्या, भजन, भक्ति भक्तन की।
सफल होत तब ही जब ये सब टरत न मन सों टारे।।
रन विजयी ते मन विजयी को पड़त परिश्रम भारी।
सच्चे योद्धा वे ही जग में जिन सों है मन हारे।।

बल्देव : लीजिए, आ गयीं संन्यासिनी जी, अब मेरा यहाँ ठहरना ही निरर्थक है।

[बल्देव का प्रस्थान। प्रमोदिनी का प्रवेश। मोहन प्रणाम करता है और वह आशीर्वाद देती है।]

मोहन : आज बहुत दिनों के पश्चात् कृपा की।

प्रमोदिनी : कई कारणों से न आ सकी, बेटा।

मोहन : **(हाथ जोड़कर)** जो आज्ञा हो, पालन की जावे।

प्रमोदिनी : विशेष कुछ नहीं, एक छोटी-सी प्रार्थना है।

मोहन : **(मुस्कराकर)** प्रार्थना कैसी ? आज्ञा दीजिए, भगवती।

प्रमोदिनी : अच्छा ऐसा ही सही। कालिन्दी के स्थापित किये हुए कुमारिकाश्रम का वार्षिकोत्सव जन्म-अष्टमी के दिन मनाना निश्चित हुआ है। तुझे वहाँ चलना होगा। **(एक पत्र झोले से निकालकर मोहन को देते हुए)** मै अयोध्या-नरेश से भी तेरे जाने की आज्ञा ले आयी हूँ।

[मोहन पत्र पढ़कर कुछ सोचने लगता है।]

प्रमोदिनी : (मुस्कराकर) कदाचित् यह सोच रहा है कि अपने अपमान करने वाले शूरसेन के यहाँ मैं जाऊँ अथवा नही।

मोहन : माता, आप तो सर्वज्ञ है। न जाऊँ, यह तो मैं सोच ही नही सकता, क्योंकि आपकी आज्ञा पालन करने के लिए मै सर्वदा प्रस्तुत हूँ। केवल उस अपमान का थोड़ा ध्यान आ गया था।

प्रमोदिनी : वेटा, जिन बातों से हृदय की शान्ति भंग होने की सम्भावना हो उनको सत्पुरुष अपनी स्मृति-सूची में स्थान ही नही देते। फिर भला विश्व-प्रेमी को मान और अपमान का ध्यान ही कहाँ हो सकता है? उच्च पुरुषों का काम नीचों की नीचता को हृदय में स्थान न देकर उन पर दया करने का है।

मोहन · जो आज्ञा, माँ, मै निश्चित समय पर अवश्य उपस्थित होऊँगा।

प्रमोदिनी : कल्याण हो।

[प्रमोदिनी का प्रस्थान। मोहन भी कुछ सोचते हुए सन्दक लिये जाता है।]

परदा उठता है।

चौथा दृश्य

स्थान : चन्द्रसेन के मकान की दालान

समय : सन्ध्या

[चन्द्रसेन का प्रवेश।]

चन्द्रसेन : (जोर से चिल्लाकर) ओ ओ ··ओ·· ओ···ग···ग गधे गप्पू ! कहाँ है गी शी च·· च ··चौकी आदि ?

[जल्दी से रकाबी, बोतल, ग्लास आदि लेकर गप्पू का प्रवेश। डरते-डरते सब यथा स्थान रखता है।]

चन्द्रसेन : द ··द·· द ··देख बे आज तो देर हुई। अ·· अ··· अब ऐसा हुआ तो (लात दिखाकर) ज ··ज···जान रखना, गप्पू।

गप्पू : (हाथ जोड़कर) अब ऐसा न होगा, सरकार।

[चन्द्रसेन बैठकर मदिरा पान करता है।]

चन्द्रसेन : क्यों बे गप्पू, अ · अ अ···अभी तक दु···दु · दुर्जन न आया और न कुछ कर स···स···स सका।

[दुर्जनसिंह का प्रवेश। गप्पू का प्रस्थान।]

दुर्जनसिंह : आ गया, श्रीमान्। और सब कुछ कर भी लिया। आप उपाय करने में मुझे साक्षात्··हाँ तो क्या

समझिए, देखिए, भूल गया। (विचारता है।)

चद्रसेन : (उछलकर) उ…उ…उ उपगा देना छ…छ छोड़ कर त…त तनिक शीघ्रता से उ…उ…उ उपाय बताओ।

दुर्जनसिंह : उपाय सर्वथा सरल है, श्रीमान्। कहिए आपको नेहनगर के कुमारिकाश्रम के वार्षिकोत्सव का निमन्त्रण आया है न ?

चन्द्रसेन : हं - हाँ - हाँ !

दुर्जनसिंह : बस तो चलिए, शीघ्र चलिए।

चन्द्रसेन : प…प पर उपाय क - क - क क्या है ?

दुर्जनसिंह : कुछ पारितोषिक या उपहार मिले तो बताऊँ।

चन्द्रसेन : ल - ल - ल - लो, इसकी क - क - क्या कमी।

दुर्जनसिंह : नही, श्रीमान् यह तो यों ही कह दिया था। जो सेवक के पास है सो सब आप ही का तो है।

चन्द्रसेन : (मदिरा पीकर) अ - अ - अच्छा उपाय तो बताओ प…प…पर शीघ्र।

दुर्जनसिंह : शीघ्र और संक्षेप से लीजिए। संक्षिप्त वर्णन में कालिदास को भी मात कर दूं तब तो मेरा नाम दुर्जनसिंह। सुनिए, श्रीमान्, सब पता लगा आया हूँ। वार्षिकोत्सव में मोहन भी आयगा। व्याख्यान आदि के अनन्तर रात को एक नाटक का अभिनय होगा। बस जिस समय नाटक होगा उस समय में… (धीरे-धीरे कान में कहता है।)

चन्द्रसेन : व - व - वह बहुत सुन्दर है।

दुर्जनसिंह : इसमें क्या सन्देह है ? कालिन्दी से कहीं अधिक सुन्दर है।

चन्द्रसेन : ए - ए एक बात और है ? व - व - वह मुझ पर आसक्त है।

दुर्जनसिंह : अच्छा !

चन्द्रसेन : अ · अ· अरे जब मैं न न · नेह नगर गया था उ··· उ · उस समय उसने य·· यहाँ आना तक स्वीकार क ··क · कर लिया था।

दुर्जनसिंह : तब फिर विलम्ब क्यों, श्रीमान् के नेह नगर चलने के पहले ही उसे यहाँ ले आऊँगा।

चन्द्रसेन : हँ···हँ···हाँ अवसर तो अच्छा है। इ···इ···इस समय कुमारिकाश्रम के व··· व··· वार्षिकोत्सव की गड़-बड़ में इस ब·· ब · बात का पता भी किसी को न नहीं लगेगा।

दुर्जनसिंह : कल आप नेह नगर चलने के पहले उसे यहाँ पायँगे।

चन्द्रसेन : श श · शीघ्र लाना।

दुर्जनसिंह : बहुत शीघ्र, श्रीमान्; तो आज्ञा हो।

चन्द्रसेन : अच्छा जाओ।

[दुर्जनसिंह का प्रस्थान।]

[चन्द्रसेन बोतल से मदिरा उँड़ेलता है, पीता है और कुछ गुनगुनाता है। यशवन्तसिंह का प्रवेश। वह निकट जाकर प्रणाम करता है।]

चन्द्रसेन : (**यशवन्त को न देखकर मदिरा पीकर**) त···त तब।

यशवन्त : (**जोर से**) प्रणाम, श्रीमान्, प्रणाम।

चन्द्रसेन : (**शब्द सुनकर, चौंककर, यशवन्त को देखकर**) क· · क . कौन य· ·य य ·यशवन्त महाशय। ···अ··· अ···आइए ब···बैठिए।

यशवन्त : (**बैठकर**) आज मुझे श्रीमान् से बहुत कुछ विनय करना है।

चन्द्रसेन : (**यशवन्त की बात न सुन मदिरा पीकर**) क· क·· क्या हो रहा होगा ?

यशवन्त : (**बीच ही में**) श्रीमान्, मुझे कुछ आवश्यक बातें कहनी है।

चन्द्रसेन : (**बिना सुने ही**) उ · उ उनका रंग लाल होगा, प · प पीला होगा। अ आँखे चकाचौंध।

यशवन्त : (**जोर से**) श्रीमान्।

चन्द्रसेन : (**चौंककर**) क·· क क्या ल· ल लग गयी ?

यशवन्त : (**और जोर से**) आज श्रीमान् को क्या हुआ है ?

चन्द्रसेन : (**यशवन्त को देखकर, खीझकर**) तु ··तु तुम इतने जोर से क·· क ··क्यों बोलते हो जी ! (**फिर अपनी धुन में**) ओ हो···फिर तो ·····

यशवन्त : (**चिल्लाकर**) श्रीमान् को क्या हुआ है ?

चन्द्रसेन : (**चौंककर**) तु···तु तुझको क्या हुआ है रे? च·· च ·चल निकल यहाँ से। (**लात मारकर मदिरा पीकर**) उ···उ···उस समय उसको लेकर म·· म···मैं

कैसे · भ···भागूंगा ? (उठकर भागता हुआ) य·· य···यों ! (भाग जाता है। यशवन्त नीचा मस्तक किये बैठा रहता है।)

परदा गिरता है।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : रूपसेन के मकान की दालान

समय : सन्ध्या

[रूपवती और रेवती का प्रवेश ।]

रूपवती : इसमे सन्देह नही, वहन, प्रेम के समान संसार मे कोई वस्तु नहीं, इसका विस्तार भी वहुत है और सकीर्णता का भी ठिकाना नहीं । विस्तार इतना है कि समस्त विश्व उसमे आ जाता है और संकीर्णता इतनी है कि वह केवल एक ही व्यक्ति तक परिमित होता है, संसार से उसका सम्वन्ध नही । तुम जानती हो मोहन प्रेम का उच्च और स्वाभाविक स्वरूप क्या वताते थे ?

रेवती : क्या, वहन ?

रूपवती : वे कहते थे कि प्रेम का उच्च और स्वाभाविक रूप विस्तृत है, संकीर्ण नहीं, जिसका वालक को उसकी वाल्यावस्था में अनुभव होता है जव उसे हर वस्तु में सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है । मुझे भी स्मरण तो है, वहन, कि वाल्यावस्था में ऐसा होता था, परन्तु

मैं तो उसे अज्ञान मानती हूँ।

रेवती : कैसा ?

रूपवती : उस समय तो मिट्टी के खिलौनों से भी प्रेम होता है।

रेवती : हाँ, यह तो सत्य है।

रूपवती : इसीलिए मैं यह नही मानती कि मेरे हृदय में जो प्रेम है वह निम्न कोटि का और अस्वाभाविक प्रेम है। यद्यपि मेरे हृदय के आधार केवल मोहन हैं, समस्त संसार नहीं, तथापि इतना मै कह सकती हूँ कि मेरा प्रेम उच्च और स्वाभाविक है।

रेवती : मै तुम से पूर्ण रीति से सहमत हूँ। आज तक जो हमारे देश मे इतनी पतिव्रता स्त्रियाँ हुईं, जिन्होंने केवल पति ही से प्रेम किया, क्या उनका प्रेम निम्न कोटि का और अस्वाभाविक कहा जा सकता है ?

रूपवती : कदापि नही। बस वैसा ही मेरा प्रेम है। यद्यपि हम दोनों का विवाह-सम्बन्ध अभी नही हुआ, तथापि जव पिताजी मुझे उनके हाथों में सौप गये हैं, तब वही मेरे पति हैं और पति ही स्त्री के लिए सर्वस्व है। मै उन्हे इसी भाव से देखती हूँ, इसी भाव से प्रेम करती हूँ।

रेवती : पर इसका क्या कारण है, सखि, कि मोहन इस विषय की कोई वात भी नहीं छेड़ते ? उन्होंने तुम्हारे पिताजी की आज्ञा भी देख ली, फिर भी वे इस विपय की चर्चा नहीं करते ?

रूपवती : कुछ समझ में नहीं आता। एक बात हो सकती है।

रेवती : क्या ?

रूपवती : पहले वे नेह नगर के जमींदार के यहाँ रहते थे।

रेवती : जानती हूँ।

रूपवती : उनके एक कन्या है जिसका नाम कालिन्दी है।

रेवती : यह भी जानती हूँ।

रूपवती : कदाचित् उनका उससे प्रेम हो।

रेवती : परन्तु मैं सुनती हूँ कि तुम उससे कहीं अधिक सुन्दरी हो।

रूपवती : **(आश्चर्य से)** छिः, छिः क्या कहती हो, सखि ? क्या मोहन सदृश पुरुष सुन्दरता के लिए किसी रमणी से प्रेम करेंगे ? कभी नहीं। जो पुरुष समस्त विश्व से समान प्रेम करता है, उसके लिए किसी विशेष रमणी की सुन्दरता क्या वस्तु है ? उनके विषय में ऐसा सोचना भी मूर्खता है, पाप है। यदि वे किसी रमणी से प्रेम करेंगे तो कर्त्तव्य की प्रेरणा से, न कि बाह्य सुन्दरता को देखकर।

रेवती : **(लज्जित होकर)** क्षमा करो, बहन, मैंने उनके सम्बन्ध में ऐसा कहा, किन्तु तुम्हारे पिता जी ने अपनी अन्तिम इच्छा पूर्ण करने का भी तो उनसे वचन ले लिया है। क्या वे अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करेंगे ?

रूपवती : परन्तु यदि कालिन्दी को उन्होंने पहले वचन दे दिया

होगा, तो क्या होगा ?

रेवती : हाँ, तव तो· ····

रूपवती : जानती हो ऐसी परिस्थिति में मै क्या करूँगी ?

रेवती : (दुःख से) क्या करोगी, सखि ?

[रूपवती रेवती के कान में कुछ कहती है।]

रेवती : (घबराकर) यह कैसी प्रतिज्ञा, वहन ? पागल तो नही हो गयी हो।

रूपवती : (और भी दृढ़ता से) नही, सखि, प्रतिज्ञा प्रतिज्ञा ही है। (कुछ ठहरकर) लोक-सेवा सम्वन्धी उनका वनाया हुआ एक गीत सुनोगी ?

रेवती : मोहन का वनाया हुआ गीत और तुम्हारे कण्ठ से किसे सुनने की इच्छा न होगी।

[रूपवती गाती है।]

(राग धनाश्री)

वस चलो करो उपकार, यही जग सार है।
यह नर तन मिले उदार, नहीं हर वार है॥

यदि हम हम ही तक रहे, कर न सके कुछ और।
तो हमने फिर क्या किया, वन सव के सिरमौर॥
तुम देखो तनिक विचार; यही जग सार है।
यह नर तन मिले उदार, नहीं हर वार है॥

निज पोषण तो सव करें, पशु-कृम, कीट, विहंग।
जो हम भी वैसे रहें, वृथा धरा नर अंग॥

यदि सोचो स्वार्थ विसार; यही जग सार है।
यह नर तन मिले उदार, नही हर बार है॥
जग-सेवा ही ईश की, सच्ची सेवा जान।
स्वार्थ त्याग कर्त्तव्य की, ठानों मन में ठान॥
हो जिससे मोद अपार, यही जग सार है।
यह नर तन मिले उदार, नही हर बार है॥

[रूपवती का गाते-गाते तथा पीछे-पीछे रेवती का प्रस्थान।]

परदा उठता है।

छठवाँ दृश्य

स्थान : कुमारिकाश्रम

समय . रात्रि

[सारा आश्रम बन्दनवार आदि से सजा है। मन्दिर और मकान के बीच में रंगमंच बनाया गया है। इसके सामने दर्शकों के बैठने के लिए दरी और ग़लीचे बिछे हैं। बहुत से लोग बैठे भी हैं। शूरसेन, चन्द्रसेन, मोहन आदि भी उन्हीं में है। सब लोग अपनी-अपनी पूरी पोशाक मे हैं। मोहन भी अचकन पाजामा पहिने और सफेद साफा बाँधे है।]

[कालिन्दी का यवनिका के बाहर प्रवेश।]

कालिन्दी : महानुभावो ! वार्पिकोत्सव निर्विघ्न समाप्त हो गया। उसी के आनन्द मे आश्रम की प्रधानाध्यापिका ने जो अभिनय कराना निश्चय किया है वह अब अध्यापिकाओं और आश्रम की वालिकाओं द्वारा आपके सम्मुख अभिनीत किया जायगा। सज्जनो ! इस संस्था की स्थापना को एक वर्प होता है। मैं जानती हूँ कि इस देश की विराट संस्थाओं के सम्मुख यह ग्रामीण संस्था समुद्र की तुलना में एक क्षुद्र

बिन्दु के समान है और मै यह भी जानती हूँ कि इस संस्था द्वारा विशाल नारी जाति की उन्नति का प्रयत्न करना वौने के चन्द्र छूने के सदृश हास्यास्पद है; किन्तु, महाशयो ! मनुष्य हृदय एक विलक्षण वस्तु है; अपनी निर्वलताओं और सीमाओं को जानते हुए भी यह हृदय बड़ी-बड़ी बातें करने की आकांक्षा करता है; वे आकांक्षाएँ इतनी प्रवल हो जाती हैं कि उन्हें पूर्ण किये विना इस हृदय को सुख और शान्ति ही नहीं मिलती; आश्चर्यजनक वात तो यह है कि इन बड़ी-बड़ी आकांक्षाओं की पूर्त्ति के लिए छोटे-छोटे कार्यों मे भी, जव वे कार्य अपने ही द्वारा किये जाते है, यह हृदय एक अद्भुत प्रकार की ममता का अनुभव करता है। इस छोटी-सी संस्था के उद्गम का यही कारण और यही इसका छोटा-सा इतिहास है। मै अबोध वालिका आपका अधिक समय नही लेना चाहती। मेरी इन बातों मे न तो कोई ज्ञान है और न कोई रस। ये केवल एक क्षुद्र हृदय के क्षुद्र उद्गार है। मैं आशा करती हूँ कि आश्रम की प्रधानाध्यापिका के तत्वावधान में इस नाटक का प्रयोग आपके मनों को मेरे इस रूखे-सूखे कथन से कहीं अधिक प्रिय प्रतीत होगा। अन्त में मै आप सब सज्जनों को, आपने यहाँ पधारकर इस उत्सव की शोभा बढ़ाने का जो कष्ट उठाया है और इसके लिए

जो अपना अमूल्य समय दिया है उसके लिए, हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

[कालिन्दी का प्रस्थान। घण्टी बजकर यवनिका का उत्थान।]

पहला दृश्य

स्थान : एक मकान की दालान

समय : रात्रि

[खादी के वस्त्र पहने हुए एक गौर वर्ण युवक कुरसी पर बैठा है। एक किसान, एक मजदूर, एक वेश्या, एक बालक और एक महतर खड़े है। किसान घुटनों तक चढ़ी हुई धोती पहने है जिसमें स्थान-स्थान पर थिगड़े लगे है और कहीं-कहीं से वह फटी भी दिखायी देती है। शरीर पर अनेक स्थानों पर फटी हुई मिरजई पहने है। सिर पर फटा-सा फैंटा बँधा है। मजदूर लंगोटी लगाये नंगे बदन है। हाथ में फावड़ा और कुल्हाड़ी है। वेश्या प्रौढ़ अवस्था की है। कपड़े फटे-से है। शरीर पर कुछ लाल दाग हैं। बालक दुबला-पतला है और महतर हाथ में झाड़ू लिये है।]

युवक : जानता हूँ, भाई, जानता हूँ, यहाँ अन्नदाता किसान अन्न के लिए तरस रहे हैं। कारीगर मजदूर हो गये है। समाज की प्रतिष्ठित महिलाओं को भी वेश्या होना पड़ता है और तब भी उनकी दुर्दशा होती है।

बाल-विवाह से समाज की जड़ ही सड़ रही है। और मनुष्य पशुओं से भी निकृष्ट अस्पृश्य समझा जाता है। ऐसे देश का पतन न हो तो क्या हो, परन्तु…

[आग लगती है, सब लोग उठकर भागने लगते हैं।]

मोहन : (घबराहट से) महानुभावो ! इस समय हम लोगों का कुछ कर्त्तव्य है। भागिये नहीं, वीर पुरुष होकर भागना इस समय शोभा नहीं देता। (कुछ भाग जाते हैं। कुछ रुकते हैं।) इस समय हम लोगों का कर्त्तव्य इन स्त्रियों और बालिकाओं की रक्षा करना है।

[आग बढ़ती है, सब भाग जाते है। नेपथ्य मे "पकड़ो-पकड़ो यही दुष्ट आग लगा रहे है" आवाज। मोहन जलती हुई आग मे शीघ्रता से घुस जाता है। नेपथ्य में कोलाहल।]

यवनिका

पहला दृश्य

स्थान : रूपसेन के मकान का मोहन का कमरा

समय : दोपहर

[पलंग पर अंग-प्रत्यंगों पर पट्टी बाँध मोहन लेटा है। एक ओर बल्देव और दूसरी ओर रूपवती बैठे हैं।]

रूपवती : अब घावों की जलन का क्या हाल है ?

मोहन : तुम चिन्तित न हो, रूप, पहले से मैं बहुत अच्छा हूँ।

बल्देव : क्या कहते हो, मित्र, अभी भी अत्यन्त कष्ट होगा।

मोहन : तुम लोग निरर्थक ही चिन्ता करते हो। मैं तो सच कहता हूँ कि मुझे इतना अधिक कष्ट नहीं हुआ, जितना तुम लोग समझते हो।

रूपवती : इससे अधिक और क्या कष्ट हो सकता है, कठिनाई से प्राण बचे हैं।

मोहन : शरीर को चाहे कुछ कष्ट हुआ हो, हृदय को नहीं।

रूपवती : इसका कारण आपके हृदय की उच्चता है।

मोहन : सच कहता हूँ, रूप, इन घावों की जलन हृदय को उल्टी ठण्डक पहुँचाती है। जिस समय इन घावों के कारण की ओर ध्यान जाता है, उस समय इनका

सारा कष्ट भूलकर हृदय को एक प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है।

बल्देव : अद्‌भुत हृदय है !

मोहन : और अभी क्या ? जब तक यह देह है तब तक इन घावों के चिन्ह इनके कारण का स्मरण दिलाकर हृदय को सदा आनन्दित किया करेंगे।

रूपवती : धन्य है आपके इस त्याग और उस दिन के साहस को।

मोहन : नही, रूप, इसमें मेरी कोई विशेषता नहीं है। उस जगदाधार, करुणासागर भगवान् को जिससे सेवा लेनी होती है उसके हृदय में वे शक्ति और साहस स्वयं ही दे देते हैं।

रूपवती : हाँ, यह तो है ही पर···

मोहन : पर क्या, रूप, इस विराट संसार में मनुष्य क्या है ? एक क्षुद्र अत्यन्त क्षुद्र वस्तु। मनुष्य की शक्ति, मनुष्य का साहस भी क्या है ? मेरी कहाँ यह शक्ति थी, कि मैं अकेला इतनी स्त्रियों और बालिकाओं की रक्षा कर सकता। यह सब उस शक्तिशाली परमात्मा की शक्ति थी, उसी का साहस था।

बल्देव : मित्र, उन अग्नि की लपटों से तुम्हें कैसी झुलस जान पड़ी होगी ?

मोहन : उस समय मुझे कुछ ज्ञात ही न हुआ, मित्र। आरम्भ में अवश्य मुझे वे लपटें बड़ी भीषण दिखीं, पर उनमें घुसते ही न तो वे लपटें स्पष्ट दृष्टिगोचर हुई और न

उनकी झुलस ही का मैं अनुभव कर सका। अग्नि में घुसने के पश्चात् जब तक उन स्त्रियों और बालिकाओं को उस अग्नि के बाहर न कर दिया, तब तक कहाँ क्या है और क्या हो रहा है इसका मुझे कोई स्पष्ट ज्ञान न था।

बल्देव : तुम मुझे साथ ले चलते तो मैं अवश्य सहायता करता।

मोहन : अवश्य, इसमें कोई सन्देह नहीं।

रूपवती : सचमुच आश्चर्य की बात है कि दर्शकों में से एक भी वहाँ न ठहरा और किसी ने आपको सहायता न दी।

मोहन : और वह भी, रूप, उस समय जब कुछ घड़ियों पूर्व ही लोग इतने शिक्षाप्रद भाषण सुन चुके थे। सभी दर्शकों का हृदय चिकने घड़े के तुल्य था, उन भाषणों का प्रभाव उनके हृदय पर क्षणमात्र को भी न पड़ा। मुझे यह उस समय ज्ञात हुआ कि स्वार्थ के सम्मुख उपदेश कोई वस्तु नहीं है। परन्तु वह बात मन में न लाना ही ठीक है।

बल्देव : क्यों? ये तो संसार के कटु अनुभव हैं, इन्हें तो सदा स्मरण ही रखना चाहिए।

मोहन : नहीं, मित्र, इस प्रकार के अनुभवों को भूल जाना ही श्रेयस्कर है।

बल्देव : क्यों?

मोहन : इन बातों को स्मरण कर हृदय को असीम कष्ट होने लगता है। मनुष्य, संसार के सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य,

के लिए प्रेम के स्थान पर हृदय ग्लानि से परिपूर्ण हो जाता है।

बल्देव : ऐसे मनुष्यों के लिए ग्लानि का होना ही उपयुक्त है।

मोहन : मनुष्य से इतनी नीचता, मनुष्य से इतना घृणित कार्य; अपने शरीर को बचाने के लिए, उस शरीर को बचाने के लिए जिसे एक दिन त्यागना निश्चित है, मनुष्य जलती हुई स्त्रियों, अबोध बालिकाओं को छोड़कर भाग सकता है।

रूपवती : इतना ही नहीं, वह आग तक लगा सकता है।

मोहन : ठीक कहती हो, रूप, सर्वथा ठीक कहती हो। यह स्वार्थ जो न करावे सो थोड़ा। अपने स्वार्थ के लिए, साढ़े तीन हाथ के इस नश्वर शरीर के स्वार्थ के लिए, मनुष्य निर्दोष बालिकाओं के, कोमल और विशुद्ध हृदय बालिकाओं के, ईश्वर के अत्यन्त सन्निकट बालिकाओं के, जल जाने, ईश्वर की इतनी सुन्दर सृष्टि नष्ट हो जाने, की चिन्ता न कर जब आग लगा सकता है, तब वह सब कुछ कर सकता है। जब इस बात को सोचता हूँ, रूप, तो मनुष्य की सारी नीचताओं की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट हो जाता है। वह मनुष्य जो संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है, क्या-क्या नहीं कर रहा है। पृथ्वी के निर्जीव राज्य के लिए, सोने और चाँदी के निर्जीव टुकड़ों के लिए भाई-भाई और पिता-पुत्र लड़ते हैं, स्त्रियों और बालक-बालिकाओं की हत्याएँ होती है।

रूपवती : सभी कुछ हो रहा है, कहाँ तक इस ओर ध्यान दीजिएगा।

बल्देव : संसार पर प्रेम का नहीं स्वार्थ का ही राज्य है।

मोहन : ओह ! प्रात.काल के सूर्य की सुनहली किरणों में मनुष्य को सोना दिखायी नही देता, चन्द्रमा की श्वेत ज्योत्स्ना में उसे चाँदी दृष्टिगोचर नही होती, तारों की झिलमिलाहट में वह हीरों के श्वेत प्रकाश को अवलोकन करने में असमर्थ है, बादलों के लाल, हरे और नीले वर्णों में उसे माणिक, पन्ने और नीलम दिखायी नहीं देते। वह तो उसी सुवर्ण, उसी चाँदी और उन्ही रत्नों को चाहता है जो उसे दूसरों को हानि पहुँचाए बिना, दूसरों को क्षुधित रखे बिना, दूसरों का रक्त बहाए बिना प्राप्त नहीं हो सकते और फिर इस रक्त-रजित धन को प्राप्त कर वह उसका क्या करता है ? उसे देखता ही है न ? देखकर ही आनन्द मानता है न ?

बल्देव : और क्या, उन्हें खा थोड़े ही सकता है।

मोहन : ठीक कहते हो, मित्र, जीवित रहने के लिए तो आध सेर आटे, शरीर ढाँकने को दस गज कपड़े और धूप पानी के बचाव के लिए तो यथार्थ में एक छोटे से छप्पर की ही आवश्यकता है। संसार के इस घृणित और ग्लानिपूर्ण व्यवहार को देखकर कभी-कभी मुझे भी इस संसार में नरक का आभास होने लगता है। हृदय में सन्देह उठ खड़ा होता है कि क्या ऐसा संसार, ऐसा

मनुष्य-समाज भी कभी विश्व-प्रेम का तत्त्व समझ सकेगा ? इस नरक का स्वरूप भी क्या कभी स्वर्ग में परिणत हो सकेगा ?

[वैद्य का प्रवेश। रूपवती और बल्देव खड़े होते हैं। मोहन भी बैठता है ।]

वैद्य : आप लेटे रहिए, आप लेटे रहिए। कहिए अब स्वास्थ्य कैसा है ?

मोहन : महाराज, अब इतना कष्ट नहीं है। मैं सुविधापूर्वक बैठ सकता हूँ।

परदा गिरता है।

दूसरा दृश्य

स्थान : शूरसेन के कमरे की दालान

समय : सन्ध्या

[शूरसेन और भोलानाथ टहल रहे हैं।]

शूरसेन : देखा, भोलानाथ, उस दिन कितना अनर्थ हुआ ?

भोलानाथ : निःसन्देह महान् अनर्थ, श्रीमान्।

शूरसेन : अन्त में मेरे शुभचिन्तक जो कहते थे वही हुआ न ?

भोलानाथ : निःसन्देह वही हुआ, श्रीमान्।

शूरसेन : तभी तो हमारे पुराने लोग इन कामों के इतने विरुद्ध हैं।

भोलानाथ : निःसन्देह ठीक कहते हैं, श्रीमान्।

शूरसेन : वह कहाँ की भुखमरी संन्यासिनी आ गयी थी !

भोलानाथ : निःसन्देह महा भुखमरी, श्रीमान्।

शूरसेन : अन्त में सबकी इच्छानुसार मैंने निकाल बाहर किया, और कुमारी आश्रम तोड़ डाला।

भोलानाथ : निःसन्देह कहाँ तक उस आपत्ति को रखते, श्रीमान्।

शूरसेन : भोलानाथ, समय ने ही पलटा खाया है।

भोलानाथ : निःसन्देह खाया है, श्रीमान्।

शूरसेन : स्त्रियाँ तक संन्यास लेकर पुरुषों को धर्म-मार्ग दिखाना चाहती हैं।

भोलानाथ : निःसन्देह अनर्थ है, श्रीमान्।

शूरसेन : वे स्त्रियाँ, भोलानाथ, जिन्हें हमारे प्राचीन धर्म के अनुसार न वेद का अधिकार है और न संन्यास का, जिनके पूरे षोड़स संस्कार तक नहीं होते, यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्।

शूरसेन : फिर उस प्रमोदिनी की जाति-पाँति का भी तो कोई ठिकाना नहीं।

भोलानाथ : निःसन्देह कोई ठिकाना नहीं, श्रीमान्।

शूरसेन : एक दिन एक सज्जन कहते थे कि संन्यास लेने के पूर्व वह शूद्राणी थी।

भोलानाथ : कदाचित् अन्त्यज हो, श्रीमान्।

शूरसेन : जब ऐसे-ऐसे उपदेशक होने लगे तब समाज का कल्याण हो सकता है ?

भोलानाथ : निःसन्देह ठीक कह रहे हैं, श्रीमान्। इस प्रकार के पाखण्डी धर्म का उपदेश क्या करेंगे ? लोगों को निःसन्देह मनमाने ढंग से वहकाते हैं। और इस प्रकार के वहकाने का प्रभाव सबसे अधिक निःसन्देह युवकों पर पड़ता है, श्रीमान्।

शूरसेन : अवश्य।

भोलानाथ : उस प्रमोदिनी के लिए मुझे तो केवल निःसन्देह एक

दण्ड सूझता है।

शूरसेन : वह कौनसा ?

भोलानाथ : निःसन्देह मृत्यु-दण्ड। अभी कुछ ही दिन हुए मैंने पढ़ा था कि पश्चिम में कोई ग्रीस नाम का देश था। वहाँ सुकरात नाम का एक आदमी हुआ था। उसको, श्रीमान्, उस देश के युवकों को बहकाने के अपराध में प्राण-दण्ड दिया गया था।

शूरसेन : (आश्चर्य से सिर हिलाकर) हाँ।

भोलानाथ : यदि न्याय मेरे हाथ में दिया जाय तो मैं इस प्रमोदिनी को भी निःसन्देह वही दण्ड दूँ। मोहन, कालिन्दी देवी आदि सबको निःसन्देह इसी नामधारी पाखण्डी संन्यासिनी ने बहकाया है।

शूरसेन : (कुछ ठहरकर) कुशल यही हुई, भोलानाथ, कि उस दिन की आग में कालिन्दी अधिक नहीं जली।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, ईश्वर ने बड़ी रक्षा की।

शूरसेन : देखो तो, भोलानाथ, यह मोहन भी कितना मूर्ख है।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, मैं तो सदा कहता ही हूँ कि मूर्खों के सींग थोड़े ही होते हैं।

शूरसेन : उसका भाग्य अच्छा था, जो बच गया, नहीं तो उस भीषण आग से बच पाता ! राम का नाम लो !

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्।

शूरसेन : फिर भी वह ऐसा जला है कि अब सब उपकार करना भूल जायगा।

भोलानाथ : निःसन्देह भूल जायगा, श्रीमान् ।

शूरसेन : और तुमने उस दिन एक बात देखी थी ?

भोलानाथ : क्या, श्रीमान् ?

शूरसेन : उसने आते ही मेरे पैर छुए थे ।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान् । आपके पैर भला कैसे न छूता ।

शूरसेन : नहीं, नहीं, उसमें रहस्य था ।

भोलानाथ : कैसा, श्रीमान् ?

शूरसेन : मैं भी पहले उसके भुलावे में आ गया था, परन्तु पीछे से जब लोगों ने समझाया तब समझ में आया कि वह एक प्रकार का ताना था ।

भोलानाथ : वह ताना श्रीमान् ?

शूरसेन : कि तुमने तो मेरा अपमान किया, फिर भी मैं अयोध्या के मन्त्री के पद पर पहुँच गया ।

भोलानाथ : निःसन्देह ताना था, श्रीमान् ।

शूरसेन : बच्चा जी को इस ताने का दण्ड भी खूब मिला ।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, जो जैसा करता है वह वैसा फल भी भोगता है ।

शूरसेन : (कुछ ठहरकर) भोलानाथ, अब तक कौमुदी का पता नहीं लगा ।

भोलानाथ : हाँ, श्रीमान्, निःसन्देह इतना प्रयत्न किया, पर सब निःसन्देह असफल हुआ ।

शूरसेन : इन दोनों लड़कियों ने तो मेरा बुढ़ापा बिगाड़ दिया । एक को पढ़ाया-लिखाया था, इसीलिए अब तक

विवाह न किया था, पर वह भी ऐसी निकली कि घर-घर और मुँह-मुँह अनेक प्रकार की चर्चा करा रही है और दूसरी को समझता था कि बड़ी सीधी है, पर उसके भी पंख लग गये।

भोलानाथ : निःसन्देह क्या कहूँ, श्रीमान्।

शूरसेन : भोलानाथ, मै समझता हूँ कि कौमुदी के लापता होने में उसका स्वतः का भी कुछ हाथ अवश्य है।

भोलानाथ : कैसा, श्रीमान् ?

शूरसेन : कुछ दिनों से उसकी चेष्टा और आचरण में मुझे उसका पहला सीधापन दिखायी न देता था।

भोलानाथ : अच्छा !

शूरसेन : यह सम्भव नही कि बिना उसकी इच्छा के कोई इस प्रकार उसे ले जा सके।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्, वे इतनी छोटी थोड़े ही थीं कि कोई गोद में ले जाता।

शूरसेन : हाँ, मै तो इन लड़कियों के कारण समाज में मुँह दिखाने योग्य भी न रहा।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान् ठीक कह रहे है, परन्तु इस शोक से क्या लाभ होगा ?

शूरसेन : उस दिन उस आश्रम के उत्सव के कारण ही यह गड़बड़ भी हुई। मैं तो समझता हूँ कि आश्रम में उत्सव में जाने के बहाने ही कौमुदी स्वयं चल दी है।

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्।

शूरसेन : क्या कहूँ, बड़ा अनर्थ हो गया, भोलानाथ।

भोलानाथ : क्या कहूँ, श्रीमान्, पर अब आप कालिन्दीदेवी की चिन्ता कीजिए।

शूरसेन : (लापरवाही से) हाँ, जब से वह मोहन गया है और विशेषकर जब से यह आश्रम तोड़ा गया है, तब से वह कुछ अनमनी-सी रहती है, पर मैं भी ऐसी बन्दर-घुड़कियों से डरनेवाला नहीं। मैंने उसका उपाय भी कर लिया है।

भोलानाथ : वह क्या, श्रीमान् ?

शूरसेन : उसका शीघ्र विवाह कर डालना। धीरे-धीरे मेरी समझ में आ गया कि आजकल की लड़कियों का स्व-भाव कैसा होता है।

भोलानाथ : कैसा, श्रीमान् ?

शूरसेन : जब तक उनका विवाह न कर दिया जाय तब तक वे बड़ी स्वेच्छाचरिणी रहती है।

भोलानाथ : (घबराकर) पर श्रीमान् चन्द्रसेन के साथ तो उनके विवाह के अब मैं निःसन्देह विरुद्ध हूँ; मैं कई दिन से श्रीमान् से यह निवेदन करना चाहता था।

शूरसेन : क्यों ?

भोलानाथ : क्या आपने नहीं सुना कि कुमारिकाश्रम में आग लगाने के अपराध में चन्द्रसेन जी का कर्मचारी दुर्जनसिह पकड़ा गया है।

शूरसेन : (लापरवाही से) इससे क्या ? सेवक अपराध करे तो

उसका उत्तरदाता स्वामी थोड़े ही हो सकता है ।

भोलानाथ : (सिटपिटाते हुए) सो तो निःसन्देह ठीक है, श्रीमान्, पर······

शूरसेन : (बात काटकर) पर-वर कुछ नहीं । तुम जानते हो कि जो कुछ मैं निश्चय कर लेता हूँ उससे विचलित नहीं होता । फिर यह बात तो बहुत आगे बढ़ चुकी है, तुम जानते ही हो कि चन्द्रसेन के यहाँ टीका भी जा चुका है ।

[भोलानाथ चुप रहता है । दासी का प्रवेश ।]

दासी : इन्दुमती जी ने श्रीमान् को बुलाया है ।

शूरसेन : अच्छा, भोलानाथ, मैं भीतर जाता हूँ, तुम भी घर जा सकते हो ।

भोलानाथ : जो आज्ञा, श्रीमान् ।

[एक ओर भोलानाथ और दूसरी ओर शूरसेन का प्रस्थान ।]

परदा गिरता है ।

तीसरा दृश्य

स्थान : इन्दुमती के कमरे की दालान

समय : रात्रि

[शूरसेन और इन्दुमती का प्रवेश। इन्दुमती लगभग ५५ वर्ष की गेहुँएँ रंग की दुबली और ठिगनी स्त्री है। सफेद साड़ी और गुलाबी चोली पहने है। आभूषण सोने के हैं।]

इन्दुमती : (दुःखित स्वर में) नाथ, जब से उसने सुना है कि चन्द्रसेन को टीका गया है तब से तो उसकी बड़ी बुरी दशा हो रही है।

शूरसेन : (बेपरवाही से) फिर क्या करूँ ?

इन्दुमती : हाय ! हाय ! कैसी फूल-सी सुकुमार लड़की है। मेरे तो लड़का कहो, लड़की कहो, जो कुछ है, वही है। मै लड़की की यह दशा कहाँ तक देखूँ। (रोती है।)

शूरसेन : (भृकुटी चढ़ाकर) यदि तुमने मुझे वही बेटी का रोना सुनाने को बुलाया है तो मैं एक पल भी नहीं ठहर सकता। स्त्रियों के विचार भी बड़े विचित्र होते हैं। तुम लोगों को वचन का कुछ भी ध्यान है ? वचन तो तुम लोगों के लिए गाड़ी का चाक है।

इन्दुमती : (**हाथ जोड़े हुए**) यह ठीक है, नाथ, परन्तु···

शूरसेन : (**बात काटकर**) किन्तु परन्तु की आवश्यकता नहीं, मैं कई वार कह चुका हूँ, अब कुछ नहीं हो सकता।

इन्दुमती : पर, यदि लड़की के प्राण पर आ जाय तो?

शूरसेन : (**लापरवाही से**) मैं इन बन्दरघुड़कियों से नहीं डरता। लोग मुझे क्या कहेंगे। यदि प्राण जायँ तो चले जायँ, मेरी बात नहीं जा सकती। क्या तुमने राजा मोरध्वज का नाम नहीं सुना? वात ही पर तो उन्होंने अपने हाथों अपने पुत्र का वध किया था।

[**दासी का प्रवेश।**]

दासी : (**शूरसेन से हाथ जोड़कर**) जो सज्जन विलासपुर गये थे वे श्रीमान् को सूचना देने आये है कि विलासपुर में चन्द्रसेनजी का पता नहीं है सुना जाता है कि वे पागल होकर कहीं भाग गये है।

शूरसेन : (**आश्चर्य से**) ओहो!

दासी : और उनके साहूकारों ने उनकी समस्त सम्पत्ति नीलाम पर चढ़वा दी है।

शूरसेन : (**उसी स्वर में**) हाँ!

दासी : जो आदमी वहाँ गये थे वे यह भी कहते हैं कि इस बात का भी सन्देह होता है कि कदाचित् कौमुदी देवी भी चन्द्रसेन के मकान में ही हैं।

[**दूसरी दासी का प्रवेश।**]

दासी : (**हाथ जोड़कर**) कालिन्दी देवी का स्वास्थ्य इस समय

बहुत बिगड़ गया है। उन्होंने श्रीमान् को और माता जी को शीघ्र बुलाया है।

शूरसेन : (अचम्भे से) हैं, यह सब क्या हुआ ?

इन्दुमती : (सोच से विह्वल होकर) हाय! अब कालिन्दी का क्या होगा ? (रोती है।)

[शूरसेन, इन्दुमती और दोनों दासियों का प्रस्थान।]

परदा उठता है।

चौथा दृश्य

स्थान : कालिन्दी का कमरा

समय : रात्रि

[कालिन्दी पलँग पर लेटी है। दो दासियाँ उपस्थित हैं। शूरसेन और इन्दुमती का प्रवेश।]

इन्दुमती : (दुखित स्वर से) हाय ! हाय ! मुझे ऐसी आशा कदापि न थी। (रोती है।)

शूरसेन : (लम्बी साँस लेकर) मैं ही इस सर्वनाश का कारण हुआ।

कालिन्दी : पिता जी अब शोक न करें। संसार में सब बातें भाग्यानुसार ही होती है।

शूरसेन : (फिर दीर्घ निःश्वास छोड़कर) फिर भी, बेटी, कारण तो होता ही है। मैं ही तेरे इस कष्ट का कारण हुआ हूँ, और दूसरे है वे शुभचिन्तक पड़ोसी जो तेरे बारे में मनमानी बातें किया करते थे। हाय ! (आँसू टपकते हैं।)

कालिन्दी : आपको ऐसा विह्वल देख मेरा हृदय और व्यथित होता है। इस अन्त समय में आप मुझे शान्ति लाभ करने दीजिए।

इन्दुमती : (रोकर) हाय ! हाय ! बेटी, तू यह क्या कहती है ?

कालिन्दी : कुछ नहीं, माँ, धैर्य धरो।

शूरसेन : (काँपते हुए) हाय ! अब मैं क्या करूँ।

कालिन्दी : (शूरसेन से) इस समय आप मेरी कुछ विनय मानेंगे ?

शूरसेन : (आँसू पोंछते हुए) बेटी, जो कुछ कहेगी, तत्काल करूँगा।

कालिन्दी : मेरी विनय है, पिता जी···(रुक जाती है।)

शूरसेन : जल्दी से) निःशंक होकर कह, बेटी !

कालिन्दी : इस समय मुझे कहना ही होगा, पिता जी। मुझे निर्लज्ज न समझिएगा।

शूरसेन : नहीं, नहीं, बेटी, कदापि नहीं। अब यह दुष्ट पिता साक्षात् देवी स्वरूपा बेटी को क्या ऐसा भी समझेगा ? (आँसू पोंछता है।)

कालिन्दी : (कुछ दृढ़ता से) पिता जी, विनय यही है कि इस समय मै मोहन जी, प्रमोदिनी माता और कुमारिकाश्रम की बालिकाओं के दर्शन चाहती हूँ।

शूरसेन : बहुत अच्छा, बेटी। मैं हलकारों के हाथ मोहन को अभी पत्र भेजता हूँ और संन्यासिनीजी तथा उन बालिकाओं को भी ढुंढ़वाता हूँ।

[लम्बी साँस लेते और आँसू पोंछते शूरसेन का प्रस्थान।]

परदा गिरता है।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : भोलानाथ का घर

समय : रात्रि

नेपथ्य में—"अजी द्वार तो खोलो। आज निःसन्देह बड़ी वीरता करके आया हूँ।"

[उमा का प्रवेश। वह जाती है, कुछ देर में आगे भोलानाथ और उनके पीछे उमा आती है।]

भोलानाथ : **(हँसते हुए)** हः हः हः हः!

उमा : केवल हँसोहीगे या कुछ कहोगे भी?

भोलानाथ : हः हः हः हः।

उमा : फिर वही बात! अच्छा जाने दो, अब मैं न पूछूंगी। आपकी इच्छा हो तो बताइए, नहीं तो न सही।

[पीठ फेर खड़ी हो जाती है।]

भोलानाथ : हः हः हः हः। **(उमा के निकट जा, उसकी ठुड्डी में हाथ लगाकर)** लो रुष्ट हो गयीं। अजी, रानी जी, निःसन्देह बात ऐसी है कि कि उसे सुनकर मुझ पर तुम्हारी निःसन्देह दीठ लग जायगी

[उमा हँस पड़ती है।]

भोलानाथ : लो हँस दिया ! तुम तो मेरी बात को कुछ समझतीं ही नहीं। अच्छा लो; सुनो। कितने बड़े साहस का काम है।

उमा : (घूमकर) कहिए।

भोलानाथ : देखो, निःसन्देह अत्यन्त ध्यान से सुनना।

उमा : आप कहिए तो।

भोलानाथ : चित्त को अच्छी प्रकार एकाग्र करके सुनना। (अँगरखे की बाँहें चढ़ाता है।)

उमा : आप कहेंगे भी या यों ही करते रहेंगे।

भोलानाथ : कहने के लिए थोड़ा प्रस्तुत भी तो हो जाऊँ। (अकड़कर) लो अब सुनो, सामने खड़ी होओ।

उमा : (हँसती हुई सामने खड़ी होकर) बहुत अच्छा, कहिए।

भोलानाथ : (मूँछों पर हाथ फेरता हुआ) किस प्रकार कहना आरम्भ करूँ, निवेदन, भूमिका, प्रस्तावना, उपोद्घात, प्राक्कथन, आदि के उपरान्त, या निःसन्देह प्रारम्भ से ही विषय का आरम्भ कर दूँ।

उमा : (ऊबकर) जैसी आपकी इच्छा हो, पर कुछ कहिए तो।

भोलानाथ : (कमर पर एक हाथ रख, दूसरे हाथ से छड़ी को घुमाते हुए) अच्छा जाने दो। जब कि तुम सुनने को इतनी उत्सुक हो तो निःसन्देह विषय से ही आरम्भ करता हूँ; भूमिका अन्त में कह लूँगा। (पैर पटकने,

खखारने तथा और भी विशेष अकड़ने के उपरान्त) आज सन्ध्या को—अच्छा कथा आरम्भ करने के पहले एक बात और बता दो कि वर्णन संक्षेप से हो कि विस्तार से।

उमा : (बहुत ही ऊबकर) यदि आपको न कहना हो तो न कहिए, मैं यह चली। आप तो कसरत कराते हैं। (जाना चाहती है।)

भोलानाथ : (जल्दी से) यह लो, शीघ्र लो, अभी लो, उस स्थल से हट न जाना। नही तो इतनी देर का सब परि-श्रम व्यर्थ हो जायगा। कहने के पहले फिर नि.सन्देह इतना ही समय इस ठाट से खड़े होने में लगेगा।

उमा : (हँसकर) यह लीजिए, खड़ी हूँ। अब तो कहिए।

भोलानाथ : (खखारकर, मूँछों पर हाथ फेरते हुए) यह भी ज्ञात हुआ कि तुम निःसन्देह संक्षिप्त वर्णन पसन्द करती हो, क्योंकि तुम ऊबती जल्दी हो।

उमा : (ऊबकर) जान पड़ता है कि आपको कुछ कहना वहना नहीं है। आपने इस प्रकार के छल-छन्द कहाँ से सीखे ?

भोलानाथ : एक पण्डित से वर्णन करने की प्रणाली सीखकर आया हूँ। अच्छा सुनो, अब कहता हूँ; पर, हाँ, कहाँ तक कहा था ?

उमा : (ऊबकर) कहाँ तक क्या ? अभी तो आग, पत्थर कुछ भी नहीं कहा।

भोलानाथ : (समझाते हुए) तो रुष्ट काहे को होती हो, रानीजी ? फिर से सब आरम्भ से सुन लो, और बहुत शीघ्र, संक्षेप से। बात यह हुई कि तुम जो सदा यह कहती रहती हो कि मालिक की हाँ में हाँ न मिलाना चाहिए, बस, आज निःसन्देह मैंने हाँ में हाँ नहीं मिलायी; निधड़क होकर अपनी स्पष्ट सम्मति दे दी। (वहाँ से हट, साधारण रूप से खड़े हो) बस अब आगे न कहूँगा।

उमा : (उत्सुकता से आगे बढ़कर) क्या सम्मति दी, वह भी तो कहिए ?

भोलानाथ : (मुँह फेरकर सिर हिलाते हुए) ऊँ हूँ।

उमा : मै आपके हाथ जोड़ती हूँ, कह दीजिए।

भोलानाथ : (पीठ फेरकर) निःसन्देह, नहीं।

उमा : (ऊबकर) नहीं कहते तो न कहो। (दूर जाकर खड़ी हो जाती है।)

भोलानाथ : (पीछे-पीछे जाकर कन्धे पर हाथ रखकर) लो फिर रुष्ट हो गयीं। अच्छा सुनो, निःसन्देह कहता हूँ।

उमा : कहिए।

भोलानाथ : आज सन्ध्या को बातों ही बातों में ठाकुर साहब के सामने चन्द्रसेन की बात निकल पड़ी। मैंने उनकी सम्मति के विरुद्ध उसकी और उसके कर्मचारी दुर्जनसिंह की निःसन्देह खूब ही निन्दा की, खूब ही

निन्दा की, खूब ही निन्दा की ।

उमा : तब उन्होंने क्या कहा ?

भोलानाथ : वे चाहे कुछ भी कहें, मुझे उससे प्रयोजन ? मैंने तो नि.सन्देह अपनी वीरता दिखा दी ।

उमा : हाँ, आपने तो अपना कर्त्तव्य किया, पर उन्होंने भी तो कुछ कहा होगा ।

भोलानाथ : उन्होंने निःसन्देह यही कहा कि अब कुछ नहीं हो सकता, मैं चन्द्रसेन के यहाँ टीका भेज चुका हूँ ।

उमा : **(लम्बी साँस लेकर)** पर अब कालिन्दी देवी का क्या होगा ? उन्होंने तो जब से यह सुना है तब से चारपाई तक नहीं छोड़ी है ।

भोलानाथ : यह तो सब निःसन्देह सच है, पर मैं इसके लिए क्या करूँ ।

उमा : **(लम्बी साँस लेकर)** हाँ, यह तो ठीक ही है । चलिए आप तो भोजन कीजिए ।

[**दोनों का प्रस्थान ।**]

परदा उठता है ।

छठवाँ दृश्य

स्थान : कालिन्दी का कमरा

समय : दोपहर

[कालिन्दी लेटी है। सामने उदास भाव से शूरसेन खड़े हैं। बगल में आँसू डालती हुई इन्दुमती बैठी है। एक ओर प्रमोदिनी और कई बालिकाएँ खड़ी हैं। एक ओर से भोलानाथ और उमा तथा दूसरी ओर से मोहन का प्रवेश। मोहन सबसे प्रणाम आदि करता है। कालिन्दी और मोहन की दृष्टि मिलते ही दोनों ठिठककर रह जाते हैं। कुछ देर पश्चात् सबों को सम्बोधन कर कालिन्दी कहती है।]

कालिन्दी : (क्षीण स्वर से) अब जाने में बहुत विलम्ब नहीं। बहिन कौमुदी का अभी भी पता नही क्यों ? (कुछ ठहर कर) सबसे क्षमा; आप लोग कह दें कि मेरे सब अपराध क्षमा किये।

शूरसेन : (रोते हुए) हाय! हाय! बेटी, तू यह क्या कह रही है। मैं संसार में बैठा ही हूँ और तेरी यह दशा ! हाय ! इस सब अनर्थ की जड़ मैं ही हूँ ! (और रोता है।)

इन्दुमती : (जोर से रोकर) हाय ! बेटी, तुझे यह क्या हुआ ?

उमा : (रोकर) यह अनर्थ हो रहा है !

[मोहन एक ओर मुँह फेर लेता है और रुमाल से आँखें पोंछता है ।]

कालिन्दी : (उसी क्षीण स्वर से) तो क्या इस समय मेरी अभिलाषा पूरी न होगी ?

प्रमोदिनी : (साहस से सब को सम्बोधन करके) महाशयो ! हम लोग बड़ी भूल कर रहे है ! दुःख करने को जन्म भर पड़ा है। इस समय कालिन्दी देवी का मनोरथ पूर्ण करना हमारा प्रधान कर्तव्य है। (सब लोग कुछ शान्त होते हैं।) अच्छा, कहो, बेटी, तुम्हें क्या कहना है ?

कालिन्दी : (उसी क्षीण स्वर से) जो कुछ अपराध हो सब लोग क्षमा करें।

प्रमोदिनी : कृपा कर सब लोग उत्तर दें।

शूरसेन : बेटी, तेरे कोई अपराध नहीं हैं।

इन्दुमती : एक भी नहीं।

[सब लोग अपनी-अपनी आँखों के आँसू पोंछते हैं।]

प्रमोदिनी : मैं सब लोगो की ओर से कहती हूँ कि तुम्हारे यदि कोई अपराध हुए हों तो क्षमा किये गये।

कालिन्दी : (शूरसेन से कुछ बलयुक्त स्वर से) पिताजी, मुझे यह विनय करना है कि आप जो अपने को इस अनर्थ की जड़ मानते हैं, सो भूल जाइए। आपने मुझे बड़े लाड़-प्यार से…मैं ही हर बात में आपकी अप्रतिष्ठा का कारण…मुझे क्षमा, पिता जी।

[रोते-रोते शूरसेन की हिचकी बँध जाती है। इन्दुमती और उमा भी रोती हैं। मोहन के भी आँसू गिरते हैं।]

प्रमोदिनी : शान्त, शान्त, हो जाइए।

कालिन्दी : (इन्दुमती की ओर देखकर कुछ बलयुक्त स्वर से) माता, धैर्य धरना। क्या माता से भी संसार में कोई उऋण···? मुझे यही दुःख है कि जिस भार को नौ मास उदर में···फिर जिसे पालने में इतना कष्ट···, वह आपके लिए भार मात्र,···क्षमा···माता !

[सब लोग सुनकर और भी दुःखित होते हैं।]

कालिन्दी : (प्रमोदिनी से फिर क्षीण स्वर से) भगवती, आप मुझे क्षमा··· मेरे कारण आपने बड़ा अपमान···क्या कहूँ। (नेत्रों में जल छा जाता है)

प्रमोदिनी : इस विषय का विचार न कर, बेटी, शान्त हो। तू जानती ही है कि मुझे मान और अपमान दोनों एक से हैं।

कालिन्दी : (उमा से अत्यन्त क्षीण स्वर से)सखी, तुम से भी विदा।

[उमा रो पड़ती है।]

कालिन्दी : (बालिकाओं से बलयुक्त स्वर से) तुम सब नारी जाति की (कुछ ठहर क्षीण स्वर में) प्रतिष्ठा का कारण होना।

[बालिकाएँ रो पड़ती हैं।]

कालिन्दी : (मोहन की ओर देखती हुई अत्यन्त क्षीण स्वर से अटक-अटक कर) बस अब विलम्ब नहीं। अब चली,

नाथ (आँखें मूँदकर) आँखें मुँदी जातीं··लाओ (हाथ बढ़ाकर) चरणों को आगे·······(कुछ-ठहरकर) जाने के समय लज्जा नहीं। स्वामी, आज सब के सामने स्वामी कहती···(आँखें खोलती है।) हृदय तुमको दे चुकी थी, केवल विधि से शरीर अर्पण न···यह अगले जन्म में······(आँखें मूँदकर) आँखें मुँदी (फिर हाथ बढ़ाकर) लाइए, चरण न·· नाथ (**मोहन आँसू ढालता हुआ आगे बढ़ता है। कालिन्दी पैरों को पकड़ लेती है।**) अब जीभ ऐंठी स्वामी! मेरे अप··राध (ठहरकर कठिनता से) अपने पथ को दुख के कारण छोड़-न-देना (अत्यन्त कठिनता से) न···नाथ! हरे···कृष्ण···मो···ह··· न······

यवनिका

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

स्थान : रूपसेन के मकान का झरोखा

समय : रात्रि

[सामने सरयू बह रही है, जिसके किनारों पर सघन वृक्ष दिखायी देते हैं। चाँदनी में सरयू का पानी चमक रहा है और वायु से हिलते हुए वृक्षों के पत्तों में से छन-छन कर चाँदनी भूमि पर पड़ रही है। झरोखे में मोहन और बल्देव खड़े हुए सरयू की ओर देख रहे हैं।]

मोहन : मित्र, चाँदनी छिटकी हुई है; पवन से वृक्ष लहरा रहे हैं; सरयू बह रही है। क्या दिन, क्या रात्रि, क्या प्रातःकाल, क्या सन्ध्या सदैव इसका प्रवाह इसी प्रकार बहता है। मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के समय भी इसका प्रवाह ऐसा ही था और आज भी ऐसा ही है। अन्तर इतना ही है, कि वह पानी नहीं है, वह रेत नहीं है, वे कगारें नहीं हैं, पर सरयू वही है; प्रवाह वहीं है; इसकी अनित्यता में नित्यता अवश्य है।

बल्देव : तुम्हारा तो, मित्र, पाँचवाँ पाठ आरम्भ होता है। क्या विश्व-प्रेम के संग तुम सरयू के प्रवाह में भी परिवर्तन

करना चाहते हो ?

मोहन : इसके प्रवाह में परिवर्तन ! यह परिवर्तन हो ही नहीं सकता। ठीक सरयू के सदृश संसार का प्रवाह भी इसी प्रकार बिना रुके चला जा रहा है; चाहे कोई रहे या न रहे, पर इसका प्रवाह नहीं रुकता। इस सृष्टि में नित्य असंख्यों जीव उत्पन्न होते है और असंख्यों नष्ट होते हैं; इसे इससे सम्बन्ध नही। कौन जन्मा और कौन मरा, किस सभ्यता का विकास हुआ और किसका ह्रास, किस साम्राज्य का उत्थान हुआ और किसका पतन, इसे इससे प्रयोजन नही। कहाॅ प्रेम है और कहाँ कलह है, कहाँ शान्ति है और कहाँ समर, यह नहीं जानता। इसका चरखा इन सारी बातों की उपेक्षा करके चलता है; बराबर चलता है। नित्य समय पर प्रातःकाल होता है, समय पर सन्ध्या होती है और समय पर रात्रि हो जाती है। नित्य समय पर सूर्य निकलता और डूब जाता है। नित्य समय पर चन्द्रमा की कलाएं बढ़ती या घट जाती हैं। नित्य समय पर ग्रह तथा नक्षत्र उदय होते और अस्त हो जाते हैं। ऋतुएँ आती और चली जाती है।

बल्देव : फिर क्या इसे निर्दय कहना चाहिए ?

मोहन : नहीं, निर्दय क्यों कहा जाय ? आज मैं कालिन्दी के कारण इसे निर्दय कहूँ तो क्या यह उचित होगा ? कोई संयोगी इसे बड़ा दयावान कहता होगा।

बल्देव : **(लम्बी साँस लेकर)** सारे विश्व से प्रेम करने की दीक्षा

ले लेने पर, जीवन के इस पंचम पाठ में भी कालिन्दी को तुम न भूल सके। शूरसेन के अपमान को तुम भूल गये। मृत्यु-सम रोग के बढ़ जाने का भय होते हुए भी भूखे बालकों के लिए पथ्य अन्न देने की भी उदारता तुम कर सके। बालिकाओं की रक्षाके लिए निज प्राणों की रक्षाको भी तुच्छ जान जलती हुई अग्नि में कूदने का तुमने साहस किया। संसार में धन और रूप, कनक और कान्ता ने न जाने कितने त्यागी और विवेकी पुरुषों के त्याग और विवेक को भ्रष्ट किया है, परन्तु रूपसेन की अतुल सम्पत्ति और रूपवती का अनन्य सौन्दर्य भी तुम्हें आकर्षित नहीं कर रहे है। फिर क्या कालिन्दी के लिए इस प्रकार विह्वल होना तुम्हें शोभा देता है ?

मोहन : **(दीर्घ निःश्वास छोड़कर)** इसका कोई उत्तर मेरे पास नहीं है, बल्देव। कुछ समझ में नही आता। जब मुझे यह विचार आता है, तब मेरा सिर चक्कर खाने लगता है।

बल्देव : परन्तु, मित्र, अपने लिए न सही, रूपवती के लिए ही तुम्हें अब अपनी विचारधारा दूसरी ओर मोड़नी होगी। जब रूपसेन जी का पत्र खुला था उस समय की और आज की परिस्थिति में तो बहुत अन्तर हो गया है। उस समय तुम कालिन्दी से वचनबद्ध थे, अतः तुम्हारा यह कहना ठीक था कि तुम रूपसेन जी की आज्ञा मानने के लिए बाध्य नही. पर अब तो कालिन्दी देवी संसार में नहीं है।

मोहन : यही प्रश्न तो मुझे और धर्म संकट में डाले हुए हैं।

बल्देव : धर्म संकट कैसा, मित्र ?

मोहन : बड़ा भारी धर्म संकट है। तुम्हारे कहने के अनुसार परिस्थिति अवश्य बदल गयी है।

बल्देव : फिर ?

मोहन : परन्तु सारा प्रश्न यह है कि कालिन्दी की मृत्यु से क्या मै उसे दिये हुए वचन से मुक्त हो गया ? कालिन्दी के संसार में न रहने पर भी कालिन्दी के अतिरिक्त और किसी से विवाह करने के लिए क्या मैं स्वतन्त्र हूँ ?

बल्देव : (**आश्चर्य से**) इसमें भी क्या कुछ सन्देह है ?

मोहन : बहुत बड़ा। प्रश्न इतना सरल नहीं है जितना ऊपर से दिखायी देता है।

बल्देव : (**और भी आश्चर्य से**) तो क्या अभी भी तुम रूपसेन जी की आज्ञा पालन न करोगे, अभी भी तुम रूपवती से विवाह न करोगे ?

मोहन : यह मैंने कहाँ कहा ? मैं तो केवल यही कह रहा हूँ कि मैं बड़े धर्म संकट में हूँ। बहुत सोचने पर भी मैं अब तक कोई निर्णय नहीं कर सका हूँ।

बल्देव : (**झुँझलाकर**) तो फिर यह निर्णय होगा कब ?

मोहन : मैं स्वयं चाहता हूँ कि बहुत शीघ्र हो जाय।

बल्देव : तब ?

मोहन : पर जितनी ही मैं शीघ्रता चाहता हूँ, उतना ही विलम्ब होता जाता है। मेरे हृदय पर यह कोई छोटा-सा भार

नहीं है, बड़ा, बहुत बड़ा भार है। यह छोटा-सा हृदय, यह टूटा हुआ हृदय, इस भार से और भी दबा जा रहा है। न जाने यह मनुष्य जीवन कैसी पहेली है, जितना ही इसे सुलझाते जाओ, यह उतनी ही जटिल होती जाती है। मनुष्य इस विराट विश्व में एक क्षुद्र प्राणी अवश्य है, उसका हृदय छोटा–बहुत छोटा–है, परन्तु उसमें जो लहरें उठती हैं उन लहरों से वह सारे विश्व को व्याप्त कर लेता है। समुद्र विशाल है, गम्भीर है, उसकी लहरें, उसकी विशालता, उसकी गम्भीरता के सम्मुख बहुत छोटी वस्तु है, परन्तु इसके ठीक विपरीत मनुष्य का हृदय छोटा अत्यन्त छोटा है और यह होने पर भी उस में जो लहरे उठती हैं, वे समस्त ब्रह्मांड को व्याप्त कर लेने की शक्ति रखती है। कुछ व्यक्तियों की ये हृदय-तरंगें सुखमय होती हैं, उसे स्वयं को उनसे सुख मिलता है, दूसरों को भी उनसे सुख मिलता है, परन्तु कुछ ऐसे अभागे मनुष्य भी होते है, जिनके हृदय की ये कल्लोलें, उन्हें और दूसरों को दुःख के पानी में डुबो देती हैं। कुछ मनुष्य ऐसे बड़भागी होते है कि उन्हें बिना प्रयास के ही सुख मिल जाता है, और कुछ ऐसे अभागे होते है कि जैसे-जैसे वे सुख प्राप्त करने का उद्योग करते है वैसे-वैसे वह सुख उनसे दूर—बहुत दूर—हटता जाता है और सुख के स्थान पर उन्हें अधिकाधिक दुख भोगना पड़ता है।

बल्देव : परन्तु तुम तो कर्म के सम्मुख भाग्य को कोई वस्तु नहीं मानते थे।

मोहन : सो मैं अभी भी कहता हूँ। भाग्य के भरोसे मनुष्य को कर्म छोड़ने का कोई अधिकार नहीं है। मैंने जो कुछ अभी कहा उसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि कई वार कर्मों के विपरीत फल भी होते हैं। फल के सम्बन्ध में मनुष्य शक्ति-हीन है।

बल्देव : परन्तु, मित्र, तुम जिस छोटी-सी वात में इतने रूप और रंग देख रहे हो उसमें मुझे तो कोई भी तथ्य नहीं दिखता।

मोहन : (**रूखी हँसी हँसकर**) वल्देव, वल्देव, संसार में छोटी बातें ही इस छोटे मनुष्य के जीवन में अधिक महत्त्व रखती हैं, वड़ी नहीं। विराट सूर्य का पथ निश्चित है, विशाल चन्द्र का मार्ग नियुक्त है, वड़े-वड़े ग्रह-नक्षत्रों के मगमें भी कोई गड़वड़ नहीं, पृथ्वी भी अपने रास्ते को अणु भर भी नही छोड़ सकती; परन्तु ये सव वड़ी वहुत वड़ी-वड़ी वस्तुएँ हैं; इनके काम, उन कामों के ढंग सभी वड़े हैं। यह मनुष्य तो क्षुद्र प्राणी है, वहुत छोटी-सी वस्तु है। इसका मार्ग इतना सीधा नहीं है। इसे तो फूँक-फूँक कर ही पैर रखना पड़ता है। छोटी वस्तु तो छोटी ही वात की ओर ध्यान रखेगी बड़ी बात की ओर नहीं; फिर वड़ी बातों का निर्णय करना भी प्रायः उतना कठिन नहीं है जितना छोटी वातों का। छोटी-छोटी बातें ही अधिकतर

इस छोटे मनुष्य के इस छोटे-से जीवन की दिशा निर्णय करती हैं; उसका सुख-दुख निश्चित करती हैं, बड़ी नहीं।

बल्देव : कभी-कभी तो न जाने तुम क्या-क्या कह डालते हो कि मेरी समझ में भी कुछ नहीं आता; कहाँ रूपवती से विवाह करने की बात और कहाँ सूर्य, चन्द्र, ग्रह, पृथ्वी और समुद्र तक छलाँगें भरना।

मोहन : बल्देव, तुम्हें भी क्या यह सब पागल का प्रलाप जान पड़ता है ? पर नहीं, मित्र, नहीं, यह पागल का प्रलाप नही है, यह उस हृदय के आवेग है जो अत्यन्त क्षुद्र होने पर भी जैसा मैंने अभी कहा सारे ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर लेता है; फिर यदि तुम्हें पागल का प्रलाप ही प्रतीत होता हो तो इसे एक प्रेमी पागल का प्रलाप समझ सकते हो। रूपवती के संग विवाह की समस्या इतनी सरल नही है, नहीं तो मैं न जाने कब इस भार को हलका कर लेता, परन्तु मेरे लिए तो यह भारी, बहुत भारी, धर्म संकट है और इस पर सूक्ष्म अत्यन्त सूक्ष्म विचार की आवश्यकता है। (कुछ ठहरकर) अच्छा, देखो, एक बार फिर इस जगमगाती हुई चाँदनी, इस लहलहाते वृक्ष-समूह, इस कलकल नाद से युक्त बहती और चमकती हुई सरयू को देखो, देखो जी भरकर देखो। फिर चलो हम लोग सो रहें बहुत रात चली गयी।

[दोनों कुछ देर सामने की ओर देखते हैं। मोहन लम्बी साँस लेता है। फिर दोनों का प्रस्थान।]

पट परिवर्तन

दूसरा दृश्य

स्थान : सरयू का एक जंगली तट

समय : रात्रि

[कालिन्दी की कुमारिकाश्रम की प्रधान अध्यापिका और कौमुदी का प्रवेश।]

अध्यापिका : उस दिन तुमने अपनी पूरी कथा मुझे नहीं सुनायी। आगे का वृत्तान्त कहने में कुछ आपत्ति तो नहीं है?

कौमुदी : भला मुझे आपसे कोई बात कहने में क्या आपत्ति हो सकती है। उस दिन दुर्जनसिंह का मुझे चन्द्रसेन के यहाँ ले जाने का, चन्द्रसेन जी के कुमारिकाश्रम-उत्सव में नेह नगर जाने का और उनके अन्तःपुर में अपने रहने तक का वृत्त तो मैं आपसे कह ही चुकी हूँ।

अध्यापिका : हाँ, यहाँ तक कह दिया है।

कौमुदी : उसके पश्चात् का अब कहे देती हूँ। चन्द्रसेन के यहाँ जिस कमरे में मै जाकर ठहरी उसके आस-पास अनेक कमरे थे और उनमें अनेक रमणियाँ रहती थीं। पूछने पर ज्ञात हुआ कि ये सब चन्द्रसेन की

रखी हुई स्त्रियाँ हैं।

अध्यापिका : यह सुनकर तो तुम्हें बड़ा दुःख और आश्चर्य हुआ हुआ होगा ?

कौमुदी : नही, कुछ भी नहीं।

अध्यापिका : (**आश्चर्य से**) अच्छा ! जिससे तुम विवाह करने गयी थीं उसकी यह दशा देखकर भी तुम्हें दुःख और आश्चर्य नहीं हुआ ?

कौमुदी : इसलिए नहीं हुआ कि उनके आचरण का यह वृत्तान्त मैं पहले ही सुन चुकी थी।

अध्यापिका : (**और भी आश्चर्य से**) और तब भी तुम उनसे विवाह करने गयीं ?

कौमुदी : हाँ, क्योंकि मैं तो उनकी सम्पत्ति की अधिकारिणी होना चाहती थी। मैं यह जानती थी कि वे कुमार हैं और उनकी विवाहिता स्त्री मैं ही होऊँगी।

अध्यापिका : अच्छा फिर ?

कौमुदी : चन्द्रसेन ने दूसरे ही दिन आने को कहा था। मैं बड़ी बेचैनी से उनके आने और अपने विवाह की प्रतीक्षा करने लगी।

अध्यापिका : अच्छा।

कौमुदी : जिस दिन उन्होंने आने को कहा था वह दिन बीत गया। दिन पर दिन बीतने लगे, परन्तु उनका पता न था; उधर मैंने अनेक प्रकार के सम्वाद सुने।

अध्यापिका : कैसे ?

कौमुदी : कुछ स्त्रियों से सुना कि चन्द्रसेन कई बालिकाओं को यह कहकर लाये थे कि वे उनसे विवाह करेंगे, परन्तु विवाह न कर, बलात् उनका सतीत्व भंग कर या तो उन्हें निकाल दिया, या रखी हुई स्त्री के समान रख लिया।

अध्यापिका : (अचम्भित होकर) हाय! हाय! कैसा घोर अनर्थ है!

कौमुदी : फिर कुछ स्त्रियों से सुना कि वे इतना अपव्यय कर चुके है कि उन पर बड़ा भारी ऋण हो गया है और उनकी सम्पत्ति नीलाम होने वाली है।

अध्यापिका : इन सम्वादों को सुनकर तो तुम्हारी बुरी दशा हुई होगी ?

कौमुदी : ये सम्वाद सुनते ही मेरे पैरों के नीचे की भूमि सरक गयी। दुःख की पूर्णाहुति कुमारिकाश्रम में आग लगाने के षड्यन्त्र और चन्द्रसेन के पागल होकर भागने के समाचार से हुई।

अध्यापिका : (उत्सुकता से) तब तुमने क्या किया ?

कौमुदी : उस समय की मेरी स्थिति को मैं ही जानती हूँ, उसका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं कर सकती। मैं वहाँ से किसी प्रकार निकल भागने का प्रयत्न करने लगी; किन्तु यह कुछ सरल कार्य न था। फिर भी किसी प्रकार एक दिन रात्रि को वहाँ से निकल पायी।

अध्यापिका : तब ?

कौमुदी : उस समय न तो घर जाने का मेरा साहस हुआ और न संसार में कोई स्थान ही मेरे लिए था। अपने कर्मों पर मुझे इतनी ग्लानि आयी कि मैंने सरयू में डूब कर आत्म-हत्या करने का साहस किया।

अध्यापिका : ओह ! आत्म-हत्या !

कौमुदी : मैं सरयू में कूदने ही वाली थी कि संन्यासिनी जी आ पहुँचीं और मुझे समझाकर यहाँ ले आयीं। यहाँ आने पर आप लोगों के सत्संग और विद्याऽभ्यास से हृदय को शान्ति मिली है। जिस शिक्षा और सत्संग से मैं घृणा करती थी वही मुझे शान्ति और सुख देने का साधन हुआ है।

अध्यापिका : तुम्हारी बड़ी करुण कथा है। ईश्वर करे दिनों-दिन तुम्हारा हृदय अधिकाधिक शान्ति लाभ करे और तुम इस विशाल सृष्टि की कुछ सेवा कर सको।

कौमुदी : मैं इस योग्य कहाँ ? परन्तु आप लोगों के आशीर्वाद से कदाचित् यह भी हो सके।

[कुमारिकाश्रम की बालिकाओं का गाते हुए प्रवेश।]

(राग यमन—कल्याण)

वही है साधु जिनको टेक पर-हित की समायी है।
इसी के हित जिन्होंने धर्म की धूनी रमायी है।
राख लगा भगवा पहिर घूमे जो एकन्त।
निज सेवा के हेतु जो ये हैं झूठे सन्त।

सच्चे जो उन्हें दिन-रात भाती जग भलायी है।
दुखित देख जो अन्य को भाग चले मुख मोड़।
जावें कहीं न और जो श्रीमानों को छोड़।
उन्होंने राख क्या निज देह पर कालिख लगायी है।

[**प्रमोदिनी का प्रवेश।**]

प्रमोदिनी : (**कौमुदी से**) तुझे देखने को शूरसेन जी बड़े आतुर हैं, कौमुदी, उन्हें आज तक यह ज्ञात नहीं है कि तेरा पता लग गया है। कालिन्दी ने भी अन्त समय तेरा बड़ा स्मरण किया था।

कौमुदी : (**आँसू भरकर**) जिस बहन का मैंने सदा तिरस्कार किया, वह मुझे अन्त समय स्मरण करे, यह उसके हृदय की उदारता के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? चाचा जी से मिलने को तो मैं भी बहुत आतुर हूँ, माता, परन्तु उन्हें अपना मुख कैसे दिखाऊँगी?

प्रमोदिनी : इन सब बातों को भूल जा, बेटी। मैं उनसे सब कह दूँगी। तुझे वे एक शब्द भी न कहेंगे, वरन् तुझे देख उनका दुःख आधा हो जायगा। तेरी चाची ने भी मृत्यु के पूर्व तेरा बड़ा स्मरण किया था।

कौमुदी : (**आँख में आँसू भरकर**) मैं बड़ी अभागिनी हूँ कि ऐसे अवसरों पर भी वहाँ न थी। क्या करूँ।

[**चन्द्रसेन का शीघ्रता से हाथ फैलाये हुए फटा-सा कुरता, धोती पहने, नंगे सिर और नंगे पैर प्रवेश।**]

चन्द्रसेन : है-है-है-मेरा क्या, अ-अ-अ-अपराध है। मु-मु-मु-मुझे क्यों पकड़ते हो? भ-भ-भ-भाई! मैंने तो कुछ

अ-अ-आग लगायी नहीं। दुर्जनसिंह ही ने मुझे य-य-य-यह उ-उ-उ-उपाय बताया था। (**दौड़कर**) ह-ह-ह-हाय ! हाय ! प-प-प-पकड़ लिया। (**दौड़कर बालिकाओं को देखकर**) है-हैं-हैं- तुम लोग कौन हो ? भु-भु-भु-भुतनियाँ। कु-कु-कु-कुमारिकाश्रम में ज-ज-जली हुई बालिकाएँ ! बदला चु-चु-चु-चुकाने आयी है। (**बालिकाओं को गुलाबी वस्त्र देखकर**) अ-अ-और श-श-शरीर में अ-अ-अ-आग धारण कर···अ-अ-अब मु-मु-मु-मुझसे लिपटोगी ! हाय ! हाय ! अ-अ-अव मैं क्या करूँ। (**बालिकाओं के हाथ जोड़कर**) अ-अ-अ-अरी भुतनियो, म-म-म-मेरा कोई अ-अ-अपराध नहीं। (**कुछ ठहरकर दौड़ते हुए**) न-न-नहीं मानतीं। अ-अ-अच्छा तो यह लो म-म-मैं सरयू में कूदा। (**सरयू में कूदता है।**)

[नेपथ्य में—"हैं यह क्या, यह क्या, इतना पागलपना। सावधान। ऐसा अनर्थ न कीजिएगा। नहीं तो आप डूब जायेंगे।"]

[**नेपथ्य में**—"है यह क्या, यह क्या, इतना पागलपना। सावधान। ऐसा अनर्थ न कीजिएगा। नहीं तो आप डूब जायेंगे।"]

प्रमोदिनी : (**सबों से**) शीघ्र चलो, दोनों के बचाने का प्रयत्न करना होगा।

[प्रमोदिनी शीघ्रता से आगे बढ़ती है। सब पीछे जाती हैं।]

परदा गिरता है।

तीसरा दृश्य

स्थान : शूरसेन के मकान की दालान

समय : सन्ध्या

[विह्वल अवस्था में शूरसेन टहल रहे हैं। पीछे-पीछे भोलानाथ हैं।]

शूरसेन : (विह्वलता से) हाय ! हाय ! क्या मैं यही दुःख देखने को जीता रहूँगा। भाग्यवान तो कालिन्दी की माँ थी, जिसने अधिक समय तक दुःख न देखा।

भोलानाथ : धीरज धरिए, श्रीमान्, निःसन्देह इस दुःख का पार नहीं, पर धैर्य्य के सिवा दूसरा उपाय भी तो निःसन्देह नहीं है।

शूरसेन : (उसी तरह) भोलानाथ, मैं क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता। हृदय में आग-सी जल रही है और इस विचार से कि इस सर्वनाश का कारण मैं और मेरे ये पड़ोसी हैं, उसमें मानो घी की आहुति पड़ रही है। हा ! कालिन्दी ! हा ! इन्दुमती ! हा ! कौमुदी ! दो चल बसीं और एक ने मुझ पातकी को त्याग दिया।

भोलानाथ : श्रीमान् सोचिए तो कालिन्दी देवी अन्त समय में क्या कह गयी हैं ? उनका अन्तिम अनुरोध भी तो निःसन्देह पालन करना चाहिए।

शूरसेन : **(उसी स्वर से)** अनुरोध-पालन, भोलानाथ, अनुरोध-पालन ! हाय ! वह अनुरोध तो और भी दुःखदायी हो रहा है। वे अन्त समय के नम्र वचन ! बोलने का बल न रहने के कारण क्षीण स्वर से कही हुई वे मधुर बातें ! भोलानाथ, भोलानाथ, न जाने मुझे इस नरक से भी भयानक शोकातल में जलने को ईश्वर ने क्यों जीता रक्खा है ? **(रोता है।)**

भोलानाथ : श्रीमान्, यदि ऐसा ही करते रहेंगे तो निःसन्देह किस प्रकार कार्य चलेगा ?

शूरसेन : **(जोर से)** कार्य क्या चलना है, भोलानाथ ? इस पातकी से, कन्या के इस हत्यारे से, अब संसार में और क्या कार्य हो सकता है ? बस, अब कार्य यही है कि दिन-रात अपने किये कुकर्मो पर पश्चात्ताप किया करूं। यही पश्चात्ताप मेरे कर्मों का प्रायश्चित होगा। हाय ! हाय ! इस संसार में ऐसा भी कोई और दुष्ट होगा जो अपनी ही कन्या की हत्या करे ? हाय ! कालिन्दी, देवीस्वरूपा बेटी, सरस्वती-सी विदुषी बेटी, क्या तेरा अवतार संसार में नारी-चरित्र को उज्ज्वलता की झलक मात्र दिखाने को हुआ था ?

(कुछ ठहरकर) नहीं-नहीं बेटा हुआ था—नारी कर्तव्य की पराकाष्ठा दिखा देने को, पर मेरे कारण उसकी झलक मात्र ही दिख पड़ी। हाय ! हाय ! मैं ही तो इन सब अनर्थों की जड़ हूँ। नाश हो मेरे उन शुभ-चिन्तकों का जिन्होंने मेरी बेटी से मेरा हृदय फिराया, ऐसी दशा में जो अन्धे पथिक की अवस्था होती है वही मेरी भी हुई है।

भोलानाथ : श्रीमान्, धैर्य धरिए। देखिए, कितना समय इस प्रकार विलाप करते-करते बीत गया। देखिए तो आपके शरीर की निःसन्देह क्या दशा हो गयी है।

शूरसेन : **(शरीर को देखकर)** क्या दशा हो गयी, भोलानाथ ? कुछ भी तो नही हुई। उस शरीर के सम्मुख तो अभी इसकी कुछ भी दशा नहीं बिगड़ी। हाय ! हाय ! भोलानाथ, वह सुकुमार शरीर मेरी ही करतूत से भस्म हो गया। हाय !

भोलानाथ : श्रीमान्, आप क्या कर रहे है ? इस प्रकार से तो निःसन्देह आप···

शूरसेन : **(भोलानाथ की बात पर ध्यान न देकर पुनः अपना शरीर देख भोलानाथ से)** भोलानाथ, तुमने कैसे कहा कि मेरे शरीर की दशा हीन हो गयी है ? लाओ, अग्नि लाओ। इसमें लगाओ। तब कहीं यह उस शरीर की समता को पहुँचेगा। **(रोता है।)**

भोलानाथ : श्रीमान्, श्रीमान्, तनिक सम्हलिए। इस प्रकार

विलाप करना बुद्धिमानों का निःसन्देह काम नहीं !

शूरसेन : बुद्धिमान ! मैं बुद्धिमान, भोलानाथ ? हाँ, थोड़ी-सी बुद्धि तो अभी भी कदाचित शेष है, अन्यथा पागल न हो जाता। बुद्धि ने इस दु.ख के कुछ शान्ति होने का एक मार्ग भी सोचा है। पर, भोलानाथ, वह सम्भव नहीं है।

भोलानाथ : आप नि सन्देह बतावें, श्रीमान्, वह कौनसा मार्ग है, जिस मार्ग से आपको थोड़ी भी शान्ति मिले ? विश्वास रखिये, उस मार्ग को आपके चलने के लिए सुगम बनाने में यह आपका तुच्छ किंकर निःसन्देह कोई बात उठा न रखेगा।

शूरसेन : परन्तु, भोलानाथ, जो मै चाहता हूँ, वह होना असम्भव है। मेरे भाग्य में रोने के अतिरिक्त और अब कुछ नहीं है।

भोलानाथ : आप निःसन्देह बतावें तो, श्रीमान् !

शूरसेन : सुनना ही चाहते हो, तो सुन लो, पर, भोलानाथ···

भोलानाथ : आप निःसन्देह कहें तो, श्रीमान्।

शूरसेन : तुमने रूपसेन जी के अन्तिम पत्र का वृत्तान्त सुना है ?

भोलानाथ : हाँ, श्रीमान्, वही पत्र न जिसमें वे मोहन को अपनी समस्त सम्पत्ति का उत्तराधिकारी वना गये है और रूपवती के संग मोहन को विवाह करने का आदेश कर गये है।

शूरसेन : हाँ, वही।

भोलानाथ : अच्छा तो फिर?

शूरसेन : इस संसार में लोग प्रायः लड़कों को गोद लिया करते हैं न?

भोलानाथ : निःसन्देह, श्रीमान्।

शूरसेन : मैं लड़के के स्थान पर एक लड़की को गोद लेना चाहता हूँ।

भोलानाथ : वह कौन बड़भागी लड़की है, श्रीमान्?

[**चपरासी का प्रवेश।**]

चपरासी : श्रीमान्! प्रमोदिनी जी संन्यासिनी कौमुदी देवी और चन्द्रसेन जी को संग लेकर आयी हैं। श्रीमान् से मिलना चाहती हैं।

शूरसेन : (**आश्चर्य से**) भोलानाथ! भोलानाथ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ! ऐसा आनंददायक संवाद! क्या यह सच है? क्या यह सम्भव है? आह! मुझे चक्कर आ रहा है; सम्हालो, नहीं तो मैं गिर पड़ूंगा।

[**शूरसेन गिरने लगता है। भोलानाथ सँभालता है।**]

परदा गिरता है।

चौथा दृश्य

स्थान : मोहन के कमरे की दालान

समय : सन्ध्या

[मोहन और बल्देव का प्रवेश]

मोहन : शूरसेन जी का शोक तो हृदय विदीर्ण किये देता है, मित्र ! उन्हें देखकर जब मैं उनके यहाँ रहता था उस समय के उनके जीवन की एक-एक घटना का स्मरण आता है। कहाँ वह गर्व और निश्चिन्तता और कहाँ इस समय की नम्रता और शोक !

बल्देव : पर, भाई, कौमुदी के मिल जाने से उनका शोक कुछ तो कम हुआ। प्रमोदिनी माता के उद्योग से चन्द्रसेन के पागलपन का दूर होना, उनका सुमार्गी बनना तथा कौमुदी का और उनका विवाह हो जाना ये भी बड़ी अच्छी घटनाएँ हुई। इससे कालिन्दी की सखी उमा का भी कुछ दुःख घटा अन्यथा वह तो पागल-सी हो गयी थी।

मोहन : अब तो तुम्हारे विवाह को भी बहुत कम समय शेष है। कहो, विवाह की कभी-कभी उमंग उठती है या नहीं ?

बल्देव : उमंग उठती हो या न उठती हो, मेरा विवाह तो अब होगा ही; पर तुम अपने और बेचारी उस रूपवती के भाग्य का भी तो कुछ निर्णय करो। हम दोनों की समानता के लिए भी तो यह आवश्यक है। हमारी असमानता में तो ईश्वरीय विचित्रता के नियम का भंग होता है, क्योंकि एक अपवाद तो चाहिए।

[**चपरासी का प्रवेश।**]

चपरासी : श्रीमान् रूपसेन जी और प्रमोदिनी जी पधारी हैं।

मोहन : (आश्चर्य से) कौन ? मंत्री जी ! मंत्री जी !

प्रतिहारी : हाँ, श्रीमान्।

[**मोहन, बल्देव और चपरासी का जल्दी से प्रस्थान।**]

परदा उठता है।

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : रूपवती के कमरे की दालान

समय : सन्ध्या

[रूपवती और रेवती खड़ी हैं। रूपवती गा रही है।]

(राग केदारा)

यह प्रेम जगत का सार, रहे यह अजर अमर।
यह प्रेम विश्व आधार, रहे यह अजर अमर।
मद मोह सभी, दुख आतप भी, हर लेवे प्रेम उदार।
रहे यह अजर अमर।
रिपु रहे नहीं, जग बीच कहीं, सुन इसकी मृदु झंकार।
रहे यह अजर अमर।
दिखता भगवत, यह सकल जगत, हो इससे दृष्टि अपार।
रहे यह अजर अमर।
जो प्रेम लीन, वे दुख विहीन, हों भव सागर से पार।
रहे यह अजर अमर।

रेवती : कितना सुन्दर गायन है, बहन ! प्रेम ! प्रेम तो सचमुच प्रेम ही है; पर यह विश्व-प्रेम गा रहा है या मोहन के प्रेम की वंशी बज रही है ?

रूपवती : (लम्बी साँस लेकर) क्या कहूँ, बहन ? अभी भी मेरे प्रेम के केन्द्र वही हैं। उनका प्रेम सूर्य के उस प्रकाश के सदृश है जो पहले कालिन्दी देवी रूपी प्राची के प्रकाशित करने में ही अनुरक्त था, पर शनैः शनैः सभी दिशाओं पर फैल गया, पर मेरा प्रेम अभी भी उस कमलिनी के प्रेम के सदृश है जो केवल कमलिनी नायक से ही प्रफुल्लित हो सकती है।

रेवती : आश्चर्य तो यह है, बहन, कि कालिन्दी देवी की मृत्यु हुए भी इतने दिन हो चुके पर अभी भी वे तुम्हारे सम्बन्ध में चुप है।

रूपवती : इतना ही नहीं, सखि, मुझे उनकी मुद्रा देख शिवजी के उस विराग का स्मरण हो आता है जो उन्हें सती की मृत्यु के पश्चात् हुआ था।

रेवती : यदि वही विराग है, तो विशेष चिन्ता की बात नहीं है। भगवान् तुम्हें पार्वती बनावें।

रूपवती : (लम्बी साँस लेकर) यह सब तो भविष्य के गर्भ में है, बहन।

रेवती : पर यह चुप्पी कब तक रहेगी, तुम्हीं क्यों नहीं बात छेड़ती ?

रूपवती : मैं ? बहन, मैं ? कैसे आश्चर्य की बात करती हो ? उन्हें क्या सारा वृत्त ज्ञात नहीं है ! पिता जी का पत्र वे देख चुके है। स्त्री-हृदय का रहस्य कालिन्दी देवी के कारण वे जानते है। अभी नेह नगर से कौमुदी और

चन्द्रसेन का विवाह देखकर लौटे है। मेरे विवाह की वात! वह भी उनसे, और मैं ही करूँ? सखि, कभी-कभी तुम बड़े पागलपन की वात करती हो!

रेवती : परन्तु अन्त में इसका निर्णय क्यों कर होगा?

रूपवती : अव बहुत शीघ्र निर्णय होगा, सखि, घवराओ नहीं। प्रमोदिनी जी कहती थीं कि शूरसेन जी का एक आवश्यक पत्र लेकर उन्हें उनसे मिलना है। सुना है, उस पत्र में मेरे सम्वन्ध की ही कुछ वाते है। उस समय जो कुछ भी हो, कुछ-न-कुछ निर्णय हो ही जायगा।

रेवती : कुछ-न-कुछ क्या, अच्छा ही निर्णय होगा, वहन।

रूपवती : वह जो कुछ भी हो, उसकी मुझे विशेष चिन्ता नहीं, केवल यह प्रतीक्षा और अनिश्चित् अवस्था ही मुझे दुख दे रही है। मैं भी तो अपना मार्ग निश्चय कर चुकी हूँ। तुम्हें वता भी दिया है।

रेवती : परन्तु, वहन, उस वात का तो स्मरण मात्र करने से हृदय काँप उठता है।

रूपवती : नहीं, नहीं, सखि, यह वात नहीं, वह भी है—एक अद्भुत प्रकार के आनन्द का मार्ग और जहाँ तक वैवाहिक जीवन का सुख है वहाँ तक तुम्हारे और वल्देव के जीवन को देखकर मैं आनन्द प्राप्त करूँगी। इस आनन्द-अवलोकन में भी तो अव केवल सत्रह दिन ही वाकी हैं।

[**चपरासी का प्रवेश।**]

चपरासी : श्रीमान् रूपसेन जी और प्रमोदिनी जी पधारी हैं, मोहन जी के कमरे में गयी है, और आपको बुलाया है।

रूपवती : (आश्चर्य से) कौन ? पिता जी ! पिता जी !

चपरासी : हाँ, श्रीमती जी।

रूपवती : अहा हा ! मै अभी आयी।

[**चपरासी का प्रस्थान।**]

रूपवती : इस जीवन में मुझे उनके दर्शन की आशा न थी। प्रमोदिनी भी उनके साथ आयी हैं, और उनके कमरे में मैं बुलायी गयी हूँ। जान पड़ता है मेरे भाग्य-निर्णय का समय आ गया। मैंने तुमसे अभी कहा था कि प्रतीक्षा और अनिश्चित अवस्था बहुत बुरी होती है, पर अब जब निर्णय का समय आया जान पड़ता है तब हृदय की और भी बुरी अवस्था हो गयी है।

रेवती : सखि, तुम तो काँप रही हो ?

रूपवती : कुछ नही, बहन, कुछ नहीं, यह हृदय बड़ा अद्भुत है। परन्तु, सखि, अब तो मुझे उस न्यायालय में जाना ही पड़ेगा।

रेवती : अवश्य और वह भी तत्काल ! ईश्वर करे वह न्यायालय तुम्हारे लिए प्रेमालय हो जावे।

रूपवती : पर, रेवती, इन पैरों में जैसे किसी ने सीसा भर दिया है, उठ ही नहीं रहे है।

रेवती : नहीं, नहीं, बहन, तुम्हें जाना ही होगा, ऐसे अवसरों पर तो हृदय को बहुत सम्हालने की आवश्यकता होती

है। विवेक और शान्ति, साहस और दृढ़ता की ऐसे ही अवसरों पर परीक्षा होती है, तुम तो विदुषी हो।

[रूपवती का धीरे-धीरे रेवती की ओर देखते हुए प्रस्थान। रेवती का दूसरी ओर प्रस्थान।]

परदा उठता है।

छठवाँ दृश्य

स्थान : रूपसेन के मकान में मोहन का कमरा

समय : सन्ध्या

[मोहन, बल्देव, संन्यासी के वेष में रूपसेन और प्रमोदिनी बैठे हैं। रूपसेन ६० वर्ष का गौर वर्ण, दुबला आदमी है। कभी सुन्दर रहा होगा ऐसा प्रतीत होता है। सिर, दाढ़ी और मूँछें मुड़ी हुई हैं।]

मोहन : मेरे बड़े भाग्य हैं कि आपके पुनः दर्शन हो गये, पिताजी !

[रूपवती का प्रवेश। रूपवती आगे बढ़कर रूपसेन के पैर पकड़ लेती है। रूपसेन खड़े हो रूपवती को हृदय से लगा लेते हैं। रूपवती के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकलती है। रूपसेन के भी आँसू गिरते हैं। दोनों बैठ जाते हैं।]

रूपवती : (गद्गद् हो) पिताजी, पिताजी, आप बड़े निष्ठुर हैं ! मुझे तो इस जीवन में पुनः दर्शन की आशा न थी।

रूपसेन : यह सब (**प्रमोदिनी की ओर संकेत कर**) माताजी की कृपा है। मै तो एक तीर्थ के मार्ग में था और वह पथ नेह नगर और अयोध्या से ही होकर जाता था। मार्ग में माता जी मिल गयीं और मेरे लाख मना करने पर

भी यहाँ ले ही आयीं ।

मोहन : परन्तु, पिताजी, इस मार्ग से निकल जाना और हम लोगों को दर्शन न देना यह तो हम लोगों के संग अन्याय करना था ।

रूपवती : सरासर अन्याय था ।

रूपसेन : (**कुछ मुस्कराकर**) तुम लोगों की दृष्टि में कदाचित् हो, परन्तु मेरा जीवन अब जिस स्रोत में वह रहा है उस स्रोत के लिए इस प्रकार के सम्मिलन पर्वतों की चट्टानें है । मैं अपने सांसारिक कर्तव्यों को पूर्ण कर चुका । पारलौकिक अनुष्ठानों में इन सब सम्मेलनों से बड़ी बाधा पहुँचती है ।

प्रमोदिनी : परन्तु, भाई,· · ·

रूपसेन : (**बात काटकर**) आपके तर्कों का उत्तर मेरे सामर्थ्य के बाहर है । आप मुझसे बहुत आगे हैं । आपकी स्थिति में आने के लिए मुझे अभी बहुत समय चाहिए । (**कुछ ठहरकर मोहन से**) बेटा, तुम्हारे साहसपूर्ण कर्तव्यों को सुन चित्त को बड़ा आनन्द हुआ । कहो, मेरा अन्तिम प्रार्थना-पत्र खोला था ?

मोहन : प्रार्थना-पत्र, पिता जी, प्रार्थना-पत्र ? आज्ञा-पत्र कहिए । आज्ञानुसार ही समय पर खोल लिया गया था ।

प्रमोदिनी : परन्तु उसकी आज्ञाओं का अब तक पालन न हुआ; क्यों ?

[**मोहन कुछ उत्तर नहीं देता और मस्तक नीचा कर लेता है ।**]

प्रमोदिनी : (**एक पत्र निकालकर बल्देव को देते हुए**) बेटा, यह पत्र शूरसेन जी ने तुम्हारे मित्र के नाम भेजा है। इस पत्र को तो पढ़ दे । हम सब लोग भी सुन लेंगे।

बल्देव : (**पत्र लेकर**) जो आज्ञा । (**पत्र खोलकर पढ़ता है ।**)

प्रिय पुत्र मोहन,

आशीष ।

संसार में मेरे सदृश अभागे, कुकर्मी और पातकी बहुत कम लोग होंगे । तुम्हारा अपमान कर मैंने तुम्हारे ही संग अन्याय नहीं किया, परन्तु उस अपमान के फलस्वरूप मैंने अपनी एकमात्र कन्या को भी खो दिया । उस दुःख को उसकी बड़भागी माँ को बहुत काल तक न सहना पड़ा, परन्तु अपने कर्मों का प्रायश्चित करने के लिए इस दुःख में आठों पहर और चौंसठों घड़ी तप्त होने के लिए ईश्वर ने मुझे जीवित रखा है । बेटा, तुम्हारे हृदय की उच्चता और निर्मलता, और तुम्हारे कर्तव्य-पालन की निस्पृहता और दृढ़ता केवल तुम्हारी ही नहीं आज सारे अयोध्या राज्य की सम्पत्ति हो गयी है। अब मुझे ज्ञात हुआ कि संसार में सच्ची सम्पत्ति क्या है ? धन्य है उन रूपसेन जी को, जिन्होंने सच्चे रत्न को पहचाना । मुझ अन्धे ने जो खोया, उसी को उन्होंने पाया । जिसे मैने फेका, उसे उन्होंने उठाया । तुम्हारा जो जीवन संसार को सुख पहुँचाने वाला है, संसार को पवित्र करने वाला है, उससे मुझ सदृश दुःखी, अभागे और पातकी का भी कुछ कल्याण हो सके, तो क्या तुम उससे मुझे वंचित रखोगे ? मैंने

तुम्हारे संग जो व्यवहार किया है उससे मेरा अधिकार तो नहीं कि मैं तुमसे कुछ चाहूँ, मेरा साहस भी न होता था कि मैं तुमसे कुछ याचना करूँ, परन्तु, बेटा, तुम तो इन सब बातों के परे हो। जिसका जीवन पापी, दुखी और सन्तप्त जनों को अपने जीवन की आहुति देकर भी पवित्र, सुखी और शीतल करने के लिए है, उससे यदि मुझ सदृश दुखी और सतप्त पातकी भी कुछ आशा करे तो क्या यह अनुचित होगा ? मोहन, तुम मेरा इस कष्ट के नरक से उद्धार कर सकते हो और मुझे आशा है कि तुम मेरे पातकों की ओर ध्यान न देकर यह करोगे भी। मुझे विश्वसनीय सूत्र से पता लगा है कि रूपसेन जी अपनी सम्पत्ति तुम्हें दे गये है और अपनी कन्या रूपवती के संग तुम्हें विवाह करने का आदेश कर गये हैं। तुम्हारी बाल-सहचरी कालिन्दी अब संसार में नहीं है, पर उसके स्थान में एक दूसरी उच्च हृदय वाली बाला रूपवती है। पहले मेरे गृह में रहते हुए तुमको जिस प्रकार रूपसेन जी ने अपनाया था, उसी प्रकार उसकी हृदय-सर्वस्व रूपवती को मैं यदि अपनी मान लूं तो क्या उपयुक्त न होगा ? बेटा, रूपवती को ही कालिन्दी मानने, कालिन्दी के भाग की अपनी छोटी-मोटी संपत्ति उसे देकर और इस कालिन्दी का हाथ तुम्हारे हाथ में देने से ही मेरा जीवन, दुखी—महादुखी—जीवन, त्राण पा सकता है।

पुत्र, क्या तुम मेरी प्रार्थना स्वीकृत न करोगे ?

कभी जिसे तुम अपना पिता कहते थे,
वही तुम्हारा अभागा पातकी और
दुखी शूरसेन।

[पत्र पूरा करते-करते बल्देव का कण्ठ भर आता है। मोहन, बल्देव और रूपवती के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकलती है। रूपसेन और प्रमोदिनी के नेत्रों में जल भर आता है। कुछ देर तक सन्नाटा छा जाता है।]

प्रमोदिनी : (मोहन से)कहो, बेटा, क्या निश्चय किया ? रूपसेन जी की पवित्र आज्ञा है शूरसेन जी के दुःख-निवारण की योजना है, और इसी के संग मैं, जो तुम्हारी गुरु हूँ, यही उपयुक्त समझती हूँ कि तुम रूपवती को ग्रहण करो।

मोहन : (सिर उठाकर) माता, क्या कहूँ ?

प्रमोदिनी : कहो, बेटा, कहो, जो कहना हो स्पष्ट कहो। ऐसे समयो में ही स्पष्टवादिता की आवश्यकता होती है।

मोहन : हाँ, भगवती, स्पष्ट तो कहना ही होगा। माता, जिस समय रूपसेन जी का आज्ञा-पत्र खोला गया था, उस समय कालिन्दी देवी जीवित थीं, उस समय मेरा कर्तव्य निश्चित था, परन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् समस्या जटिल—अत्यन्त जटिल—हो गयी है।

प्रमोदिनी : कैसे, बेटा !

मोहन : वही कह रहा हूँ, माँ। मैंने कालिन्दी की मृत्यु के पश्चात् सम्पूर्ण प्रश्न पर न जाने कितने काल तक विचार किया, यही प्रश्न मेरी दिवस की चिन्ता और रात्रि का स्वप्न रहा है। मैंने बार-बार हृदय को रूपवती के संग विवाह करने को कहा है।

प्रमोदिनी : और हृदय ने क्या उत्तर दिया ?

सोहन : बहुत समय तक कुछ स्पष्ट नहीं। अन्त में मुझे अनुभव हुआ कि जहाँ तक कि विवाह करने का प्रश्न है मैं एक को भेंट कर चुका हूँ। जिस प्रकार कोई भक्त अपने इष्ट को नैवेद्य भेंट करता है, उसी प्रकार मैं भी कर चुका हूँ। यह पृथक् बात है कि मेरा इष्ट मेरे नैवेद्य को ग्रहण न कर सका। भगवती, भेंट की हुई वस्तु इष्ट के ग्रहण न कर सकने के कारण क्या भेंटकर्त्ता लौटाकर उसे अन्य को दे सकता है? माता, मेरा हृदय विवाह की भावनाओं से रहित है। ऐसे हृदय को मैं किस प्रकार रूपवती को भेंट करूँ? सारे विश्व से प्रेम करने की मुझ में शक्ति है, मैं रूपवती से प्रेम कर सकता हूँ, पर जहाँ तक वैवाहिक भाव का सम्बन्ध है, वहाँ तक मेरे पास कुछ शेप नहीं है। रूपवती के चरणों में भेंट करने को मेरे पास वह भेंट नहीं है। (**रूपसेन से**) पिता जी, मै आप से क्षमा चाहता हूँ, अब आप ही को अधिकार है कि आप रूपवती के विवाह की अन्य योजना बनावें। मैं स्वयं विवाह का कार्य संचालन करूँगा और दहेज के रूप में यह सारी सम्पत्ति उनकी होगी।

[कुछ देर को सन्नाटा छा जाता है। रूपवती खड़ी हो जाती है।]

रुपवती : (**भर्राये हुए स्वर से**) पिता जी, मुझे क्षमा कीजियेगा, इस समय लज्जा का मेरे हृदय मे कोई स्थान नहीं है। (**मोहन से**) धन्य है, देव! आपको धन्य है! आपने

अपनी दिशा का यथार्थ निर्णय किया, परन्तु आपने मेरे सम्बन्ध में जो कुछ कहा वह सर्वथा अनुपयुक्त है। अब मेरा भी निर्णय सुन लीजिए। जिस प्रकार आप अपनी वैवाहिक भावना कालिन्दो देवी को भेंट कर चुके हैं, उसी प्रकार मैने भी, पूज्य पिता जी के पत्र खोलने के दिन, पूज्य पिता जी की आज्ञानुसार, अपना हृदय आपके चरणों में अर्पण कर दिया था। कालिन्दी देवी, दैवी कारण से आपकी भेंट को स्वीकार न कर सकी और आप भी मेरी भेंट स्वीकार करने में अपने को असमर्थ पाते हैं, अतः, देव, आपके न्याय के अनुसार ही मै भी यह भेंट किसी अन्य को अर्पण नही कर सकती। (रूपसेन से) पिता जी, (मोहन की ओर देखकर) भले ही मैंने आपकी आज्ञा से यह भेंट इनके चरणों में की हो, किन्तु यदि अब आप भी इसे लौटाकर किसी दूसरे को अर्पण करने की आज्ञा देंगे, तो यह मेरे लिए सम्भव नहीं है। व्यक्ति प्रेम-से विश्व-प्रेम के मार्ग में मैं भी बढ़ूँगी, यह विशाल संसार मेरी सेवा का क्षेत्र होगा, मै उसी से आनन्द पाऊंगी और जन्म भर कौमार-व्रत धारण करूँगी।

रूपसेन : (खड़े होकर) धन्य, बेटी, धन्य, पुत्री, तुम्हारे कारण मै भी धन्य हुआ। तुम्हारे कौमार-व्रत का मेरा दुःख तुम्हारे विश्व-प्रेम के सेवा-व्रत से दूर हो गया।

[मोहन और रूपवती, रूपसेन के पैरों पर गिर पड़ते हैं, रूपसेन जी उठाकर दोनों को हृदय से लगाते हैं। सब लोग यथास्थान बैठते हैं।]

मोहन : पिताजी, इस सारी घटना में केवल दो ही दुःख मुझे आजन्म पीड़ित करते रहते, एक आपकी और दूसरे शूरसेन जी की आज्ञा उल्लघंन का। आपने मेरे भारी दुःख का निवारण कर दिया, अब दूसरे का शूरसेन जी को समझाकर निवारण कराना माता जी के हाथ में है।

रूपवती : पिताजी, एक प्रार्थना और है।

रूपसेन : कह, बेटी, वह भी कह दे।

रूपवती : पिताजी, आपकी इस अतुल सम्पत्ति की मुझे आवश्यकता नहीं है। (**मोहन की ओर देखकर**) ये तो आज भी उस सम्पत्ति से भोजन और वस्त्र के अतिरिक्त कुछ ग्रहण करते नहीं हैं, मैं इस सारे वैभव का क्या करूँगी? हम लोगों का जीवन तो अब सरयू किनारे एक छोटी सी कुटी में व्यतीत होना चाहिए। ईश्वरीय सौन्दर्य, ईश्वरीय वैभव को निरखते हुए इस विशाल विश्व से प्रेम और इस विशाल सृष्टि की सेवा करके ही हम लोगों को सच्चा सुख मिल सकता है। पिताजी, इस सारी सम्पत्ति को आप लोकोपकार के लिए दान करदें। आपको इसी में आनन्द होना चाहिए कि आप जिस त्याग और संन्यास-सुख का अनुभव इस अवस्था में कर

रहे हैं, उसे आपकी इस कन्या को आपकी ही कन्या को नहीं, किन्तु आज से तो आपकी और शूरसेन जी की दो श्रीमान् पिताओं की कन्या को, युवावस्था से ही अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

रूपसेन : बेटी, तेरे इस अन्तिम प्रस्ताव को मानने से अधिक हर्ष मुझे और किसी बात में नहीं हो सकता था; मैंने आजीवन इस धन से लोकोपकार करके ही आनन्द पाया है और आज यदि यह सारी की सारी सम्पत्ति लोकोपकार के लिए जावे तो इससे अधिक इसका कोई सदुपयोग नही हो सकता; पर इस सम्पत्ति पर मेरा अब कोई अधिकार नही है। मैं संन्यासी हूँ और यह सारी सम्पत्ति मोहन की और तुम्हारी है। तुम लोग जो उचित समझो इसका कर सकते हो।

मोहन : यदि यही बात है, पिताजी, तो रूपवती की आज्ञानुसार आज ही मैने यह सारी सम्पत्ति आपके नाम से लोकोपकार के लिए प्रदान की।

रूपसेन : मेरे नाम से बेटा, मेरे नाम से ? मेरा तो इस सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है; तुम्हारे नाम से।

मोहन : यह कभी नही हो सकता, पिताजी, कभी नहीं; अवश्य आंपके नाम से और इसका किस प्रकार उपयोग होगा, इसका निर्णय माता जी करेंगी।

प्रमोदिनी : रूपसेन जी, आपको धन्य है और धन्य है आपकी इस अद्भुत बेटी को! (**मोहन से**) बेटा, तू ने मुझे भी आज

धन्य किया। मैंने तुझे विवाह करने की सम्मति इसलिए दी थी कि एक तो मैंने उसमें कोई हानि न देखी और दूसरे मैने यह सोचा कि शूरसेन जी तथा रूपसेन जी एवं सबसे अधिक रूपवती के सन्तोष के साथ ही तेरी युवावस्था के लिए भी यही मार्ग कदाचित् उपयुक्त हो। विश्व-प्रेम के पथ पर तू विवाहित होकर भी चल सकता था। बेटा, कभी-कभी युवावस्था में भावुकता और आवेश के कारण मनुष्य कई ऐसे निर्णय कर बैठते है कि उन पर स्थिर नहीं रह सकते और फिर गहरे गढ़ों में गिर पड़ते है; इसीलिए हमारे यहाँ ब्रह्मचर्य के पश्चात् गृहस्थाश्रम और तदुपरान्त वाणप्रस्थ और संन्यस्त की व्याख्या है, परन्तु यहाँ तो शिष्य गुरु से भी आगे बढ़ गया। गुरु की भी इस प्रकार की आज्ञा को तूने न माना। इस प्रकार के शिष्य गुरु को धन्य करते है। गुरु की महत्ता गुरु में नहीं, शिष्य में है।

यवनिका

समाप्त

सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य

निवेदन

यह नाटक मेरी तीसरी जेल-यात्रा के समय नागपुर जेल में दो दिनों में लिखा गया था।

स्वर्गीय बाबू प्रेमचन्दजी को यह नाटक बहुत पसन्द आया और उन्होंने इसे 'हंस' के दो अङ्कों में प्रकाशित किया। इसके प्रकाशित करने पर 'हंस' से जमानत माँगी गयी थी।

अब यह पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहा है।

—गोविन्ददास

पात्र, स्थान और समय

पुरुष—

लाला चतुर्भुजदास : पीछे से राजा चतुर्भुजदास एक साहूकार और जमींदार

त्रिभुवनदास : पीछे से सर त्रिभुवनदास—चतुर्भुजदास का पुत्र—पीछे से प्रांतीय होम मेम्बर

मनोहरदास : त्रिभुवनदास का पुत्र

विश्वेश्वरदयाल : तहसीलदार, पीछे से डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट

स्त्री—

सरस्वती देवी : त्रिभुवनदास की पत्नी

अन्य पात्र पात्री—

चतुर्भुजदास का गुमाश्ता, त्रिभुवनदास के साथी डाक्टर, नौकर इत्यादि

स्थान—एक नगर

समय { पहला अंक १६०५ ई०
दूसरा अंक १६३० ई०

पहला अङ्क

स्थान : लाला चतुर्भुजदास के मकान का बैठकखाना

समय : रात्रि

[कमरा पुराने ढंग का है। कोई सजावट नहीं है। तीन ओर दीवारें दिखती हैं, जो सफेद कलई से पुती हुई हैं; पर बहुत मैली हो गयी हैं। दाहिनी और बायीं दीवार में एक-एक छोटा दरवाजा है, जिसके किवाड़ पुराने ढंग के भद्दे हैं। किवाड़ खुले हुए हैं, जिनसे अन्य छोटे-छोटे गन्दे कमरों के कुछ भाग दिखायी देते हैं। कमरे के सीलिंग में कपड़े की छत बँधी हुई है, जो अत्यन्त मैली है और यहाँ-वहाँ फट गयी है। ज़मीन पर टाट बिछा है। टाट पर सामने की दीवार से लगी हुई एक गद्दी है। उस पर दो मसनद लगे हैं। गद्दी की चादर और तकियों की खोलियाँ धुले हुए सफेद कपड़े की हैं। गद्दी के नीचे दो छोटी-छोटी भद्दी-सी लकड़ी की सन्दूकें रखी हुई हैं। इन पर कुछ बहियाँ रखी हैं। दोनों सन्दूकों के बीच में एक परात पर रखी हुई पीतल की समाई के सब घरों में बत्तियाँ जल रही हैं। कमरा खाली है। चतुर्भुजदास और उसके गुमाश्ते का दाहिनी ओर के दरवाजे से प्रवेश। चतुर्भुजदास साँवले रंग का लम्बा और साधारणतया मोटा मनुष्य है। अवस्था लगभग ५० वर्ष की है। बाल और बड़ी-बड़ी मूँछें आधी सफेद हो गयी हैं। जाँघों तक लम्बा अँगरखा

और घुटनों तक चढ़ी हुई धोती पहने है। गले में दुपट्टा डाले और सिर पर दोपलिया टोपी लगाये है। सभी कपड़े मोटे और मैले हैं। गुमाश्ता गेहुएँ रंग का दुबला और ठिगना मनुष्य है। अवस्था लगभग ४० वर्ष की है। अचकन और पाजामा पहने तथा सिर पर यह भी दुपलिया टोपी लगाये है। इसके वस्त्र चतुर्भुजदास के वस्त्रों से पतले और साफ हैं।]

चतुर्भुजदास : (चारों ओर देखकर) देखते हो, अशर्फीलाल, एक दिन को तहसील में गवाही देने गया और यहाँ दिवाला निकालने की तैयारी हो गयी। आजकल जब-जब मैं कहीं जाता हूँ, इसी तरह का कोई-न-कोई खुराफात होता है। **(जोर से)** भैरों, अरे ओ भैरों !

[बायीं ओर के दरवाजे से धोती पहने नंगे बदन एक काले मनुष्य का प्रवेश।]

चतुर्भुजदास : यहाँ दिवाली क्यों की है ? समाई में इतनी बत्तियाँ !

भैरों : हम का करी, सरकार, बाबूजी हुकुम दिया रहा...

चतुर्भुजदास : बाबूजी हुकुम दिया रहा ! बत्ती बुझा जल्दी। बस, एक बत्ती बहुत है।

[भैरों समाई की एक बत्ती छोड़कर बाकी सब उसी तेल में ठंडी कर देता है।]

चतुर्भुजदास : (गद्दी की ओर आगे बढ़ उसकी धुली हुई चादर और तकियों की खोलियों को देखकर) और ये चादर और खोलियाँ क्यों बदली हैं ?

भैरों : हम करी, हजूर यह बाबूजी……

चतुर्भुजदास : उठा, उठा, इस चादर को उठा और उतार खोली । पुरानी चादर और खोली ला ।

भैरों : पुरानी चादर और खोली तो धोबी के डाल दिहिन ।

चतुर्भुजदास : धोबी का मैने क्या कर्ज खाया है । (कुछ ठहरकर) अच्छा, उन्हे उतारकर भीतर रख। जब तक पुरानी चादर-खोलियाँ धोबी के यहाँ से आयँगी, तब तक गद्दे-तकिये बिना चादर-खोली के रह सकते है ।

[भैरों तकियों की खोली उतारने लगता है ।]

चतुर्भुजदास : कहो, अशर्फीलाल, अब क्या करना ? आजकल के लड़कों का तो सिर ही ठिकाने नही है । कुछ दिन से त्रिभुवन का सिर भी बिगड़ता जा रहा है ।

अशर्फीलाल : क्या कीजिएगा, हुजूर, जमाना ही ऐसा है ।

चतुर्भुजदास : एक दिन को पीठ फेरता हूँ तब तो यह दशा होती है, जिस दिन आँखें बन्द होंगी उस दिन तो घर चौपट ही हो जायगा ।

अशर्फीलाल : पर आप तो जो कुछ करते है, उन्हीं के लिए करते हैं । अगर उनको सब चौपट कर देना ही मंजूर है, तो आप उसे कहाँ तक बचायेंगे ?

चतुर्भुजदास : **(लम्बी साँस लेकर)** हाँ, मै तो अब नदी किनारे बैठा हूँ । **(कुछ ठहरकर लम्बी साँस ले)** उसकी माँ सन् १८९५ में मरी, क्यों ?

अशर्फीलाल : हाँ, सरकार, दस साल हो गये ; कल की-सी

वात जान पड़ती है।

चतुर्भुजदास : मैं भी आज मरा और कल दूसरा दिन। रात-दिन जो पिसा जाता हूँ, वह उसी के लिए तो। पर, अशर्फीलाल, मेरे मरने के वाद भी वह सुखी रहे, यह तो मै चाहता हूँ न ?

अशर्फीलाल : यह तो वाजिव चाह है, हुजूर !

चतुर्भुजदास : मरने के वक्त उसके लिए काफी छोड़ जाऊँ, इसीलिए तो चोटी का पसीना एँड़ी और एँड़ी का चोटी तक ला रहा हूँ।

अशर्फीलाल : वरावर।

चतुर्भुजदास : और इतने पर जव देखता हूँ कि उसके ये लच्छन हो रहे है, तव दुःख भला कैसे न हो।

[भैरों गद्दी-तकियों की खोली-चादर उतारकर ले जाता है। उनके उतारते ही अनेक जगह थेगल लगी, तथा कई जगह फटी हुई लाल रंग की मैली-कुचैली गद्दी दीखती है, और इसी प्रकार के तकिये। चतुर्भुजदास गद्दी पर वैठता है, और अशर्फीलाल उसके नीचे।]

चतुर्भुजदास : तुमने एक और खौफनाक वात सुनी है ?

अशर्फीलाल : क्या, सरकार ?

चतुर्भुजदास : अभी लार्ड कर्जन ने जो वंगाल के दो टुकड़े किये हैं, और वंगाल में जो वॉयकाट का काम चल रहा है, उसके वावत इसके पास भी चिट्ठी-पत्री आती हैं।

अशर्फीलाल : (आश्चर्य से) हैं !

चतुर्भुजदास : कुछ पूछो मत। यह तो सब से ज्यादा डर की बात है। और सब बातें एक तरफ और यह एक तरफ।

अशर्फीलाल : पर, हुजूर को यह कैसे मालूम हुआ ?

चतुर्भुजदास : बहुत पोशीदा बात है।

अशर्फीलाल : क्या सरकार समझते हैं कि मुझसे बात बाहर जा सकती है ?

चतुर्भुजदास : नहीं, यह बात नहीं है, अगर मुझे ऐसा शक होता, तो तुमसे कहता ही क्यों ? पर इसलिए जता दिया कि भूल से भी बात मुँह से न निकल जाय। तुम जानते हो, तहसीलदार साहब आज तहसील कचहरी में मुझे अलग बात करने को ले गये थे।

अशर्फीलाल : हाँ, वह तो मुझे मालूम है।

चतुर्भुजदास : उन्होंने मुझसे कहा कि डाकखाने से कुछ चिट्ठियाँ पकड़ी गयी हैं।

अशर्फीलाल : ओ हो !

चतुर्भुजदास : **(लम्बी साँस लेकर)** जब से मैंने यह सुना है अशर्फीलाल, मेरा चित्त ठिकाने नहीं है।

अशर्फीलाल : हुआ ही चाहिए, सरकार।

[दोनों कुछ देर तक चुप रहते हैं।]

अशर्फीलाल : यह सब झगड़ा कॉलेज से शुरू हुआ होगा।

चतुर्भुजदास : **(जल्दी से)** बिल्कुल ठीक कहते हो। ये जितने लड़के एफ० ए०, बी० ए० पास करते हैं, इनको यही

दशा होती है। ऐसा जानता तो उसे क्यों पढ़ाता और बोर्डिंग में रखता।

अशर्फीलाल : पर उसके बिना भी तो आजकल काम नहीं चलता, हुजूर। खैर, ईश्वर को धन्यवाद दीजिए कि बी० ए० पास कर वे बोर्डिंग से घर आ गये। अब वहाँ की सोहबत से पिण्ड छूटा।

चतुर्भुजदास : पर इससे क्या, अशर्फीलाल, अभी भी उसी तरह के लोग तो उसके पास आते हैं। वह भी उसी तरह के लोगों के पास जाता है। **(लम्बी साँस लेकर)** क्या कहूँ, भाई, एक ही लड़का, उसका यह हाल होता जाता है। रुपये को कौड़ी समझने लगा है और जो सरकार हमारे माँ-बाप के माफिक है, उसके खिलाफ हो रहा है। तुम जानते हो, मैं उसे कितना प्यार करता हूँ। जब सोचता हूँ कि अगर पैसा उड़ाने की उसे लत पड़ गयी, तो वह भिखारी हो जायगा और सरकार के खिलाफ हुआ, तो बंगालियों के माफिक जेल जायगा, तो उसी की तकलीफ सोचकर कलेजा मुँह को आ जाता है, आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। फिर यह भी चिन्ता खाये जाती है कि इसकी यह हालत रही, तो बहू की क्या दशा होगी।

अशर्फीलाल : पर अभी तो बहुत बिगाड़ नहीं हुआ है, हुजूर।

चतुर्भुजदास : हाँ, अभी तो मामला सुधर सकता है। अब तक तो उसने मेरी किसी बात का बेरुखाई से जवाब

तक नहीं दिया है, हालाँकि उसके चाल-ढाल में जरूर फर्क पड़ा है । उसे समझाऊँगा । (कुछ ठहरकर) अशर्फीलाल, एक वक्त जहाँ लड़का उड़ाऊ हुआ कि पहले पैसे उड़ते है, फिर रुपये और फिर हीरे-मोती ; आखिर घर-का-घर उड़ जाता है । इसी तरह जहाँ राज-द्रोह घर में आया कि पहले जेल होती है, फिर काला पानी और फिर फांसी । ये रास्ते ही अच्छे नहीं हैं । (कुछ ठहरकर जोर से) भैरो ! ओ भैरो !

अशर्फीलाल : (उठकर) मै अभी बुलाता हूँ ।

[अशर्फीलाल के बाहर जाने के पूर्व ही भैरों का प्रवेश ।]

चतुर्भुजदास : बाबूजी कहाँ है ?

भैरों : बाइसिकिल पर बाहिर गइन है, सरकार, कहा रहा सात बजे भर में आ जइ है ।

चतुर्भुजदास : (कुछ सोचते हुए) सात तो बज ही रहे होंगे । (कुछ ठहरकर) और बहू को कुछ हरारत थी । उसकी तबीयत कैसी है ?

भैरों : अब तो ठीक है, हजूर । उन सँदेगा पठवा है कि भोजन तैयार है ।

चतुर्भुजदास : (कुछ ठहरकर) आज मै भोजन न करूँगा ।

अशर्फीलाल : यह क्या बात है, सरकार । रंज का यह मतलब नहीं है कि भोजन ही न किया जाय । आज दौरे के सबब दोपहर को भी ठीक भोजन नहीं हुआ है । अब हुजूर की ऐसी उम्र नहीं है कि इस तरह काम चल सके ।

चतुर्भुजदास : पर आज तो भूख ही नहीं है, अशर्फीलाल।

अशर्फीलाल : तब शायद बहूजी भी न खायँगी। दो-चार कौर ही खा लीजिए; पर खाइए जरूर। लंघन से बहुत कमजोरी हो जाती है और फिर बहूजी का भी तो खयाल रखना है, खासकर इस वक्त।

[चतुर्भुजदास लम्बी साँस लेकर उठता है। बायीं ओर के दरवाजे से प्रस्थान। अशर्फीलाल और भैरों भी जाते हैं। कुछ देर तक कमरा खाली रहता है। फिर दाहिनी ओर के दरवाजे से त्रिभुवनदास और उसके दो साथियों का प्रवेश। त्रिभुवन-दास लगभग बीस वर्ष का साँवले रंग, पर गठे हुए शरीर का कुछ ऊँचा, साधारणतया सुन्दर मनुष्य है। बाल लम्बे हैं और छोटी-छोटी मूँछें। कोट, कमीज और धोती पहने तथा सिर पर काली टोपी लगाये है। उसके साथी भी युवक हैं। उनकी वेष-भूषा भी त्रिभुवनदास के समान ही है। दरवाजा छोटा होने के कारण उसमें से आते समय चौखट त्रिभुवनदास के सिर में लगती है।]

त्रिभुवनदास : (सिर पकड़कर) आह ! कितना छोटा दरवाजा है, सिर फूट गया; पर ऊँचा थोड़े ही किया जा सकता है, उसमें तो रुपये लगेंगे।

एक साथी : क्यों, अधिक लग गया क्या ?

त्रिभुवनदास : उँह, यह तो नित्यप्रति का धन्धा है। **(आगे बढ़कर, गद्दी-तकिये और समाई आदि को देखकर अपने साथियों में)** जान पड़ता है लाला साहब आ गये।

पहला : यह कैसे ?

त्रिभुवनदास : देखते नहीं हो, समाई में एक ही वत्ती है और गद्दी-तकियों पर चादर-खोली नहीं है।

[उसके दोनों साथी हँस पड़ते हैं।]

त्रिभुवनदास : (जोर से) भैरों ! ओ भैरों !

[भैरों का प्रवेश।]

त्रिभुवनदास : तुझ से कहा था न कि गद्दी-तकियों पर नयी चादर-खोली चढ़ा देना और समाई में पूरी वत्तियाँ लगाना।

भैरों : हम तो चढ़ा दिहन रहै और लगा दिहन रहै साहिव, पर का करी। वड़े सरकार उतरवा दिहिन और बुझवा दिहिन।

त्रिभुवनदास : फिर मैं कहाँ वैठूं ? तेरे सिर पर ?

भैरों : तौ हम का करी सरकार……

त्रिभुवनदास : ला वे, चादर-खोली ला और फिर चढ़ा।

भैरों : पर, हजूर……

त्रिभुवनदास : (जोर से) लाता है या जूते लगाये जायँ।

[भैरों जल्दी से चला जाता है।]

त्रिभुवनदास : (अपने साथियों से) अव कहो, मित्रो, इस घर में मेरा निर्वाह किस प्रकार हो ? मैं कोई दुधमुँहा वच्चा नहीं हूँ। वीस वर्ष का हुआ। नयी चादर-खोली भी नहीं चढ़वा सकता।

'पहला : सचमुच यह तो वड़ा अन्याय है।

दूसरा : अवश्य ।

त्रिभुवनदास : यह तो एक उदाहरण-मात्र है । हर बात में यही आपत्ति है । (**कमरे को चारों ओर से देखकर**) देखते हो यह कमरा । कोई कह सकता है कि यह कमरा उस मनुष्य का बैठकखाना है, जिसके पास पच्चीस लाख रुपये तो नकद है और लाखों की जायदाद अलग ।

दूसरा : पुताई तो जान पड़ता है पाँच वर्षों से नहीं हुई ।

पहला : ये गद्दी-तकिये तथा कपड़े की छत तो बहुत कर आपके दादा के समय की होंगी ।

दूसरा : और यह समाई तो कदाचित् आपके परदादा के समय की ।

[भैरों आकर चादर बिछाता है ।]

त्रिभुवनदास : कुछ पूछो मत । इतना गन्दा मकान और सामान है, जिसका ठिकाना नहीं । फिर सामान तो है ही कहाँ ? न कुर्सियाँ है, न टेबिलें, न शीशे हैं, न लैम्प, न टब है, न कमोड । गोबर से मकान की जमीन लीपी जाती है और उसी गन्दी जमीन पर दुर्गन्ध में भोजन बनता है । सवारी तक नहीं, पैदल घूमो या टूटी-सी साइकिल पर । कोई भला आदमी इस प्रकार की रहन-सहन में रह सकता है ? इससे तो बोर्डिङ्ग-हाउस लाख दरजे अच्छा था ।

पहला : इसमें क्या सन्देह है ।

दूसरा : वहाँ के पाखाने भी इन कमरों से अच्छे है ।

त्रिभुवनदास : भई, जब बोर्डिङ्ग-हाउस में था तभी अच्छा था। यहाँ तो बीमार पड़ जाऊँगा। भूल हुई, नहीं तो दो-चार वर्ष जान-बूझकर फेल होता, तो बोर्डिङ्ग में रहने को और मिलता।

पहला : फिर जब इन जरा-जरा-सी बातों में यह दशा है, तब आपके जो बड़े-बड़े सिद्धान्त है, उनमें आपकी और उनकी पटरी कैसे बैठेगी ?

दूसरा : बिल्कुल नहीं बैठ सकती।

त्रिभुवनदास : तुम जानते हो कि मैं सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य का पुजारी हूँ। चाहे लाला साहब से बने या न बने, चाहे घर में रहूँ या घर छोड़ दूँ, अपना सिद्धान्त नहीं छोड़ सकता। अब तक तो पढ़ता था, सत्रह वर्ष की अवस्था से बोर्डिङ्ग-हाउस में रहने लगा था, बात ही दूसरी थी। प्रत्यक्ष में उनसे इस प्रकार की बातें तक करने का अवसर तक नहीं आया, वरन् ऐसे अवसरों को मैं स्वयं ही टालता रहा ; पर अब इस प्रकार कार्य थोड़े ही चल सकता है। **(भैरों से, जो चादर बिछाकर खोलियाँ चढ़ा रहा है)** जल्दी चढ़ा।

पहला : बहूजी को भी इस घर में बड़ा कष्ट होगा।

त्रिभुवनदास : हाँ, उन्हें घर का सब काम हाथ से करना पड़ता है। रोटी बनानी पड़ती है, मठा बिलोना पड़ता है। महरी केवल बर्तन माँजती है और झाड़ू लगाती है। बस एक यह गधा भैरों नौकर है। महरी तो थोड़ी

देर को आती है। फिर इस समय तो उन्हें और भी कष्ट है।

पहला : यह क्यों, उनका स्वास्थ्य तो अच्छा है न ?

त्रिभुवनदास : हाँ, हाँ, स्वास्थ्य तो साधारणतया अच्छा है; पर (**मुस्कराकर**) बच्चा होनेवाला है।

दूसरा : यह तो आपने बड़े हर्ष की बात सुनायी।

पहला : इसमें क्या सन्देह है ? मिठाई खिलाइए, मिठाई।

दूसरा : ऐसी दशा में भी लाला साहब ने भोजन बनाने के लिए मिसरानी और पूरे समय के लिए महरी का प्रबन्ध नहीं किया ?

त्रिभुवनदास : अभी तीन ही महीने हुए हैं। उनका सिद्धान्त तो यह है न, कि स्त्रियों को घर का कार्य करना ही चाहिए। इसी से उनका व्यायाम होता है, पर खैर, इस समय के लिए तो दो-चार दिनों में मिसरानी और महरी का प्रबन्ध हो जायगा। (**भैरों से**) क्यों बे, इतनी देर क्यों लगा रहा है ?

भैरों : हो गइन, हजूर। (**तकिये गद्दी पर रख देता है।**)

त्रिभुवनदास : चल, जल्दी बत्ती लगा।

पहला : देखिए, आप एक काम कीजिएगा।

त्रिभुवनदास : क्या ?

पहला : इस मिसरानी और महरी के नौकर रह जाने पर फिर उन्हें न निकलने दीजिएगा।

त्रिभुवनदास : यह तो होगा ही।

[बत्ती लगाकर भैरों का प्रस्थान। तीनों गद्दी पर बैठते हैं। कुछ देर तीनों चुप रहते हैं।]

त्रिभुवनदास : हाँ तो हम लोगों की उस विषय की चर्चा अधूरी ही रह गयी। हम लोग कहाँ तक आये थे?

दूसरा : **(कुछ सोचते हुए)** आपने कदाचित् यह कहा था कि बंग-भंग का प्रश्न प्रान्तीय न होकर अखिल भारतीय है।

पहला : हाँ, हाँ, यहीं तक चर्चा हुई थी।

त्रिभुवनदास : अवश्य, यह प्रान्तीय प्रश्न न होकर अखिल भारतीय है।

पहला : कैसे?

त्रिभुवनदास : बात यह है कि स्वतन्त्रता के लिए हमें सबसे अधिक आवश्यकता एकता की है, इसीलिए हमारे बीच में फूट डालकर राज्य करना, यह अंग्रेजी राज्य की नीति है। बंग-विच्छेद में बंगाली जाति को, जो इस समय अपने अधिकारों को सबसे अधिक पहचानने लगी है, दो टुकड़ों में बाँट देने का सरकार का उद्देश्य छिपा हुआ है। आज जो बंगाल में हुआ, वही कल अन्य प्रान्तों में होगा। इसीलिए बंग-भंग के विरोध में जो आन्दोलन हो रहा है, उसमें अरविन्द घोष, सुरेन्द्रनाथ बैनरजी और विपिनचन्द्रपाल आदि को तिलक सहयोग दे रहे हैं।

पहला : **(अपने साथी से)** आप ठीक कह रहे हैं। बंग-भंग

अखिल भारतीय प्रश्न ही है।

दूसरा : हाँ, जान तो ऐसा ही पड़ता है।

त्रिभुवनदास : सन् १८५७ का स्वातन्त्र्य-समर, जिसे अंग्रेज 'सिपाही-विद्रोह' कहकर सदा उसका महत्त्व घटाने का प्रयत्न करते हैं, इसीलिए सफल नहीं हुआ कि हम संयुक्तप्रान्त-निवासियों को अन्य प्रान्तों के लोगों ने सहायता नहीं दी; वरन् उल्टी हमारे विरुद्ध अंग्रेजों की सहायता की। बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन में यदि सारे भारतवर्ष ने योग दिया, तो यह आन्दोलन सफल हो जायगा। इतना ही नहीं, किन्तु हममें एकता और संगठन हो जायगा और उसका हम स्वतन्त्र होने के व्यापक आन्दोलन में उपयोग कर सकेंगे। फिर सन् १८५७ का युद्ध था और यह आन्दोलन है। इसमें और उसमें तो एक बड़ा भारी अन्तर है।

पहला : किस प्रकार का ?

त्रिभुवनदास : युद्ध में देश का सर्वसाधारण जनसमुदाय, जब तक उसे सैनिक-शिक्षा न मिली हो, नहीं लड़ सकता। युद्ध में सेनाएँ लड़ती हैं, तोपों, बन्दूकों आदि जिन बड़े-बड़े शस्त्रों का उपयोग युद्ध में होता है, वे न सबके पास रहते ही है और न सैनिक-शिक्षण बिना सब उनका उपयोग ही कर सकते हैं; परन्तु इसके विपरीत आन्दोलन की सफलता, आन्दोलन के शस्त्रों का जन-समुदाय-द्वारा उपयोग होने पर निर्भर रहती है।

वर्तमान वंग-विच्छेद सम्बन्धी आन्दोलन के बॉयकाट-शस्त्र का जब तक समस्त देश की जनता उपयोग न करेगी, तब तक यदि बंगाल की जनता ने इसका उपयोग भी किया तो भी उतनी सफलता नहीं मिल सकती।

दूसरा : आपको आशा है कि यदि हमने ब्रिटिश माल का बॉयकाट कर दिया, तो बंगाल के दोनों टुकड़े फिर एक कर दिये जायँगे ?

त्रिभुवनदास : बॉयकाट का अर्थ केवल ब्रिटिश-माल का बॉयकाट नहीं है।

पहला : तब ?

त्रिभुवनदास : इसका पूरा अर्थ समझने के लिए इसके इतिहास को जानना आवश्यक है। तुम लोग जानते हो, 'बॉयकाट' शब्द कैसे निकला ?

पहला : नहीं।

दूसरा : मै भी नहीं जानता।

त्रिभुवनदास : इस शब्द की उत्पत्ति आयलैंण्ड में हुई है। सन् १८७९ में आयर्लैण्ड में जमींदारों के विरुद्ध किसानों का बड़ा भारी आन्दोलन चल रहा था।

पहला : अच्छा !

त्रिभुवनदास : उस समय के आयलैंण्ड के नेता पार्नेल ने एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए उपस्थित जनता से पूछा कि यदि किसानों की छीनी हुई जमीन को किसी ने ले लिया, तो आप लोग क्या करेंगे ? उपस्थित लोगों

में एक ने उत्तर दिया, हम उसे गोली से उड़ा देंगे।

पहला : बड़ा वीरोचित उत्तर था।

त्रिभुवनदास : हाँ, किन्तु पार्नेल ने उससे भी अधिक प्रभावशाली युक्ति बतायी।

दूसरा : वह क्या ?

त्रिभुवनदास : यही बहिष्कार। पार्नेल ने जो शब्द उस समय कहे थे, वे जब मैंने पढ़े तब मुझे इतने अच्छे जान पड़े कि मैंने उन्हें कण्ठस्थ कर लिया है।

पहला : उसने क्या कहा था ?

त्रिभुवनदास : उसने कहा था कि 'छीनी हुई भूमि को यदि कोई लेवे, तो जहाँ कहीं भी वह व्यक्ति मिले—सड़क पर, दूकान में, यात्रा करते हुए, बाजार में या गिरजाघर में, उसे उँगली दिखायी जाय, उसका बहिष्कार किया जाय, कोढ़ी के समान उसका तिरस्कार किया जाय। सदैव उसे इस बात का स्मरण दिलाया जाय कि उसने महान् दुष्कर्म किया है। यह गोली की अपेक्षा कहीं अधिक परिणामकारक शस्त्र होगा।'

दूसरा : और आयर्लैण्ड में इसका उपयोग हुआ ?

त्रिभुवनदास : हाँ, इस भाषण के एक मास के भीतर ही।

पहला : किस प्रकार ?

त्रिभुवनदास : आयर्लैण्ड के एक जमींदार के नौकर केप्टन बॉयकाट के ऊपर यह शस्त्र सर्वप्रथम चलाया गया। उसके नौकरों को उसकी नौकरी छोड़नी पड़ी। उसकी

खेती के लिए रखवाले, उसकी गाड़ियों के लिए हाँकने-वाले, मिलना असम्भव कर दिया गया। लुहार उसके घोड़ों की नालें न बाँध सकता था और न कोई दूकानदार उसे कोई सामान बेच सकता था। यहाँ तक हुआ कि चिट्ठीरसा उसे चिट्ठी तक न देने को बाध्य कर दिया गया।

पहला : ओ हो !

त्रिभुवनदास : क्या पूछते हो, आयर्लैंण्ड का हर बात में संगठन ही ऐसा होता था। तभी तो इतने छोटे से और निकट-तम पड़ोसी देश होने पर भी इंगलैण्ड उसे अपने अधीन रखने में इतनी कठिनाइयाँ देख रहा है। वहाँ के इतिहास का तो एक-एक शब्द भारतीयों को मनन करना चाहिए।

दूसरा : केप्टन वॉयकाट के वहिष्कार का फल क्या निकला ?

त्रिभुवनदास : अन्त में उसकी खेती की रक्षा करने के लिए सरकारी पुलिस सहित अलस्टर से वहाँ के प्रसिद्ध 'आरेजमैन' नामक पचास स्वयं-सेवक आये।

दूसरा : तो अन्त में उसकी खेती की रक्षा हो गयी ?

त्रिभुवनदास : हाँ, किन्तु उस रक्षा का परिणाम कुछ न निकला।

पहला : कैसे ?

त्रिभुवनदास : साढ़े तीन सौ पाउण्ड की खेती की रक्षा में पैंतीस सौ पाउण्ड खर्च पड़ गया।

पहला : (हँसकर) ओ हो !

त्रिभुवनदास : इतना ही नहीं हुआ। अन्त में केप्टन बॉयकाट का आयर्लैण्ड में रहना असम्भव हो गया और वह इंगलैण्ड भाग गया।

दूसरा : तो केप्टन बॉयकाट के नाम पर बहिष्कार का नाम बॉयकाट पड़ा है ?

त्रिभुवनदास : हाँ, केप्टन बॉयकाट के नाम पर। बात यह हुई कि इस अत्यन्त प्रभावपूर्ण बहिष्कार-प्रणाली को क्या नाम दिया जाय, इस पर एक अमेरिकन पत्र-प्रतिनिधि विचार कर रहा था। तब एक पादरी ने उसे सुझाया कि जिस व्यक्ति के ऊपर सर्वप्रथम इस शस्त्र का उपयोग हुआ है, उसी का नाम इस प्रणाली को दे देना चाहिए। तब से अंग्रेज़ी भाषा में इस शब्द का प्रचार हुआ। कहा जाता है कि इस प्रणाली का आयर्लैण्ड में जितना प्रभाव पड़ा, उतना किसी का नहीं। इसी अंग्रेजी शब्द का हमने भी उपयोग आरम्भ किया है।

दूसरा : तो ब्रिटिश माल का बॉयकाट मात्र इसके अन्तर्गत नहीं आता ; परन्तु इससे कहीं अधिक इसके भीतर आ जाता है।

त्रिभुवनदास : अवश्य। ब्रिटिश माल के बॉयकाट से तो इसका आरम्भ हुआ है। केप्टन बॉयकाट पर जिस प्रकार इस शस्त्र का उपयोग हुआ था, उस प्रकार प्रत्येक अंग्रेज़ पर और अंग्रेज ही नहीं उन भारतीयों पर भी

जो अंग्रेजों के साथ किसी प्रकार का भी सहयोग करते है, यदि हम इसका उपयोग कर सके, तो अंग्रेजों का इस देश में रहना असंभव हो जायगा। बंगाल का एकीकरण तो बहुत छोटी बात है। जिस स्वतन्त्रता को सन् १८५७ के युद्ध मे हम प्राप्त करना चाहते थे, वह हमें उसकी अपेक्षा कही कम त्याग से मिल जायगी। हाँ, इसके लिए हमें ब्रिटिश माल के बहिष्कार के आन्दोलन के साथ ही एक बात और करनी पड़ेगी।

दूसरा : वह क्या ?

त्रिभुवनदास : गुप्त रूप से प्रत्येक अंग्रेज़ उनके साथ सहयोग करनेवाले प्रत्येक भारतीय के प्रति, इस देश के बच्चे-बच्चे के हृदय में घृणा की उत्पत्ति करना। (**कुछ ठहरकर**) तुम लोग जानते हो कि इस विषय में जब मैने बोर्डिङ्ग-हाउस नहीं छोड़ा था, उसी समय से अरविन्द घोष से मेरा पत्र-व्यवहार चल रहा है।

पहला : हाँ, मुझे मालूम है।

दूसरा : मै भी जानता हूँ।

त्रिभुवनदास : उनका अन्तिम पत्र मुझे कल ही मिला है। उन्होने अब मुझे संयुक्त प्रान्त में बॉयकाट-आन्दोलन चलाने के लिए एक कमिटी नियुक्त करने को लिखा है।

पहला : अच्छा !

त्रिभुवनदास : यदि तुम दोनों इस कार्य में मुझे सहायता दो, तो मेरी इच्छा इस काम को जोरों से करने की है ;

पर इसके लिए सब कुछ त्याग करने को तैयार रहना पड़ेगा। मैं तो अकेला भी इसे करूँगा ; पर तुम जानते हो, विना सहायकों के इस प्रकार के कार्य नहीं चल सकते।

पहला : मै हर प्रकार से आपकी सहायता करूँगा। मातृभूमि को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न सबका सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। मै इसके लिए सर्वस्व त्याग करने को तैयार हूँ।

दूसरा : और मैं भी पूर्ण बलिदान के लिए......

[चतुर्भुजदास का प्रवेश। उसे देखकर तीनों खड़े हो जाते हैं।]

चतुर्भुजदास : कैसा त्याग और कैसा बलिदान ! यह सब कैसा लड़कपन है ?

त्रिभुवनदास : यों ही हम लोग इधर-उधर की बातें कर रहे थे।

चतुर्भुजदास : नहीं, त्रिभुवन, मैं देखता हूँ कि ये बातें इधर-उधर की नही है, इनमें.........(कुछ रुककर दोनों युवकों से) आप लोग यदि इस वक्त मेहरबानी करेंगे, तो अच्छा होगा। मैं त्रिभुवन से अकेले में कुछ बातें करना चाहता हूँ।

पहला : (अपने दूसरे साथी से) चलो, भई, हम लोग चलें।

दूसरा : हाँ-हाँ, चलो।

[दोनों जाने लगते हैं।]

त्रिभुवनदास : (अपने दोनों साथियों से) कल सन्ध्या को मिलना होगा न ?

पहला : अवश्य ।

दूसरा : हाँ-हाँ ।

[दोनों चतुर्भुजदास और त्रिभुवनदास को प्रणाम कर जाते हैं ।]

चतुर्भुजदास : (गद्दी पर बैठते हुए) त्रिभुवन

त्रिभुवनदास : (गद्दी पर बैठते हुए) कहिए ।

चतुर्भुजदास : तुम अपने इन दोनों दोस्तों से क्या बातें कर रहे थे ?

त्रिभुवनदास : (कुछ ठहरकर, रुखाई से) मैं समझता हूँ कि आपको उन्हें पूछने की आवश्यकता नहीं है ।

चतुर्भुजदास : (कुछ आश्चर्य से) क्या कहा ?

त्रिभुवनदास : (और भी रुखाई से) यही कि आपको उन बातों को पूछने की कोई आवश्यकता नहीं है ; वरन् अधिकार भी नहीं है ।

चतुर्भुजदास : (आँखों में आँसू भरकर) त्रिभुवन, तुम नहीं जानते कि तुम क्या कह रहे हो ?

त्रिभुवनदास : मैं भली भाँति जानता हूँ, पिताजी ।

चतुर्भुजदास : तो तुम्हारे दोस्त तुम्हें बाप से ज्यादा हो गये ?

त्रिभुवनदास : यदि दोस्तों के बीच की कोई बात मैं आपसे न कहूँ, तो इसका यह निष्कर्ष नहीं निकल सकता कि वे मेरे लिए आपसे अधिक हैं । (कुछ रुककर) मेरे मित्रों में और मुझ में क्या बातचीत होती है, यह जानने की आपकी इच्छा देखकर ही मुझे आश्चर्य होता

है। आप कदाचित् नहीं जानते कि आपका इस प्रकार का व्यवहार सभ्यता के सर्वथा प्रतिकूल है।

चतुर्भुजदास : आजकल की सभ्यता तो मैं नहीं जानता ; पर इतना जरूर जानता हूँ कि तुम अभी बच्चे हो और अगर तुम ठीक रास्ते पर न चलो, तो मुझे तुम्हें सुधारने की कोशिश करने का पूरा-पूरा हक है।

त्रिभुवनदास : प्राचीन सभ्यता के अनुसार भी पुत्र को सोलह वर्ष की अवस्था में स्वतन्त्रता मिल जाती है और पिता उसका पथ-प्रदर्शक नहीं; किन्तु मित्र-मात्र रह जाता है।

चतुर्भुजदास : मै तुमसे जवान नहीं लड़ाना चाहता। आज तक ऐसा मौका भी नहीं आया, पर......

त्रिभुवनदास : (**बीच ही में बात काटकर**) इसीलिए मौका नही आया, पिताजी, कि मैं आपकी हर एक वात सहन करता गया। जिस प्रकार के स्थान में कोई भला आदमी पैर भी नही रख सकता, उस प्रकार के स्थान में रहता रहा ; जितना रुपया आप खर्च के लिए देते रहे, उतने में बोर्डिङ्ग-हाउस में पड़ा-पड़ा अपना खर्च चलाता रहा; जो कुछ आप कहते रहे, उसे चुपचाप सुनता रहा; जो .....

चतुर्भुजदास : त्रिभुवन, त्रिभुवन, तुम क्या कह रहे हो, क्या कह रहे हो ? (**लम्बी साँस लेकर**) तुम्हारी माँ को गये आज दस साल होते हैं, मेरी लकड़ियाँ भी मसान

में पहुँच चुकी हैं, मुझे कुछ गठरी बाँधकर साथ नहीं ले जाना है। दिन-रात जो पिसा जाता हूँ, वह तुम्हारे लिए ही तो। जो कुछ करता हूँ, वह भी तुम्हारे भले के लिए ही तो। मुझे एक आँख से दुनिया दिखती है। तुम्हारे सिवा मेरे और कौन है ? तुमने तो आज तक मेरे सामने इस तरह जवाब न दिये थे। तुम्हें क्या हो गया है, त्रिभुवन ?

[**चतुर्भुजदास की आँखों में आँसू आ जाते हैं।**]

त्रिभुवनदास : नहीं, अब इस प्रकार काम नहीं चल सकता !

चतुर्भुजदास : तो किस तरह काम चलेगा ? मै तुम्हें बर्बाद होने के रास्ते पर चलने की आजादी दे दूँ, तब काम चलेगा ? रुपया-पैसा सब उड़ाकर तुम्हें भिखारी बनने के रास्ते पर, सरकार के खिलाफ होकर जेल जाने और फाँसी पर चढ़ने के रास्ते पर जाने दूँ, तो काम चलेगा ?

त्रिभुवनदास : (क्रोध से) तब तो जान पड़ता है कि आपने छिपकर मेरी और मेरे मित्रों की सब बातें सुनी है। ओह ! इस प्रकार छिपकर दूसरों की बातें सुनना तो नीचता की……(**रुक जाता है।**)

चतुर्भुजदास : तुम्हारा गलत खयाल है। मैने तुम्हारे दोस्तों की और तुम्हारी बाते छिपकर हर्गिज नहीं सुनीं। यहाँ आते-आते तुम्हारे दोस्तों के सिर्फ दो फिकरे मेरे कान में पड़ गये थे। तुम्हारे आज-कल के कारनामों का हाल मुझे दूसरे ही रास्ते से मालूम हुआ है।

त्रिभुवनदास : दूसरे कोई रास्ते से आपको मेरी कोई वात मालूम हो ही नहीं सकती।

चतुर्भुजदास : तो तुम समझते हो, मैं झूठ बोलता हूँ।

त्रिभुवनदास : क्षमा कीजिए, पिताजी, यदि मैं यह कहूँ कि जो रुपये से वड़ी संसार में कोई वस्तु नहीं समझता, दूसरों की वातें छिपकर सुन सकता है, दूसरों की गुप्त वातें निर्लज्ज होकर पूछ सकता है, वह यदि झूठ भी वोले तो कोई आश्चर्य की वात नहीं है।

चतुर्भुजदास : (आँखों में आँसू भरकर भर्राये हुए स्वर में) कहो, त्रिभुवन, जो तुम्हारी खुशी हो, कह डालो। आज तुम्हारी जवान खुल गयी है, अव वह वन्द थोड़े ही हो सकती है। मुझे मक्खीचूस कहो, विश्वासघाती कहो, असभ्य कहो, झूठा कहो। वाप को जितनी गालियाँ दे सकते हो, उतनी दे लो।

त्रिभुवनदास : सहनशक्ति की सीमा होती है, पिताजी ! जव सहन के वाहर कोई वात हो जाती है, तव सवसे पहले मनुष्य की वोली ही खुलती है। आज मेरे मित्रों और मेरी वातों को आपका इस प्रकार छिपकर सुनना और फिर उन्हें खोद-खोदकर पूछने का प्रयत्न करना, किसी भी सभ्य मनुष्य की सहनशक्ति के वाहर की वात है।

चतुर्भुजदास : परन्तु, त्रिभुवन, मैं कहता हूँ न, कि मैंने तुम लोगों की वातें छिपकर नहीं सुनी है।

त्रिभुवनदास : तो फिर आपको यह कैसे मालूम हुआ कि हम

लोग सरकार के विरुद्ध कोई कार्य करनेवाले है ?

चतुर्भुजदास : जानना ही चाहते हो ?

त्रिभुवनदास : जब तक मै न जान लूँगा, मुझे सन्तोष न होगा ।

चतुर्भुजदास : और जानने के पश्चात् उसे किसी से कहोगे तो नहीं ?

त्रिभुवनदास : कदापि नही ।

चतुर्भुजदास : वचन देते हो ?

त्रिभुवनदास : अवश्य ।

चतुर्भुजदास : मुझे तुम्हारे वचन पर पूरा भरोसा है । अच्छा तो सुनो । तुम्हारे पास अरविन्द घोष की जो चिट्ठियाँ आती हैं, वे डाकखाने से पहले कलेक्टर के पास जाती हैं, वहाँ पढ़ी जाती हैं और तब तुम्हारे पास पहुँचती हैं ।

त्रिभुवनदास : आपसे यह किसने कहा ?

चतुर्भुजदास : आज मैं तहसील में गवाही देने गया था, वहाँ तहसीलदार ने······

त्रिभुवनदास : (**आश्चर्य से**) अच्छा !

चतुर्भुजदास : अब तो तुम्हें विश्वास हो गया कि मैने तुम्हारी और तुम्हारे दोस्तों की बाते छिपकर नहीं सुनीं ?

त्रिभुवनदास : (**कुछ चकपकाकर**) हाँ, क्षमा कीजिए, पिताजी, मैने आप पर इस प्रकार का सन्देह किया ।

चतुर्भुजदास : (**आँसू भरकर गद्गद् स्वर से**) क्षमा, त्रिभुवन, तुम्हें तो मैंने हमेशा ही क्षमा किया है । बेटा, तुमको

देखकर मैं जीता हूँ; तुम्हारे सुख के लिए ही तो इस उमर मे भी दिन-रात खून का पसीना कर रहा हूँ, तुम्हारा वाल भी बाँका न हो, यही सोचना तो दुनिया में मेरा अब एक काम रह गया है। त्रिभुवन, तुम अपना मन जान सकते हो, बाप का नहीं। बाप का मन तो वही जान सकता है, जो बाप हो चुका है। तुम नहीं, त्रिभुवन, तुम नहीं।

[**चतुर्भुजदास की आँखों से आँसू बहने लगते हैं। त्रिभुवनदास कुछ न कहकर सिर झुका लेता है। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है।**]

चतुर्भुजदास : (**आँखे पोछते हुए**) तुम्हें इतनी कमखर्ची पसंद नहीं है। अच्छी बात है, जितना तुम्हारी खुशी हो, खर्च करो। तुम्हारे दादा से तो यही सुना था कि एक दफा खर्च बढ़कर फिर वह घट नहीं सकता, खुली मुट्ठी बन्द नहीं हो सकती; इसीलिए कम-से-कम खर्च रखने की कोशिश करता था। लक्ष्मी यों ही चंचला है। अगर हाथ से उसे फेंकने लगोगे, तो और जल्दी जायगी; पर नहीं, मेरे बाद भी तो यह सब धन तुम्हें ही मिलेगा। मैं अब कितने दिन का? आज ही ले लो और इसका जो चाहो करो। तुम्हारे लिए ही तो इसे इकट्ठा करता था। दुनिया का कुछ तजुर्बा हो जाता और उसके बाद यह तुम्हें मिलता, तो अच्छा होता; पर नहीं (**कमर से चाबी खोलकर**) यह लो, यह

तिजोरी की चाबी है। उसी में बैंक की चेकबुक भी है। अट्ठाईस लाख और कुछ हजार रुपये नकद और इतने ही आसरे की तुम्हारी जायदाद है; पर इस सब के बदले एक वचन तुमसे चाहता हूँ।

त्रिभुवनदास : (सिर उठाकर) वह क्या ?

चतुर्भुजदास : सरकार के खिलाफ कोई काम करके तुम अपने ऊपर आफत न बुलाओ और अपने बुड्ढे बाप के बुढ़ापे में धूल न पटको।

त्रिभुवनदास : यह नहीं हो सकता, पिताजी।

चतुर्भुजदास : यह क्यों ?

त्रिभुवनदास : इस सम्बन्ध में मेरे और आपके सिद्धान्त एक दूसरे से सर्वथा प्रतिकूल है। आप अपने सिद्धान्त अपने पास रखिए और मेरा मेरे पास रहने दीजिए। मैं सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य का पूजक हूँ।

चतुर्भुजदास : मेरे तो कोई सिद्धान्त ही नहीं। मेरे सिद्धान्त तो तुम हो। तुम सुखी रहो, तुम आराम से रहो, तुम पर कभी कोई किसी तरह की भी आफत न आने पावे, यही मेरे सिद्धान्त हैं।

त्रिभुवनदास : परन्तु मैं अकर्मण्य सुख का जीवन बिताकर केवल खा-पी और चैन उड़ाकर शूकर के समान मोटा नहीं होना चाहता। मैं संसार में कुछ करके कुछ होना चाहता हूँ। मै अपने देश की सेवा करूँगा और परा-धीनता की जंजीरों से अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र

बनाऊँगा ।

चतुर्भुजदास : बेटा, बेटा, मेरे बुढ़ापे की तरफ भी देखो, उस देवी के माफिक वहू की तरफ भी देखो । सात महीने के बाद ही तुम्हारे लड़का हो जायगा । मेरा तो, आज मरूँ, कल मरूँ, यह हाल है । दुधमुँहें बच्चे की कौन हिफाजत करेगा, यह देखो । त्रिभुवन······

[तहसीलदार विश्वेश्वरदयाल का प्रवेश । विश्वेश्वरदयाल की अवस्था लगभग पच्चीस वर्ष की है । गौर वर्ण का सुन्दर युवक है । अंग्रेजी ढंग के कपड़े पहने है ।]

चतुर्भुजदास : (**तहसीलदार को देखकर खड़े हो, जमीन तक झुककर सलाम कर**) ओ हुजूर है ! आइए, तशरीफ लाइए, गरीबखाने पर बड़ी मेहरबानी हुई, सरकार ! (**त्रिभुवनदास से, जो बैठा हुआ है**) त्रिभुवन, तहसीलदार साहब को नहीं देखा, उठकर सलाम करो, बेटा । (**तहसीलदार से**) अभी यह कॉलेज के बोर्डिंग से लौटे हैं, आपको शायद नहीं जानते, गरीब-परवर !

त्रिभुवनदास : मैं उनको सलाम करूँ ! मै खुशामदी, जीहुजूर नहीं हूँ । उन्हें मुझे सलाम करना चाहिए । मैं उनका नौकर नहीं हूँ ; वे सार्वजनिक नौकर हैं ।

चतुर्भुजदास : (**आश्चर्य से**) त्रिभुवन, त्रिभुवन, क्या कह रहे हो ।

विश्वेश्वरदयाल : (**मुस्कराकर**) नहीं, लाला साहब, त्रिभुवनदासजी ठीक कहते हैं । हम लोग सार्वजनिक नौकर ही

हैं। उन्हें और आपको नहीं, पर यथार्थ में मुझे ही आप लोगों का अभिवादन करना चाहिए।

यवनिका

दूसरा अङ्क

स्थान—सर त्रिभुवनदास की कोठी का मुलाकाती कमरा

समय—तीसरा पहर

[आधुनिक ढंग का विशाल और मनोहर कमरा है। तीन ओर दीवारे दिखती हैं, जिनके बीच में बड़े-बड़े दरवाजे और खिड़कियाँ हैं। दरवाजों की चौखटों और किवाड़ों में खुदाव का काम है और किवाड़ों में फूलदार काँच भी लगे हैं। किवाड़ खुले हुए हैं, जिनसे बाहर के उद्यान का कुछ भाग दिखायी देता है, जो सूर्य की किरणों से प्रकाशित है। दरवाजों पर फूलदार चीनाई रेशम के परदे लगे हुए हैं, जो मोटी-मोटी रेशमी रस्सियों से दरवाजों के दोनों ओर बँधे हैं और इन डोरियों के बड़े-बड़े फुँदने जमीन तक लटक रहे हैं। दीवारों में फूलदार चीनी के ईटों की 'डेडो' है और उसके ऊपर सुन्दर रंग, जिसके किनारों पर बेलें बनी हैं। सीलिंग में फूलदार टीन के तख़्ते लगे हैं और उन पर भी मनोहर रंग है। फर्श पर इटली देश का रंग-बिरंगा संगमरमर लगा हुआ है। प्रत्येक दरवाजे के दोनों ओर ऊँचे शीशे लगे हैं, जिनकी चौखटें भी फूलदार शीशों की ही हैं। इन शीशों के दोनों ओर सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के तैल-चित्र हैं, जिनकी सुनहरी चौखटें हैं। बीच की दीवार के दरवाजे के ऊपर एक विशाल घड़ी लगी हुई है। जहाँ एक

दीवार दूसरे से मिलती है, उन कोनों पर लकड़ी के खुदाव की कामवाली 'कैबिनेट' रखी हैं, उन पर मनोहर खिलौने सजे हैं। कमरे के फर्श पर सोफा, आराम-कुर्सियाँ और सादी कुर्सियाँ रखी हुई हैं। सभी गद्दीदार हैं। उन पर फूलदार मखमल लगा हुआ है और रेशम के फूलदार तकिये रखे हैं। प्रत्येक सोफा और कुर्सी के नीचे छोटे-छोटे फारस देश के सुन्दर गलीचे बिछे हुए हैं और उनके सामने सुन्दर टेबिलें रखी हैं। टेबिलों पर चीनाई रेशमी फूलदार मेजपोश हैं और उन पर काँच और चीनी के रंग-बिरंगे कामदार फूल-दानों में पत्र-पुष्प सजे हैं। दाहिनी ओर की दीवार के दरवाजे के सामने कुछ हटकर 'पियानो' रखा है और पियानो के सामने गद्दीदार 'पियानो-स्टूल'। इसी प्रकार बायीं ओर की दीवार के दरवाजे के सामने 'राइटिंग-टेबिल' रखी है और उसके सामने गद्दीदार 'आफिस चेयर।' राइटिंग-टेबिल का सब सामान चाँदी का है। उस पर एक 'टेलीफोन' भी रखा है और एक बिजली का सुन्दर टेबिल-लैम्प। छत से 'कट ग्लास' के बिजली के झाड़ और सफेद रंग के सीलिंग फैन झूल रहे हैं। बीच के सोफे पर त्रिभुवनदास और लेडी त्रिभुवनदास बैठे हुए हैं। अब त्रिभुवनदास की अवस्था पैंतालीस वर्ष की हो गयी है। सिर और मूँछों के कुछ बाल सफेद हो गये हैं। वे मोटे फ्रेम का चश्मा लगाये हुए हैं। अंग्रेजी ढंग के कपड़े पहने हैं। सिर नंगा है। लेडी सरस्वती देवी की अवस्था तैंतालीस वर्ष की है। वे गौर वर्ण और सुडौल शरीर की सुन्दर स्त्री हैं।

काश्मीरी रेशमी साड़ी और उसी प्रकार का शलूका पहने हुए हैं। हीरे-मोती के आभूषण हैं। सोफा के सामने टेबिल पर चाय का सामान सजा हुआ है। चाय, केक और फल सभी वस्तुएँ हैं। दोनों चाय पी रहे हैं और बातें भी कर रहे हैं।]

सरस्वती : आज उसका जन्म-दिवस है। चौबीसवाँ वर्ष पूर्ण कर वह पचीसवें वर्ष में गया है। (**पीछे मुख कर घड़ी को देख**) आज से चौबीस वर्ष पूर्व वह इस समय के लगभग एक घंटे पश्चात् हुआ था और जन्म-दिवस को भी वह घर में नहीं है। हम लोग सुख से घर में रहते हैं, हर प्रकार का आनन्द भोगते हैं और हम लोगों का इकलौता पुत्र घर-द्वार, ऐश्वर्य, सम्पत्ति सब कुछ छोड़कर मारा-मारा घूम रहा है।

त्रिभुवनदास : तुम समझती हो, मै इसका कारण हूँ ?

सरस्वती : स्पष्ट ही सुनना चाहते हो ?

त्रिभुवनदास : क्या मुझ से भी तुम स्पष्ट न कहोगी।

सरस्वती : नाराज तो न हो जाओगे ?

त्रिभुवनदास : (**मुस्कराकर**) क्योंकि प्रायः हो जाता हूँ।

सरस्वती : अवश्य।

त्रिभुवनदास : अच्छा-अच्छा, आज कदापि न होऊँगा। जो कुछ तुम कहना चाहो, स्पष्ट-स्पष्ट और सत्य-सत्य कहो।

सरस्वती : तो स्पष्ट और सत्य बात तो यही है कि तुम्हीं इसका कारण हो। देखो ! सन् १९२० अर्थात्—

लगभग पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक वह तुम्हीं को यह सब करते देखता रहा, जो आज वह कर रहा है। वाल्यावस्था में ही मनुष्य का हृदय वनता है। तुम्हारे ही कार्यों को देखकर वह यह सब सीखा है। (**चाय की ठसकी लग जाने से खाँसते हुए रुककर और रूमाल से मुँह पोंछकर**) जव तुम काँग्रेस, किसी प्रान्तीय परिषद् या सार्वजनिक सभा में जाते, तव उसे प्रायः साथ ले जाते थे। जव वह वहाँ से लौटता, तव महीनों उन्हीं वातों की चर्चा किया करता था। कहता, अमुक नेता जव वोलता है, तव ऐसा जान पड़ता है, मानो वादल गरज रहा है। कई वार तो उनके भाषणों का स्मरण कर-कर वह रो पड़ता और कहता कि ये अंग्रेज़ मेरी भारत माता पर कैसा अत्याचार कर रहे हैं। हाय ! हाय ! मेरी भारत माता की सन्तानें कितना दुःख पा रही हैं। यही सब सोच-सोचकर उसने विवाह तक न करने की प्रतिज्ञा कर ली और अन्त में घर तक छोड़कर चल दिया।

त्रिभुवनदास : अच्छा, थोड़ी देर को यदि यह भी मान लिया जाय कि उसने ये सव वातें मुझसे सीखीं, पर मैंने किससे सीखीं थीं ? राजा साहव तो इन सव वातों में नहीं थे न ?

सरस्वती : तुमने स्कूल-कॉलेज में अपने मित्रों से सीखी थीं। संसार में मनुष्य संग से ही सव कुछ सीखता है।

त्रिभुवनदास : मुझे बड़ा खेद है कि तुम इतनी बुद्धिमती और विदुषी होकर भी असल बात नहीं समझ रही हो ।

सरस्वती : तो क्या तुम यह कहना चाहते हो कि संग से मनुष्य कुछ नहीं सीखता ?

त्रिभुवनदास : मै यह नहीं कहता कि संग से मनुष्य कुछ नहीं सीखता, परन्तु संग गौण कारण है, मुख्य नही । मनोहर के इस समय के जोश का मुख्य कारण उसकी युवावस्था है, अनुभव-शून्यता है । संग तो मुझे भी ऐसे ही लोगों का रहता है, फिर मेरे हृदय पर अब उनका प्रभाव क्यों नही पड़ता ? बात यह है कि कुछ समय से इस देश के वायु-मंडल में जोश का रोग आ गया है । युवकों पर इसका सबसे अधिक असर होता है और इसमें ऐसी छूत है, जैसी किसी रोग में नहीं । युवकों को संसार का अनुभव रहता नहीं, बस उसी जोश में बह जाते हैं । अवस्था के कुछ बढ़ने और संसार के अनुभव के होने पर जब जोश ठण्डा हो जायगा तब वह चुपचाप घर लौट आयगा । कुछ दिन दुनिया की ठोकरें खा लेने दो ।

सरस्वती : तो तुम समझते हो, बंग-विच्छेद के आन्दोलन के समय तुम भी केवल जोश के कारण उस आन्दोलन के साथ हो गये थे और तुमने भी भूल की थी ?

त्रिभुवनदास : इसमें मुझे थोड़ा-सा भी संदेह नहीं है ; परन्तु मैं तो ठीक समय रास्ते पर आ गया । दिन-भर का

भूला-भटका यदि रात्रि को भी घर पर आ जावे तो वह भूला-भटका नहीं कहलाता ; वरन् उलटा अनुभवी हो जाता है। मैंने तो पढ़ना-लिखना समाप्त कर देश के कार्य में भाग लिया, (**खाँसते हुए रुककर**) पर मनोहर तो ऐसा वहा कि सन् १६२१ में सोलहवें वर्ष में मैट्रिक से ही पढ़ना-लिखना तक छोड़ बैठा। बिना पढ़े-लिखे स्वयं का ज्ञान तो होता नहीं, मेरे अनुभव तक से उसने लाभ न उठाना चाहा और महात्मा गांधी के चक्कर में पड़ गया। सन् १६२० के असहयोग-आन्दोलन के समय तुम जानती हो, मुझे सार्वजनिक जीवन में पन्द्रह वर्ष हो चुके थे। उन पन्द्रह वर्षों में मैंने भारतवर्ष के एक-एक नेता को अच्छी प्रकार देख लिया था। निकट से देखने पर मुझे मालूम हो गया था कि अधिकांश नेताओं की देश-भक्ति किस प्रकार की है !

सरस्वती : तो तुम्हारा यह कहना है कि सब नेता धूर्त्त हैं ?

त्रिभुवनदास : नहीं, मेरा यह कहना नहीं है ; पर अधिकांश धूर्त्त है, इसमे सन्देह नही। ऊपर से वे देश-भक्ति दिखाते है, परन्तु उनके भीतर स्वार्थ कूट-कूटकर भरा है। सरकार का इसीलिए विरोध करते हैं कि सरकार उनसे सौदा करे और ज्यों ही सरकार सौदा करती है, त्यों ही सौदा पटते ही सरकार की ओर हो जाते हैं।

सरस्वती : (मुस्कराकर) तो अन्य लोगों के समान तुमने भी

सरकार से सौदा किया ?

त्रिभुवनदास : मेरे लिए तुम ऐसा नहीं कह सकतीं ।

सरस्वती : क्यों, तुम भी तो १९०५ से १९२० तक सरकार के वड़े भारी विरोधियों में थे और आज सर की उपाधि से युक्त प्रान्त के होम-मेम्वर हो एवं गवर्नर होने की भी आशा कर रहे हो । ससुरजी को राजा की पदवी मिल गयी है ।

त्रिभुवनदास : पहले तो मै सरकार के साथ हूँ, यही मै नहीं मानता ; फिर यदि थोड़ी देर को तुम्हारा कहना मान लूँ, तो तुम समझती हो, मै रुपये और उपाधियों के लिए सरकार के साथ हूँ ?

सरस्वती : रुपये के लिए तुम सरकार के साथ हो, यह दोषा-रोपण कोई भी तुम पर नहीं कर सकता ; क्योंकि भगवान् ने तुम्हें वहुत रुपया दिया है । जो कुछ सरकार से तुम्हें मिलता है, उससे दूना तुम्हारा खर्च है ; परन्तु सरकारी उपाधियाँ तुमने ली है, इसे तुम अस्वीकृत नहीं कर सकते ।

त्रिभुवनदास : उपाधियाँ मैने ली हैं, यह नही ; उपाधियाँ मुझे मिली है, यह कहो । मैने सरकार से उपाधियाँ लेने का भी कोई प्रयत्न नही किया ।

सरस्वती : परन्तु जव मिल गयी, तव उन्हें स्वीकार कर लिया ।

त्रिभुवनदास : हाँ, क्योंकि उनके स्वीकार करने में मैं कोई

आपत्ति नहीं देखता था ; इसलिए मैने उन्हें स्वीकार किया कि उन्हें मैं बड़ी भारी वस्तु समझता हूँ, यह बात नही है ; क्योंकि इन उपाधियों से भी कहीं बड़ी वस्तु सार्वजनिक प्रशंसा तक को मैंने लात मार दी। मुझे बड़ा खेद है कि तुम तक मुझे नही समझ रही हो ?

सरस्वती : किस प्रकार ?

त्रिभुवनदास : देखो, मैने बंग-भंग के आन्दोलन में सच्ची देश-भक्ति से प्रेरित होकर भाग लिया था। जैसा मैने तुमसे कहा कि पन्द्रह वर्षों तक मैंने भारतीय नेताओं और जनता को निकट से देखा है और दोनों से मुझे अत्य-धिक घृणा हो गयी।

सरस्वती : परन्तु उनसे घृणा होने के कारण सरकार की ओर होने की क्या आवश्यकता थी ?

त्रिभुवनदास : सरकार की ओर मैं हुआ ही नही, यह तो मैंने पहले ही कहा। हाँ, मैने अपनी कार्य-पद्धति अवश्य बदली और उसके दो कारण थे।

सरस्वती : क्या ?

त्रिभुवनदास : वही तो बता रहा हूँ। एक नेताओं का स्वार्थ और दूसरे इस देश की जनता की कायरता और अकर्मण्यता। सन् १९०५ से १९२० तक के सार्वजनिक जीवन में मैने देख लिया कि जिस प्रकार इस देश के नेता निकम्मे हैं, उसी प्रकार इस देश की जनता भी किसी काम की नही। जो जनता पन्द्रह वर्षों के लगातार

प्रयत्न पर भी ब्रिटिश माल तक का वहिष्कार न कर सकी, वह महात्मा गान्धी के असहयोग-आन्दोलन को सफल कर सकेगी, यह मुझे विश्वास ही न था। फिर असहयोग को तात्त्विक दृष्टि से भी मैं हानिकारक समझता था; इसीलिए काँग्रेस द्वारा उनके कार्य-क्रम के स्वीकृत होते ही मैंने काँग्रेस को छोड़ दिया और बड़ी-बड़ी आशाएँ छोड़ थोड़ा-बहुत भी जो लाभ कौंसिलों द्वारा पहुँचाया जा सकता है, उसे पहुँचाने के लिए मैंने कौंसिल में प्रवेश किया। मेरे कौंसिल में **(चाय पी चुकने के पश्चात् सिगरेट जलाते हुए)** मेरे कौंसिल में **(माचिस बुझ जाती है; अतः फिर जलाता है)** मेरे कौंसिल में जाते ही मेरे बिना कुछ कहे सरकार ने लाला साहब को राजा की पदवी दी। तीन वर्ष पश्चात् जब मै फिर कौंसिल में गया और मिनिस्टर हुआ, तब मेरे बिना कुछ कहे सरकार ने मुझे सर की उपाधि दी। तीन वर्ष मिनिस्टरी करने के बाद मेरे बिना कुछ कहे उन्होंने मुझे होम-मेम्बर बनाया। यदि मै गवर्नर भी हुआ, तो बिना किसी प्रयत्न के होऊँगा। **(कुछ ठहरकर)** मेरा अनुमान भी सत्य निकला। दो ही वर्षों के भीतर असहयोग-आन्दोलन असफल हो गया और देशबन्धुदास, पण्डित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय के सदृश व्यक्ति तक कौंसिलों और एसेम्बली में गये। जो असहयोग-आन्दोलन का हाल

हुआ, वही इस सत्याग्रह का भी होगा । मैं अपने व्यक्ति-गत अनुभव के आधार पर कह रहा रहा हूँ, अपने व्यक्ति-गत अनुभव के आधार पर । मैं इस देश के नेताओं और जनता को अच्छी प्रकार जानता हूँ, खूब अच्छी तरह । मुझे विश्वास है कि मनोहर को भी धीरे-धीरे इन दोनों का अनुभव हो जायगा ।

सरस्वती : तो तुम्हारा मत है कि असहयोग असफल हो गया और सत्याग्रह असफल हो जायगा ?

त्रिभुवनदास : असहयोग-आन्दोलन के असफल होने में तो कोई मतभेद हो ही नहीं सकता और सत्याग्रह भी असफल होगा, इसमें कम-से-कम मुझे कोई सन्देह नहा है ।

सरस्वती : असहयोग-आन्दोलन से कोई जागृति और लाभ नहीं हुआ ?

त्रिभुवनदास : जागृति और लाभ ! मेरा तो इस सम्बन्ध में मत ही दूसरा है ।

सरस्वती : कैसा ?

त्रिभुवनदास : मैने कहा न कि मै तात्त्विक-दृष्टि से उसे देश के लिए हानिकारक समझता हूँ । तुम जागृति और लाभ की वात करती हो, मेरी दृष्टि से इस आन्दोलन से जो जागृति यहाँ हो रही थी, उसे तक वहुत रुकावट हो गयी और वड़ी भारी हानि पहुँची ।

सरस्वती : यह तो मै नयी वात सुन रही हूँ ।

त्रिभुवनदास : हाँ, क्योंकि तुम को तो साहित्य से काम। राजनैतिक विषयों पर तुम मुझसे कभी बातचीत ही नहीं करतीं, आज ही कर रही हो।

सरस्वती : बातचीत क्या करूँ! अपने मत के विरुद्ध सम्मति सुनते ही तुम सदा आग-बबूला हो जाते हो। दो-चार बार बात करने का प्रयत्न भी किया, पर जब देखा कि उससे उलटा कलह होता है, तब उस चर्चा को ही न छेड़ने की मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी। आज ही न जाने तुम कैसे शान्ति से बातें कर रहे हो।

त्रिभुवनदास : (**मुस्कराकर**) अपने पुत्र के प्रति तुम्हारी अत्यधिक करुणा देखकर।

सरस्वती : (**लम्बी साँस लेकर**) जैसे तुम्हारा वह कुछ है ही नहीं।

त्रिभुवनदास : अच्छा-अच्छा, सुनो असहयोग से कैसे जागृति रुकी और कैसे हानि हुई ?

सरस्वती : उहँ, हानि के सम्बन्ध में तो यही बता दोगे कि इतने आदमी जेल गये, इतनी सम्पत्ति नष्ट हुई ; पर हाँ, जागृति भी नहीं हुई, यह मैंने कभी न सुना था।

त्रिभुवनदास : नहीं-नहीं, यदि कुछ हज़ार मनुष्य जेल गये और कुछ सम्पत्ति नष्ट हो गयी, तो इसमें मैं कोई बड़ी भारी हानि नहीं मानता। मैं स्वयं भी तो जेल गया हूँ। सार्वजनिक कार्यों में बहुत सी सम्पत्ति भी नष्ट कर चुका हूँ।

सरस्वती : फिर ?

त्रिभुवनदास : मै उस आन्दोलन में तात्त्विक-दृष्टि से ही बड़ा भारी दोष देखता हूँ।

सरस्वती : किस प्रकार ?

त्रिभुवनदास : महात्मा गान्धी बहुत बड़े आदमी हैं, इसमें सन्देह नही ; परन्तु या तो महात्मा गान्धी को अभी सौ-दो-सौ वर्ष पश्चात् हमारे संसार में जन्म लेना था या किसी दूसरे सितारे पर होना था। उनके असहयोग की नीव घृणा न होकर प्रेम है। वे अंग्रेज़ों से प्रेम करने को कहते है और उनके दुष्कर्मो में प्रेम के साथ असहयोग करने का उपदेश देते हैं, तुम्हें स्मरण होगा कि पहले वे अपने प्रेम के सिद्धान्तों के कारण विदेशी माल के बहिष्कार तक के विरुद्ध थे।

सरस्वती : हाँ, स्मरण है।

त्रिभुवनदास : पर फिर अन्य अनेक कारणों से उसे उन्होंने स्वीकार कर लिया ; अकेले ब्रिटिश माल के बहिष्कार के तो वे आज भी विरुद्ध हैं।

सरस्वती : जानती हूँ।

त्रिभुवनदास : जब सारे संसार में स्वार्थ का राज्य है और एक दूसरे के गले काटने के लिए हर एक मनुष्य, हर एक जाति और हर एक राष्ट्र तैयार हो रहे है, तब इस प्रकार के प्रेम-पूर्ण कार्य-क्रम से हमारा अभीष्ट कभी सिद्ध नही हो सकता। बंग-भंग के आन्दोलन के समय

अंग्रेजी माल के बॉयकाट के साथ इस राज्य को उलट देने के लिए अनेक गुप्त संगठन हो रहे थे। इस देश का बच्चा-बच्चा अंग्रेजों से घृणा करने लगे, इस बात का प्रयत्न हो रहा था। हर स्थान पर घृणा की जागृति हो रही थी। महात्मा गान्धी ने बॉयकाट के स्थान पर असहयोग को जन्म देकर सारे गुप्त-संगठनों का ध्वंस कर दिया। घृणा की उस जागृति को रोक दिया और इस प्रकार देश को बड़ी भारी हानि पहुँचायी। इन आधिभौतिकता के प्रेमी अग्रेज़ों पर इस प्रकार के प्रेम-पूर्ण असहयोग का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। सत्याग्रह की भी यही प्रेम नीव है। फिर उसमें तो स्वयं चाहे नष्ट हो जाय, पर अपने बचाव के लिए भी हिसा निषिद्ध है। इस प्रकार के आन्दोलनों का अंग्रेज मजाक उड़ाते है। उन्हें तो आयलैंण्ड के सदृश आन्दोलन चाहिए या अमेरिका के सदृश स्वाधीनता का सशस्त्र संग्राम।

सरस्वती : और ये दो बाते कर सकने की इस देश में शक्ति नहीं।

त्रिभुवनदास : बिल्कुल नही ; इसीलिए तो मैने कहा न कि बड़ी-बड़ी आशाएँ छोड़कर मै देश का थोड़ा-बहुत ही लाभ करने को कौसिल में चला गया।

सरस्वती : पर सर्व-साधारण जनता तुम्हारे कौसिल-प्रवेश, मिनिस्टरी और होम मेम्बरी को तुम्हारा स्वार्थ और

पतन कहती है। रुपये की तुम्हें भूख है, यह कोई नहीं कहता, पर तुम्हें अधिकार और प्रभुत्व की भूख हो गयी है, यह सबका कहना है। लोग कहते हैं कि इन दस वर्षो के कौंसिल जीवन से तुम्हारे ऊपर कौंसिल के विषैले वायु-मंडल का पूरा-पूरा प्रभाव हो गया है और शनैः शनैः तुम्हारे हृदय की देश-भक्ति उस विष से सर्वथा नष्ट हो गयी है। विदेशी विजेता पराजितों पर वाह्य और आन्तरिक दोनों ही प्रकार की विजय तो करते हैं। जनता का कहना है कि उन्होंने तुम पर दोनों प्रकार की विजय प्राप्त कर ली है। तुम्हारे इस समय के सार्वजनिक जीवन को देखकर, तुम्हारे पुराने त्यागपूर्ण सार्वजनिक जीवन के लिए भी वह यही कहने लगी है कि वह सब व्यक्तिगत महत्त्व के लिए था।

त्रिभुवनदास : (कुछ उत्तेजित होकर) जनता क्या कहती है, इसकी मुझे जरा-सी चिन्ता नहीं है। एक अंग्रेजी कहावत है—'पब्लिक-पब्लिक, हाउ मेनी फूल्स मेक पब्लिक।' इतना ही नही कि जनता में बुद्धि नहीं है, न उसमें विवेक है और न साहस। उसका मन तो उस सूने गृह के सदृश है, जिसमें किसी के भी शब्द की प्रतिध्वनि हो सकती है। जनता से अधिक घृणास्पद वस्तु और कोई नही। यदि वह नीच नहीं है, तो कोष में से 'नीचता' शब्द का वहिष्कार कर देना पड़ेगा। यदि वह कायर नही है, तो भाषा में से 'कायरता' शब्द

को निकाल डालना होगा और यदि वह अकर्मण्य नहीं है तो फिर 'अकर्मण्यता' शब्द का उपयोग किसके लिए होगा ? जिसमें इस देश की जनता ! मूर्ख और मूर्ख ही नहीं पशुओं का समुदाय ! जनता यों ही घृणास्पद होती है, फिर इस देश की जनता के लिए तो घृणास्पद शब्द से भी यदि कोई कड़ा शब्द हो, तो उसका उपयोग होना चाहिए। उसकी मूर्खता के कारण ही तो हम देखते है कि कुछ भी विशेषता रखनेवाला व्यक्ति उसके बीच ईश्वर का अवतार मान लिया जाता है और उस अवतार का वह पूजन अवश्य करती है, चाहे उसके अनुसरण करने की बात वह स्वप्न में भी न सोचे।

सरस्वती : किन्तु यह सोचने से कोई लाभ नहीं कि जनता कैसी होनी चाहिए। जैसी वह है, उसी से तो काम पड़ता है। जब उसके बीच में रहना है, तब ऐसे कार्य तो न करने होंगे, जिनसे उसे घृणा है।

त्रिभुवनदास : तब ऐसे करने होंगे, जिनसे करनेवाले को घृणा है। देखो यदि जीवन में मुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ करना पड़े, तो उस जीवन तक को रखने की अपेक्षा मै उसे समाप्त कर देना अधिक अच्छा समझता हूँ। चूँकि जनता में रहने के लिए मुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध कार्य करना पड़ता है इसलिए मैं जनता से कोई प्रयोजन नहीं रखना चाहता। मै अपने

अन्तःकरण से पूछकर हर एक कार्य करता हूँ और मेरा अन्तःकरण कहता है कि मै हर एक कार्य को पूर्ण विवेक से कर रहा हूँ। तुम जानती हो, मेरे लिए संसार में सबसे अधिक मूल्यवान् कौनसी वस्तु है ?

सरस्वती : कौनसी ?

त्रिभुवनदास : सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य। धन को यदि मूल्यवान् समझता हूँ, तो इसीलिए कि वह मनुष्य की स्वतंत्रता के लिए आज सब से बड़ा साधन है। मैने अपना काम पूरी ईमानदारी के साथ किया है। मिनिस्टरी के काम में मैने अपने सब मुहकमों को आशातीत रूप से सुधारा है। जब से होम-मेम्बर हुआ हूँ, कमिश्नरों, कलक्टरों आदि को एक-एक करके दुरुस्त किया है। पिताजी छोटे-छोटे सरकारी कर्मचारियों को झुक-झुककर सलामें किया करते थे। बड़े-बड़े अफसर मुझे झुक-झुककर सलामें करते है; वे सदा उनकी हाँ-हुजूरी में दत्तचित्त रहते थे, मैं उन पर हुक्म चलाता हूँ।

सरस्वती : देखो, अब तुम फिर उत्तेजित होने लगे। कुछ लोग कहते है, व्यक्तिगत महत्त्व बढ़ने के अतिरिक्त तुम्हारे कौसिल में जाने, मिनिस्टर और होम-मेम्बर होने से देश को लाभ हुआ है, इसका कोई प्रमाण नहीं है ?

त्रिभुवनदास : ओह ! एक नही, बीसों प्रमाण हैं; पर उसे समझने की लोगों में बुद्धि कहाँ है ?

[सरस्वती चुप रहती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

सरस्वती : (कुछ ठहरकर) क्यों तुम समझते हो कि महात्मा गान्धी का प्रेम-पूर्ण और अहिंसात्मक मार्ग इस देश को स्वतन्त्र नहीं कर सकता ?

त्रिभुवनदास : कदापि नहीं।

सरस्वती : परन्तु मैं तो ऐसा नहीं समझती। मेरा तो यह···

त्रिभुवनदास : (बीच ही में) तुम ऐसा इसलिए नहीं समझतीं कि तुम स्त्री हो। स्त्रियों के हृदय में पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रेम रहता है।

सरस्वती : क्यों, कई समझदार पुरुष भी तो ऐसा ही समझते हैं।

त्रिभुवनदास : वे या तो समझदार है ही नही, या स्त्रैण हैं।

सरस्वती : परन्तु तुम तो सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य के बड़े भारी पुजारी थे। दूसरों के सिद्धान्तों को······

त्रिभुवनदास : (बीच ही में) आरम्भ से था। और आज भी हूँ। इसी सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य के कारण आरम्भ मे पिताजी से लड़ा और इसी कारण तो लड़का घर छोड़कर निकल गया ; पर मैने इसकी कोई परवा न की; बराबर अपने सिद्धान्त पर अटल हूँ।

सरस्वती : क्षमा करना, यदि मै फिर स्पष्ट कह दूँ तो।

त्रिभुवनदास : हाँ-हाँ, जो तुम कहना चाहती हो, कहो।

सरस्वती : अपने ही सम्बन्ध में तुम सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य के पुजारी हो, दूसरों के सम्बन्ध में नहीं। तुम्हारे घृणा

और गुप्त संगठनों के सिद्धान्तों से महात्मा गान्धी का प्रेमपूर्ण असहयोग और सत्याग्रह का सिद्धान्त कहीं उच्च और व्यवहार्य है।

त्रिभुवनदास : उच्च चाहे हो; किन्तु व्यवहार्य नहीं है।

सरस्वती : इसीलिए तुम उसे अव्यवहार्य मानते हो न कि सन् २० का असहयोग-आन्दोलन असफल हो गया!

त्रिभुवनदास : अवश्य।

सरस्वती : तो सन् ५ में किये गये घृणा-प्रचार और गुप्त संगठन भी असफल हो गये। सन् २० के असहयोग-आन्दोलन के असफल होने का दोष, असहयोग के कार्य-क्रम को न होकर, इस देश की जनता को है, जिसे तुम भी अकर्मण्य कहते हो। यदि सत्याग्रह भी असफल हुआ, तो इसका दोष भी जनता के सिर पर होगा, यह नहीं, कि ये सिद्धान्त ठीक नहीं है। भारतीयों के सदृश निःशस्त्र जनता यदि किसी मार्ग से स्वतन्त्र हो सकती है, तो असहयोग और सत्याग्रह से ही। फिर इनका विश्व-व्यापी महत्त्व है। यदि भारतवर्ष ने इन मार्गों द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली, तो नित्य-प्रति की मार-काट से ऊबकर जो संसार निःशस्त्रीकरण के प्रयत्न में लगा हुआ है, उसे त्राण पाने के लिए भारत नवीन मार्ग बतावेगा। ससार मे अन्याय के प्रतिकार के लिए जो युद्ध अनिवार्य माना जाता है, उसका स्थान यदि कोई ले सकता है, तो सत्याग्रह ही। **(जोर से)** वैरा! वैरा!

(**सफेद कपड़ों में बैरा का प्रवेश । वह अभिवादन करता** है) यह टेविल उठाकर ले जाओ । (**वह चाय की टेबिल ले जाता है**) स्मरण रखो, निःशस्त्रों पर शस्त्रधारियों का सदा प्रहार कर सकना नैसर्गिक नियम के प्रतिकूल है। शस्त्रधारियों पर ही शस्त्रधारी प्रहार कर सकते हैं। इस सत्याग्रह-आन्दोलन के सत्याग्रहियों पर जिस प्रकार की लाठियाँ चलाना आरम्भ हुआ है, स्त्रियों और बच्चों तक पर जिस प्रकार गोलियाँ वरसाना आरम्भ हुआ है, संसार सदा इसे नहीं देख सकेगा। यह भीषण अन्याय और अत्याचार एक दिन सारे भू-मण्डल को कँपा देगा और अंग्रेजी सत्ता तो बहुत छोटी वस्तु है, सारे संसार की सम्मिलित पाशविक शक्ति भी इसके सम्मुख थर्रा उठेगी।

त्रिभुवनदास : परन्तु ... .

[**उसी समय टेलीफोन की घण्टी बजती है। त्रिभुवन-दास राइटिंग टेबिल के निकट जाकर ऑफिस चेयर पर बैठे फोन को कान से लगाता है।**]

त्रिभुवनदास : हलो, हलो,..... यस टू फोर नाइन।......यस ..... ओ! ....फाइरिंग........यस !... .....पहले पत्थर जनता की ओर से चले? (**सरस्वती घबराकर राइटिंग-टेबिल के पास चली जाती है।**)........कितने पुलिसवालों को चोट आयी?........कितने? तीन? ....और जनता के कितने आदमी मरे?........

कितने ? आठ ?………इनमें कितनी औरतें और बच्चे ?………कितने ? दो और एक ?………और घायल कितने हुए ?………कितने ? बयालीस ?…… डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट विश्वेश्वरदयाल मौके पर थे ?…… यस, यस, ऑल राइट, गुड नाइट।

सरस्वती : **(घबराकर)** क्या हुआ, क्या हुआ ?

त्रिभुवनदास : कुछ नहीं, कोई घबराने की बात नहीं है, अब सब ठीक हो गया।

सरस्वती : पर गोली चली न ?

त्रिभुवनदास : हाँ, चौक में पुलिस को गोली चलानी पड़ी।

सरस्वती : वहाँ क्या हुआ था ?

त्रिभुवनदास : पिकेटिंग हो रही थी।

सरस्वती : **(कुछ काँपते हुए)** फिर ?

त्रिभुवनदास : तुम काँपी क्यों जाती हो। अब तो घबड़ाने की कोई बात है हीं नही।

सरस्वती : **(भर्राये हुए स्वर में)** क्या हुआ, मुझे जल्दी से बता दो !

त्रिभुवनदास : कुछ नहीं, साधारण-सी बात है। आज विश्वेश्वरदयाल मेरे पास आये थे और मुझसे कहा था कि आज यहाँ से पिकेटिंग आरम्भ होगी। मैने उनसे कह दिया था कि पिकेटर्स गिरफ्तार कर लिये जायँ। तुम जानती हो, ऐसे अवसरों पर भीड़-भाड़ हो ही जाती है। बड़ी-सी भीड़ इकट्ठी हो गयी। ज्यों ही स्वयं-

सेवक गिरफ़्तार हुए, भीड़ से पत्थर आने लगे। तीन पुलिसवालों को गहरी चोट लगी। इस पर पुलिस ने लाठी चलायी। भीड़ ने पुलिस पर आक्रमण करना चाहा। बलवे का आसार देखकर पुलिस को गोली चलाने पर बाध्य होना पड़ा। एक बच्चा, दो औरतें और पाँच आदमी मरे और लगभग चालीस-बयालीस व्यक्ति घायल हुए।

सरस्वती : **(काँपते हुए निकट की ही आराम-कुरसी पर बैठकर)** आह ! आज मनोहर भी पिकेटिंग के लिए जाने वाला था।

त्रिभुवनदास : **(घबड़ाकर)** क्या ? क्या ? मनोहर पिकेटिंग के लिए जानेवाला था ? तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

सरस्वती : **(भर्राये हुए स्वर में)** उसने मुझे सन्देश भेजा था।

त्रिभुवनदास : **(कुछ सँभलकर)** पर वह कदाचित् न गया हो।

सरस्वती : **(रोते हुए)** नहीं, वह अवश्य गया होगा।

त्रिभुवनदास : तो कदाचित् गिरफ़्तार कर लिया गया होगा।

[लाल वरदी पहने हुए शीघ्रता से चपरासी का प्रवेश।]

चपरासी : **(जल्दी से सलाम कर)** हुज़ूर, हुज़ूर !

त्रिभुवनदास : **(घबड़ाकर)** हाँ, क्या हुआ, चपरासी ?

चपरासी : हुज़ूर, विश्वेश्वरदयाल साहब तशरीफ लाये हैं।

त्रिभुवनदास : **(सँभलकर)** अच्छा, उन्हें आने दो ; पर तुम इतने घबड़ाये हुए क्यों हो ?

चपरासी : हुजूर, उनके साथ साहबजादे साहब को........

(रो पड़ता है।)

[सरस्वती चीखकर मूच्छित हो जमीन पर गिर पड़ती है। त्रिभुवनदास दौड़ता हुआ बाहर जाता है। आगे दो पुलिसवाले मनोहरदास की लाश को उठाये हुए और उसके पीछे त्रिभुवनदास और विश्वेश्वरदयाल का प्रवेश। विश्वेश्वर-दयाल की अवस्था अब ५० वर्ष की है। सिर और मूँछों के बाल आधे से अधिक सफेद हो गये हैं। वह अंग्रेजी ढंग के कपड़ों में हैं। मनोहरदास की लाश एक सोफा पर लेटा दी जाती है। वह सुन्दर गौर वर्ण का युवक है। खादी के कपड़े पहने हुए है, जो खून से लथपथ हो गये हैं। पुलिसवाले बाहर चले जाते हैं और त्रिभुवनदास और विश्वेश्वरदयाल कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। त्रिभुवनदास नीचा मुख कर फूट-फूटकर रोने लगता है। विश्वेश्वरदयाल नीचा मुख किये रहता है। कुछ देर तक उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकलता।]

विश्वेश्वरदयाल : (भर्राये हुए स्वर में धीरे-धीरे) धैर्य रखिए, सर त्रिभुवनदासजी, ऐसे अवसरों पर धैर्य ही रखने मे काम चलता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि बायें हाथ को छोड़कर और इन्हें कहीं गोली नही लगी दिखती। जब इनके शरीर को हम लोगों ने उठाया, उस समय साँस भी थी। बदन तो अभी तक गरम है, हाथ से थोड़ा-थोड़ा खून भी निकल रहा है ; पर अब साँस नही है। इतने पर भी मैं डॉक्टर के लिए

मोटर भेजकर आया हूँ, क्योंकि ईश्वर की गति वड़ी विचित्र है ; कदाचित् अभी भी........

[रोते हुए वृद्ध राजा चतुर्भुजदास का शीघ्रता से प्रवेश । उसकी अवस्था अब पचहत्तर वर्ष की है । मूँछें और बाल सन के सदृश सफेद हो गये हैं । मुख पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं । ठुड्ढी के नीचे का चमड़ा लटक आया है ; यद्यपि कमर कुछ झुक गयी है, पर शरीर अभी वैसा ही मोटा-ताजा है । वह धोती और कुरता पहने हुए खुले सिर है । हाथ में लकड़ी है, जिसे टेकते हुए चलता है । उसे देखकर विश्वेश्वर-दयाल उठ खड़ा होता है ।]

चतुर्भुजदास—(शीघ्रता से मनोहरदास की लाश के पास जा और जमीन पर बैठ लाश की कमर के निकट अपना सिर पटकते हुए) हाय ! हाय ! यह क्या हुआ ! यह क्या हुआ ! क्या बुढ़ापे में मुझे यह भी देखना वदा था ! हाय ! यह देखने के पहले ही मै क्यों न मर गया ? (कुछ ठहरकर सिर पटकते हुए) वेटा, वेटा, जव तू पैदा हुआ था, तव मुझे कितनी खुशी हुई थी । तेरे वचपन में हमेशा तुझे लिये घूमा करता था । कोई भी वाहर से आता, तो तुझे उसे जरूर दिखाता और कहता, देखो हम साँवलों के घर मे कैसा गोरा-नारा लड़का हुआ है । यदि कोई रात को भी आता, तो लालटेन लेकर मै उसको तुझे दिखाता था । हाय ! हाय ! वही गोरा-नारा, वही सुन्दर, मनोहर ! (कुछ

ठहरकर फिर सिर पटकते हुए) तेरी माँ के रहते हुए भी में ही तुझे गाय का दूध पिलाता और जिस गाय का दूध तुझे देता, उसकी सानी भी मै अपने सामने बनवाता, जिससे वह दूध तुझे विकार न करे। हाय ! उसी की मेरे सामने यह हालत ! **(कुछ ठहरकर फिर सिर पटकते हुए)** जब तू कुछ बड़ा हुआ, तब तुझे खाना भी मैं ही खिलाता। हमेशा इसी फिकर में रहता कि तू कैसे बड़ा और मोटा होगा। मुझे याद है, जब मेरे हाथ काँपने लगे और कौर तेरे मुँह में ठीक तरह न जाने लगा, तभी मैने तुझे खिलाना छोड़ा था। हाय ! बेटा, वही तू मेरे सामने इस तरह पड़ा है और ये आँखें तुझे इस हालत में देख रही है ! **(कुछ ठहरकर फिर सिर पटकते हुए)** मुझे याद है, जब तू घर छोड़-कर गया था, तब यह कहकर गया था कि अब जीते-जी इस घर में आकर न रहूँगा। तू तो, बेटा, मरकर ही आया। बड़ा बातवाला था न, अपनी बात पूरी करके ही छोड़ी ; पर मेरी उस वक्त बुद्धि कहाँ चली गयी थी। तेरे बाप ने अपने सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य के सबब तेरा कहा न माना ; पर मुझे क्या हो गया था। मुझे इस महल, इस जायदाद और इस पदवी से क्या सरो-कार था ? मै तेरे संग क्यों न चला गया ? फ़ूल-से सुकुमार तूने न जाने क्या-क्या तकलीफें पायी होंगी। अगर आखिरकार गोली ही तुझे लगनी थी, तो मेरे

कलेजे को पार कर लगती। मैं यह नजारा तो देखने को न जीता बचता। पर, त्रिभुवन, हाय ! तूने यह कह-कहकर कि मनोहर को तजुर्बा होने पर वह चुप-चाप लौट आयेगा और व्याह भी कर लेगा, आप जरूरत से ज़्यादा प्यार कर-करके उसे चौपट कर देंगे, मुझे अपना कैदी बना रखा। हाय ! बेटा, हाय ! यह क्या हुआ ? यह क्या हुआ ? (शिथिल होकर फूट-फूटकर रोने लगता है और सिर लाश से टिका लेता है।)

[डॉक्टर का हैण्डबेग लिये हुए प्रवेश। वह अधेड़ अवस्था का मनुष्य है और अंग्रेजी ढग के वस्त्रों में है।]

विश्वेश्वरदयाल : (उठकर डॉक्टर के निकट जा धीरे से) डॉक्टर, इन्हे बाये हाथ को छोड़कर और कहीं गोली नहीं लगी दिखती। जब हम लोगों ने इनके शरीर को उठाया, तब भी साँस थी। थोड़ा-थोड़ा खून यहाँ लाने तक बहता था और शरीर भी गरम था, अब नहीं कह सकता, क्या हाल है।

डॉक्टर : हाथ की गोली से जान तो प्रायः नही जाती, मूर्च्छा आ सकती है ; पर, हाँ, साँस न चलना यह तो मौत का पूरा प्रमाण है ; पर कभी-कभी साँस इतनी धीरे-धीरे चलने लगती है कि देखने में यही जान पड़ता है कि साँस नहीं चलती। आप पक्का कह सकते है कि साँस नही है ?

विश्वेश्वरदयाल : कम-से-कम दिखता तो यही है। नाक और मुँह पर हाथ रखने से भी साँस हाथ में नहीं लगती। (जल्दी से) डॉक्टर, देखिए, जल्दी देखिए। यदि सचमुच प्राण है, तो मेरे मुख की कालिख धुल जायगी। मुझ पर सर त्रिभुवनदास की इतनी कृपाएँ है कि मैं उनसे उऋण नही हो सकता।

डॉक्टर : मै अभी देखता हूँ।

[डॉक्टर लाश के पास जाकर पहले नब्ज देखता है, फिर हाथ को नाक और मुँह पर रखता है। फिर तो स्थैटिस-कोप निकालकर उसका हृदय देखता है।]

डॉक्टर : **(हर्ष से चिल्लाकर)** राजा साहब, आप क्यों दुख कर रहे है? भैया को केवल मूर्च्छा है। वे जीवित है, राजा साहब, अवश्य जीवित है। मै अभी इन्जेक्शन देता हूँ। बहुत शीघ्र उन्हें होश आ जायगा।

चतुर्भुजदास : (एक दम से उठकर) जीवित है, जीवित है, मेरा प्यारा, मेरा दुलारा, मेरी आँखों का तारा बेटा जीवित है? डॉक्टर साहब, इसे अच्छा कर दीजिए, चाहे मेरी सारी जायदाद इसके अच्छा करने में लग जाय, मै सारी जायदाद को बहा देने को तैयार हूँ, इसे अच्छा कर दीजिए, डॉक्टर साहब, इसे अच्छा कर······

[मूर्च्छित होकर गिरने लगता है। विश्वेश्वरदयाल सँभालकर आराम-कुरसी पर ले जाता है और रूमाल से मुख पर

हवा करता है। डॉक्टर इन्जेक्शन की तैयारी करता है।]

डॉक्टर : (इन्जेक्शन की तैयारी करते-करते) त्रिभुवनदासजी, थोडा वर्फ और हाथ का पंखा मँगवाइए, क्योंकि विजली के पंखे की हवा तीव्र होगी।

[त्रिभुवनदास शीघ्रता से जाता है।]

सरस्वती : (मूर्च्छा से एकाएक जागकर उठती हुई पागलों के समान) कहाँ, कहाँ ले जाते हो उसे ? अरे अरे ! मेरा इकलौता पुत्र है, और मेरे कोई नहीं है, भाई ! वड़ी कठिनाई से उसे दस महीने पेट में रखा है और पाल-पोसकर वड़ा किया है। हाथ जोड़ती हूँ, पैर पड़ती हूँ, छोड़ दो, छोड़ दो, मेरे मनोहर को ! (कुछ ठहरकर) अरे रे रे रे ! गोली मारोगे ? आह ! पहले मुझे मारो, मुझे ! अरे ! मैं तो पहले ही मनोहर के साथ घर से निकलती थी ; पर पति और पुत्र के वीच में चुनाव करना था। भला ऐसे अवसर पर स्त्री की जाति मैं क्या करती ? (फिर लेट जाती है, और आँखें बन्द कर लेती है।)

डॉक्टर : (विश्वेश्वरदयाल से) मालूम होता है, दुःख के कारण इनका सिर विगड़ गया है। आप त्रिभुवनदास-जी को शीघ्र वुलाइए। यहाँ तो नयी-नयी आपत्तियाँ आती जा रही है।

[विश्वेश्वरदयाल का प्रस्थान। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। डॉक्टर मनोहरदास को इन्जेक्शन लगाता है।]

सरस्वती : (फिर उठकर) हाँ, हाँ, मानती हूँ, घृणा और हिंसा ही का यह परिणाम है। मैं तो आरम्भ से ही उन्हें बुरा मानती हूँ। जिसके हृदय में घृणा और हिंसा होती है, वह पहले परायों को घृणा की दृष्टि से देखता है, उनकी हिंसा करता है, फिर अपनों की भी। पिता ने पुत्र की हत्या की है; पिता ने पुत्र की! (फिर चुप होकर लेट जाती है।)

[त्रिभुवनदास और विश्वेश्वरदयाल का प्रवेश। साथ में एक नौकर भी है, जिसके हाथ में बर्फ और पंखा है।]

डॉक्टर : (नौकर से) उनके सिर पर बर्फ़ रखो। थोड़ा मुँह में डालो और हवा करो। (त्रिभुवनदास से) आप लेडी साहब को सँभालिए। उनका सिर कुछ बिगड़ गया-सा जान पड़ता है। मैंने इसीलिए उनसे कुछ नहीं कहा कि ऐसे अवसरों पर जिनका घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है, उनकी अच्छी बात का भी कभी-कभी बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है।

[विश्वेश्वरदयाल और नौकर मनोहरदास की ओर जाते हैं और त्रिभुवनदास सरस्वती की ओर। विश्वेश्वरदयाल मनोहरदास के सिर पर बर्फ रखता है और मुँह में भी डालता है। नौकर पंखा करता है। डॉक्टर चतुर्भुजदास की नब्ज देखता है और फिर मनोहरदास की।]

त्रिभुवनदास : (सरस्वती को धीरे से) देखो......

सरस्वती : (आँखें खोलकर) तुम, तुम हो, हटो मेरे सामने से,

मेरे पास न आओ। तुम हत्यारे हो, तुमने अपने एक-मात्र पुत्र की हत्या की है।

त्रिभुवनदास : परन्तु तुम्हें वृथा का भ्रम हो गया है, मनोहर जीवित है, बिलकुल जीवित है।

सरस्वती : **(शीघ्रता से उठकर)** क्या जीवित है, मेरा लाल जीवित है ? कहाँ, कहाँ है, मेरा प्राण कहाँ है ?

त्रिभुवनदास : वह देखो, वह सोफा पर लेटा है। उसे मूर्च्छा आ गयी है, डॉक्टर साहब दवा कर रहे हैं, बहुत शीघ्र चेतना आ जायगी।

[सरस्वती जल्दी से मनोहरदास के निकट जाती और उसके निकट बैठकर उसका सिर अपनी गोद में रख नौकर के हाथ से पंखा लेकर स्वयं झलती है। त्रिभुवनदास भी वहीं जाकर खड़ा हो जाता है। विश्वेश्वरदयाल और डॉक्टर चतुर्भुजदास की ओर आते हैं। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है।]

मनोहरदास : **(करवट लेते हुए)** ओह !

[मनोहरदास फिर चुप हो जाता है। सरस्वती के नेत्रों से आँसू बहने लगते हैं।]

सरस्वती : **(त्रिभुवनदास को धीरे से)** आज तक मैंने तुमको कभी कुछ नहीं कहा था ; पर आज मुझे पूरा होश नहीं था। हाँ, कुछ-कुछ चेतना अवश्य थी। कदाचित् कुछ कटु वाक्य कह दिये है। मुझे क्षमा करना। **(फिर आँसू आ जाते हैं।)**

त्रिभुवनदास : इसकी चिन्ता न करो ।

[मनोहरदास फिर करवट बदलता है ।]

मनोहरदास : आह ! हाथ में बड़ा ··· **(फिर चुप हो जाता है ।)**

त्रिभुवनदास : (डॉक्टर के निकट जाकर) मनोहर दो वार करवट वदल चुका है । कुछ बोला भी था ।

[डॉक्टर फिर मनोहरदास की ओर आता है ।]

चतुर्भुजदास : (एकाएक होश में आकर) हाँ, डॉक्टर साहव, वह जीवित है न, जीवित है न ?

डॉक्टर : (मनोहरदास की नब्ज देखते हुए) हाँ-हाँ, राजा साहव, आप विलकुल चिन्ता न करें । वे करवट बदलने लगे है । कुछ वोले भी हैं, वहुत शीघ्र इन्हें पूरा होश आ जायगा ।

[चतुर्भुजदास मनोहरदास के निकट जाता है । विश्वेश्वर-दयाल भी उसके पीछे-पीछे जाता है । कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है । डॉक्टर फिर स्थैटिस-कोप मनोहरदास के हृदय पर लगाता है ।]

मनोहरदास : (दाहिने हाथ से स्थैटिस-कोप को हटाते हुए) है, यह क्या है ? (कुछ ठहरकर) अरे, हाथ में बड़ा दर्द है । (कुछ ठहरकर) मै कहाँ हूँ ?

चतुर्भुजदास : (गद्गद् होकर) वेटा, वेटा, तू बोलने लगा, तू वोलने लगा । तू अपनी माँ की गोद में है, अपने बुड्ढे दादा के मकान में है ।

मनोहरदास : (आँखे खोल, चौंककर) कौन अम्माँ, दादाजी !

(उठते हुए) मैं यहाँ कैसे आया ?

चतुर्भुजदास : कैसे आया, गोली लगकर आया, बेटा, मरा हुआ आया, बेटा । भगवान् ने तुझे जिला दिया, मेरे बुढ़ापे और तेरी माँ की कोख की लाज रख ली ।

डॉक्टर : (**मनोहरदास से**) अभी आप उठिए नहीं ।

[**सरस्वती पुनः मनोहरदास को लेटा लेती है ।**]

मनोहरदास : परन्तु, डॉक्टर साहब, मैं तो इस घर में नहीं रह सकता, मेरी प्रतिज्ञा थी··· ··

चतुर्भुजदास : हाँ-हाँ, बेटा, तेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी । तेरी यह प्रतिज्ञा थी न कि जब तक कर्ज़दारों पर का सूद न छोड़ दिया जायगा, जब तक जमींदारी हक छोड़कर जमीन किसानों को न देदी जायगी, जब तक कारखानों के मुनाफे में से आधा हर साल मजदूरों को न बाँट दिया जायगा और जब तक मैं और त्रिभुवन अपनी-अपनी पदवियाँ छोड़कर महात्मा गान्धी के दल में न मिल जायँगे, तब तक तू इस घर में आकर न रहेगा । ये सब बातें होंगी, जरूर होंगी ।

डॉक्टर : हाँ-हाँ, इन्हें कुछ ऐसी बाते सुनाइए, जिनसे इनका चित्त प्रसन्न हो। ऐसे अवसरों पर चित्त की प्रसन्नता बहुत दूर तक बीमार को स्वस्थ कर देती है । अस्पताल ले जाकर एक्स-रे कराना होगा; परन्तु इसके पूर्व इनका चित्त जितना प्रसन्न हो सके, उतना ही अच्छा है ।

मनोहरदास : परन्तु, दादाजी, यह सब करना आपके अकेले

हाथ में थोड़े ही है, पिताजी के हाथ मे भी तो है !

चतुर्भुजदास : उनको करना पड़ेगा।

मनोहरदास : और यदि उन्होंने न किया तो ?

चतुर्भुजदास : उन्होंने न किया तो ? **(कुछ सोचते हुए)** अगर उन्होने न किया, तो मै अपने हिस्से की आधी जायदाद लेकर उसमें यह सब करूँगा।

मनोहरदास : पर यदि उन्होंने आपको जायदाद न दी, तो क्या आप पिता होकर उन पर मुकदमा चलाने को बैठेंगे, जो मैंने पुत्र होने पर भी नही किया था ?

चतुर्भुजदास : **(कुछ सोचते हुए)** नही, बेटा, उन पर मुकदमा न चलाऊँगा। ऐसी हालत में मै भी यह घर छोड़कर तेरे संग ही इस घर के बाहर निकल जाऊँगा। मेरी पदवी छोड़ने के बीच में तो वे आ ही नही सकते। उसे छोड़ जो तू कहेगा, वह करूँगा। भीख माँगनी पड़े तो वह माँगकर तेरा और अपना गुजर-बसर करूँगा। हम दादा-पोता एक साथ रहेंगे।

मनोहरदास : डॉक्टर साहब के कहने के अनुसार ये सब बातें आप मेरा चित्त प्रसन्न करने के लिए कह रहे है या सचमुच करेंगे ?

चतुर्भुजदास : यह तो देख लेना, बेटा। अब तक न किया, इसी का मुझे ताज्जुब है ; क्योंकि, बेटा, मै कभी अपने लिए जिया ही नहीं। पहले तेरी दादी के लिए जीता था, फिर तेरे बाप के लिए। एक-एक पैसा खून का

पानी कर तेरे बाप के लिए कमाया था। वह एक दिन सब-का-सब तेरे बाप को दे दिया। अब तेरे लिए जिऊँगा। तेरे पिता का सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य मेरी समझ में नहीं आता। जब तेरे पिता ने बी० ए० पास किया था, उस वक्त देश को स्वतत्र करने के सिद्धान्त पर वे मुझसे लड़े थे, पर वही जब तू करना चाहता है, तब वे तुझसे भी लड़ रहे हैं। मैने पिता होने के सबब उनसे हार मान ली थी; पर वे तुझसे हार नहीं मानते। न जाने उनका यह कैसा सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य है कि इसके पीछे वे अपने बाप से भी लड़े और बेटे से भी। तेरा देश-प्रेम भी अब तक मेरी समझ में नहीं आया; पर, हाँ, तेरी दादी का, तेरे बाप का और तेरा प्रेम समझ में आता है। अब मरते-मरते शायद तेरे साथ और महात्मा गान्धी के आशीर्वाद से देश-प्रेम भी समझ में आ जाय। **(चतुर्भुजदास चुप हो जाता है। उसके नेत्रों से आँसू बहने लगते हैं। कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है।)**

विश्वेश्वरदयाल : **(मनोहरदास से)** मनोहरदास जी, मै भी आपको इस समय एक शुभ-समाचार दिये देता हूँ। कदाचित् इसे भी सुनकर डॉक्टर साहब के कहने के अनुसार आपको आरोग्य होने में सहायता मिलेगी।

मनोहरदास : क्या, विश्वेश्वरदयालजी ?

विश्वेश्वरदयाल : देश के लिए आपने अपना महल, अपनी

सम्पत्ति, सब कुछ छोड़ा है, अपने प्राणों तक की आहुति देने में आप पीछे नहीं हटे। आपके इस अद्भुत आदर्श और राजा साहब के इस समय के कथन ने आज मेरे हृदय में भी महान् परिवर्तन कर दिया है; मेरे आन्तरिक चक्षु खोल दिये है। यद्यपि आज अपने देश-वासियों पर गोली चलाने की आज्ञा देते समय भी मेरे हृदय की विचित्र दशा थी, परन्तु उस समय मै अपने सम्बन्ध में कुछ निर्णय नही कर सका था। अब मैने भी अपने सम्बन्ध में निश्चय कर लिया।

मनोहरदास : वह क्या, विश्वेश्वरदयालजी ?

विश्वेश्वरदयाल : मै कल इस नौकरी से त्यागपत्र दे दूँगा। आप और राजा साहब के इस त्याग के सामने मेरी पन्द्रह सौ रुपये महीने की नौकरी का त्याग कोई बड़ा भारी त्याग नही है; परन्तु मेरे पास उसे छोड़कर और त्यागने को है ही क्या ?

मनोहरदास : (गद्गद् कंठ से) आपका त्याग हम लोगों के त्याग से कहीं बड़ा त्याग है।

विश्वेश्वरदयाल : नहीं, मनोहरदासजी, कुछ नहीं। इस देश के पैतीस करोड़ आदमियों में कितने सरकारी नौकरी पर निर्भर हैं ? जो सरकारी नौकरी नहीं करते, उनका क्या निर्वाह नही होता ? अपने देशवासियों, न्याय-परायण देशवासियों और फिर मनुष्यता की दृष्टि में निःशस्त्र मनुष्यों, स्त्रियों और बच्चों को जेलों में ठूँसकर,

लाठियाँ मारकर और गोली का निशाना बनाकर पन्द्रह सौ रुपया माहवारी पाने की अपेक्षा पन्द्रह रुपया महीने पर गुजर कर लेना कही अच्छा है ।

चतुर्भुजदास : (कुछ ठहरकर त्रिभुवनदास से) अब तुम क्या करोगे, त्रिभुवन ?

त्रिभुवनदास : (कुछ सोचते हुए) मैं, मैं, मैं पिताजी ? (कुछ रुककर) मैंने अभी कुछ निर्णय नही किया है । आप जानते है, मैं हृदय से नही, परन्तु मस्तिष्क से शासित होता हूँ । मैं इस प्रकार सस्ते वचन देने में असमर्थ हूँ । (फिर कुछ रुककर) मुझे अभी सारे विषय पर सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य·· सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य ··· ·सिद्धान्त-स्वातन्त्र्य की दृष्टि से विचार · · विचार ····· करना ·····

यवनिका

धोखेबाज़
तथा
दस अन्य एकांकी

निवेदन

सेठ जी ने अपने एकांकियों में हमारी बड़ी-छोटी अनेक सामाजिक, राजनीतिक और पारिवारिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। इन एकांकियों का कथानक हमारे सार्वजनिक सामाजिक जीवन के इतने निकट है कि वे हमारे अपने ही प्रश्न और समस्याएँ प्रतीत होती हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनके सामाजिक तथा समस्यात्मक एकांकी संगृहीत हैं।

प्रकाशक

एकांकी-सूची

धोखेबाज़

मुख्य पात्र, स्थान

मुख्य पात्र :

१.	दानमल	: एक व्यापारी
२.	रूपचन्द	: दानमल का मुनीम
३.	कैलाशचन्द्र	: एक खान वाला
४.	नीलरतन	: एक राइस मिल वाला
५.	मुमताजुद्दीन	: एक मकान वाला
६.	लखमीदास	: दानमल के मित्र
७.	कालीचरण	

स्थान : कलकत्ता

पहला दृश्य

स्थान : दानमल का दफ़्तर

समय : प्रात.काल

[तीनों तरफ़ लकड़ी के पार्टीशन की दीवालें हैं जिनमे ऊपर की तरफ़ काँच लगे है। पीछे की दीवाल में कोई दरवाज़ा नहीं है। आसपास की दीवालों के सिरों पर एक-एक छोटा सा एक पल्ले का दरवाज़ा है, जो बन्द है। इन दरवाज़ों में भी ऊपर की तरफ़ काँच लगे है। कमरे के बीच में एक उसी तरह की पार्टीशन की दीवाल और है जिससे एक कमरे के यथार्थ में दो कमरे हो गये है। दोनों कमरों के बीच की पार्टीशन की दीवाल के बीच में भी एक दरवाज़ा है। यह भी बन्द है। दोनों कमरों के बीचोंबीच एक-एक बड़ी आफ़िस टेबिल रखी है। इन आफ़िस टेबिलों के ऊपरी भाग काँच के तख़्ते से पटे है। उन पर लिखने-पढ़ने का बेशकीमती सामान और स्टेशनरी सजे हैं। एक-एक टाइमपीस घड़ी और एक-एक घंटी भी रखी हैं। दाहिनी तरफ़ के कमरे की आफ़िस टेबिल पर छै टेलीफ़ोन एक लाइन मे रखे है और बायीं ओर के कमरे की आफ़िस टेबिल पर सिर्फ़ एक टेलीफ़ोन है। हरेक आफ़िस टेबिल के पीछे की तरफ़ गद्दीदार

आफ़िस चेअर है, जिसका मुँह सामने की तरफ है। हरेक आफ़िस टेबिल के सामने की ओर चार-चार गद्दीदार साधारण कुर्सियाँ रखी हैं, इनके मुँह आफ़िस चेअर की तरफ हैं। बायीं ओर का कमरा खाली है दाहिने तरफ़ के कमरे में आफ़िस चेअर पर रूपचन्द बैठा हुआ है। रूपचन्द की उम्र करीब ४० साल की है। वह सॉवले रंग और साधारण शरीर का व्यक्ति है। बाल कुछ-कुछ सफ़ेद हो चले है। सिर पर मारवाड़ी पगड़ी बाँधे और शरीर पर सफ़ेद कुरता और धोती पहने है। रूपचन्द चश्मा लगाये हुए कुछ लिख रहा है। पीछे की पार्टीशन की दीवाल के पीछे से टाइप राइटरों की खटखटाहट की धीमी आवाज़ आ रही है। दाहनी तरफ़ के दरवाजे को खोल चपरासी का प्रवेश। चपरासी के आते ही दरवाज़ा आप से आप बन्द हो जाता है। चपरासी सफ़ेद रंग की वरदी पहने है। कमर में कमरपेटी है जिस पर अंग्रेज़ी में लिखा है—दानमल कम्पनी। चपरासी हाथ में चाँदी की तश्तरी लिये हुए है जिसमें एक विज़िटिंग कार्ड रखा है।]

रूपचन्द : (तश्तरी का कार्ड उठाकर उसे देख) भेज दो।

[चपरासी का उसी दरवाज़े से प्रस्थान। उसी दरवाज़े को खोल कैलाशचन्द्र का प्रवेश। कैलाशचन्द्र गोरे रंग का ऊँचा पूरा मोटा-ताज़ा आदमी है। उम्र है क़रीब पचास वर्ष। बाल आधे सफ़ेद हो गये है। काले रंग की शेरवानी और चूड़ीदार पजामा पहने है। सिर पर फ़ैल्ट कैप लगाये है। कैलाशचन्द्र को देखकर रूपचन्द खड़े हो उससे हाथ मिलाता है। रूपचन्द अपनी कुर्सी

पर और कैलाशचन्द्र सामने की एक कुर्सी पर बैठता है।]

रूपचन्द : (टाइमपीस घड़ी देखते हुए मुस्कराकर) आप ठीक समय पर आये।

कैलाशचन्द्र : कलकत्ते में समय कितनी बहुमूल्य वस्तु है इसे मैं जानता हूँ, मुनीम जी।

रूपचन्द : मैंने सेठ साहब से बातें कर ली हैं।

कैलाशचन्द्र : बहुत अच्छा।

रूपचन्द : उन्होंने आपकी खानें लेना स्वीकार कर लिया है।

कैलाशचन्द्र : (अत्यन्त प्रसन्नता से) यह आपकी कृपा के कारण।

रूपचन्द : नहीं, कैलाशचन्द्र जी, एक तो वे यों ही उदार हृदय के मनुष्य हैं, दूसरे लड़ाई की इस तेजी में उन्होंने इतना रुपया कमाया है कि उनकी समझ में नहीं आता कि उसे कहाँ लगावें।

कैलाशचन्द्र : मैंने आपसे एक प्रार्थना और की थी कि मुझे इस समय रुपये की अत्यधिक आवश्यकता है।

रूपचन्द : हाँ, उसके सम्बन्ध में भी मैंने उनसे निवेदन कर दिया है। आप खानें उनके नाम ट्रान्सफर करने की उचित कार्रवाही कीजिए, आपको पन्द्रह दिनों का एक लाख रुपये का पोस्टडेटेड चैक आज दे दिया जायगा।

कैलाशचन्द्र : (अत्यन्त प्रसन्न होकर) मैं किन शब्दों में आपको धन्यवाद दूँ, यह मेरी समझ में नहीं आता, मुनीम जी।
(जेब से हजार रुपये के पाँच नोट निकालकर टेबिल

पर रखता है।)

रूपचन्द : इसकी इस समय आवश्यकता नहीं है।

कैलाशचन्द्र : आप मुझे एक लाख रुपये का पोस्टडेटेड चैक दिलावें और मै यह छोटी-सी सेवा भी न करूँ। दस हज़ार चैक सिकरने पर भेंट करूँगा।

रूपचन्द : (**नोट उठाकर जेब में रखते हुए**) इच्छा आपकी। (**कुछ रुककर**) क्यों कैलाशचन्द्र जी, खानों के पत्थर में जितना परसैन्ट ताँबा, चाँदी और सोना रिपोर्टों मे लिखा है, वह तो बराबर है न ?

कैलाशचन्द्र : विशेषज्ञों की सारी रिपोर्टें आप देख चुके हैं। हिन्दुस्थान के ही नहीं विलायत तक के विशेषज्ञों की रिपोर्टें हैं।

रूपचन्द : (**मुस्कराकर**) विशेषज्ञों की रिपोर्टें ! कैलाशचन्द्र जी, ये रिपोर्टें कैसे मिल जाती हैं, यह तो आप और मैं दोनों अच्छी तरह जानते हैं।

[**रूपचन्द जोर से हँसता है। कैलाशचन्द्र भी हँसने में साथ देता है। चपरासी का तश्तरी में दूसरा विज़िटिंग कार्ड लिये हुए प्रवेश।**]

रूपचन्द : (**कार्ड को देखकर**) विज़िटर्स रूम में बैठाओ। मै अभी मिलूँगा।

[**चपरासी का प्रस्थान।**]

रूपचन्द : अच्छा, आप विज़िटर्स रूम मे ठहरिए। सेठ साहब बाज़ार खुलने के कुछ पहले अवश्य आ जाते हैं। उनके आते

ही मैं आपका चैक दिला दूंगा।

कैलाशचन्द्र : (खड़े होते हुए) बहुत अच्छा। अनेक धन्यवाद।

(प्रस्थान।)

[रूपचन्द घंटी बजाता है। चपरासी का प्रवेश।]

रूपचन्द : नीलरतन बाबू को भेज दो।

[चपरासी का प्रस्थान। नीलरतन का प्रवेश। नीलरतन करीब ६० वर्ष का काले रंग का बहुत ठिगना पर अत्यन्त मोटा और कुरूप बंगाली है। सिर और मूँछों के बाल सफ़ेद हो गये हैं। वह कुरता और धोती पहने है तथा कुरते पर एक शाल ओढ़े है। रूपचन्द खड़े होकर नीलरतन से हाथ मिलाता है। रूपचन्द अपनी कुर्सी पर और नीलरतन उसके सामने की कुरसी पर बैठता है।]

रूपचन्द : बाबू, हॅमने आपका मामला में सेठ से बात किया। ऊनको आपका राइस मिल लेना मंजूर है।

नीलरतन : [अत्यन्त प्रसन्नता से] धॅन्यवाद, मुनीम, वॅहोत-वॅहोत धॅन्यवाद। मूल्य ठो ठीक कॅर लिया।

रूपचन्द : हॉ, साठ सॅहस्र टाका, बाबू

नीलरतन : (और भी प्रसन्नता से) वॅहोत ठीक, वॅहोत ठीक।

रूपचन्द : आप सेलडीड का प्रॅबन्ध कॅरिये। पन्द्रा दीन में सॅब हो जाय। आज आपका पॅन्द्रा दीन का पोस्टडेटेड चैक मील जायगा।

नीलरतन : पोस्टडेटेड चैक! वॅहोत, वॅहोत धॅन्यवाद, मुनीम, वॅहोत वॅहोत धॅन्यवाद।

रूपचन्द : (**धीरे से**) अॅव हॅमारा हक्क ?

नीलरतन : (**दो हज़ार के नोट टेबिल पर रखते हुए**) हॅम घॅर से लेकर चॅला था। पाँच शॅहस्र चैक का रुपिया मिलने पॅर देगा।

रूपचन्द : (**नोट उठाकर जेब में रखते हुए**) धॅन्यवाद, वावू। (**कुछ रुककर**) आपका कारखाना चालीस वॅरस से जादा पूराना तो नई न ?

नीलरतन : चालीस वॅरष से एक ठो मॅहीना वी जादा हो तो टाका वापीश।

रूपचन्द : और मॅशीन सॅव वर्किंग आर्डर में है न ?

नीलरतन : वीलकूल ठो वर्किंग आर्डर में।

[**चपरासी का फिर तश्तरी मे एक विज़िटिंग कार्ड लेकर प्रवेश। रूपचन्द कार्ड देखता है।**]

रूपचन्द : विजिटर्स रूम में वैठाओ। मै अभी मिलूँगा।

[**चपरासी का प्रस्थान।**]

रूपचन्द : आछा, आप अॅवी विज़िटर्स रूम में वैठिये। सेठ वाजार खूलने का पेले आ जाता है। ऊसका आता ही आपको चैक मील जायगा।

नीलरतन : वॅहोत अॅच्छा, मुनीम, वॅहोत अॅच्छा। (**प्रस्थान।**)

[**रूपचन्द घंटी बजाता है। चपरासी का प्रवेश।**]

रूपचन्द : मुमताजुद्दीन साहव को भेज दो।

[**चपरासी का प्रस्थान। मुमताजुद्दीन का प्रवेश। मुमताजुद्दीन करीव ३५ वर्ष का गेहुएँ रंग का मनुष्य है। वह बहुत**

ऊँचा है, पर बहुत दुबला है। सिर और दाढ़ी-मूछों के बाल काले हैं। वह शेरवानी और ढीला पाजामा पहने हैं। सिर पर लाल तुर्की टोपी लगाये है। रूपचन्द खड़े होकर उससे हाथ मिलाता है। रूपचन्द अपनी कुरसी पर और मुमताजुद्दीन उसके सामने की कुरसी पर बैठता है।]

रूपचन्द : आपके मकान का सौदा पट ही जायगा, जनाब।

मुमताजुद्दीन—नवाजिश है, हुजूर की। सेठ साहब से गुफ्तगू हो गयी ?

रूपचन्द : जी हाँ, सारा मामला तय हो गया। कीमत अस्सी हज़ार आपको मजूर है न ?

मुमताजुद्दीन : हालाँकि जायदाद इससे कही ज्यादा की है, लेकिन······

रूपचन्द : (बीच ही मे त्योरी बदलकर) क्या कहा, जायदाद ज़्यादा······

मुमताजुद्दीन : (एकदम नरमी से) गुस्ताखी मुआफ़ फ़रमाइए। मुझ अस्सी हजार मजूर है।

रूपचन्द : मकान तो वही चीतपुर रोड के कोने वाला ही है न ?

मुमताजुद्दीन : जी हाँ, आपने तो शायद देखा भी है ?

रूपचन्द : हाँ, देखा है, शायद, ईस्ट इंडिया कम्पनी के वक़्त का बना हुआ है।

मुमताजुद्दीन : क्या फ़र्मा रहे है, सरकार, अभी पचास साल पुराना भी न होगा।

रूपचन्द : ख़ैर। बयाने का दस हज़ार का चैक आपको आज दे

दिया जायगा।

मुमताजुद्दीन : (प्रसन्नता से) मैं अज़हद शुक्रगुज़ार हूँ।

रूपचन्द : (कुछ विचारते हुए) पन्द्रह रोज़ में तो मकान का नक़्शा वग़ैरह बनकर बयनामा लिखा जा सकता है न ?

मुमताजुद्दीन : बड़ी ख़ुशी से।

रूपचन्द : तो देखिए, बाकी रुपये का पन्द्रह दिन का पोस्टडेटेड चैक भी आपको आज ही दिया जा सकता है, बशर्ते......... (चुप हो जाता है।)

मुमताजुद्दीन : बशर्ते, हुज़ूर ?

रूपचन्द : (त्योरी बदलकर) आप तो अजीबोग़रीब आदमी मालूम होते हैं। बिज़नेस किस चिड़िया का नाम है यह भी शायद नहीं जानते।

मुमताजुद्दीन : (सिटपिटाकर) हुज़ूर...हुज़ूर...

रूपचन्द : अजी हुज़ूर, हुज़ूर क्या ? दो सौ साल पुराना मकान, बीस हज़ार का भी न होगा, बिक रहा है, अस्सी हज़ार में। दस हज़ार बयाने में मिल रहे हैं और बाक़ी रक़म का पोस्टडेटेड चैक। और फिर भी आप कुछ नहीं समझते।

मुमताजुद्दीन : ओ ! मैं सरकार की हर तरह से ख़िदमत करने को......

रूपचन्द : ज़रा धीरे बोलिए, जनाब।

मुमताजुद्दीन : (डरते-डरते) खता मुआफ़।

रूपचन्द : (धीरे-धीरे) देखिए, ये दस हज़ार रुपये जो बयाने में मिल रहे हैं कुल के कुल आपको मुझे देने होंगे।

मुमताजुद्दीन : (**घबड़ाकर**) हुज़ूर......

रूपचन्द : आप तो ऐसे घबड़ा गये, जैसे मैं जबर्दस्ती आपको लूट रहा होऊँ। आपको मंज़ूर न हो तो यह मामला तय नही पा सकता।

मुमताजुद्दीन : (**और भी घबड़ाकर**) नही, नहीं, सरकार, जो भी हुज़ूर हुक्म देगे, बन्दा सर आँखों से उसकी तामील करेगा।

रूपचन्द : अच्छी बात है। दस हजार का चैक आपको आज की तारीख़ का मिलेगा और सत्तर हजार का पन्द्रह दिनों का पोस्टडेटेड। आज चैक का रुपया मिलते ही रात को मेरे घर पर यह रुपया पहुँच जाय। आज यह रुपया न पहुँचा तो पन्द्रह दिनों के बाद के चैक का पेमेन्ट न होगा। और चैक का पेमेन्ट होने के बाद बीस हज़ार रुपया उसमें से आपको देना होगा।

मुमताजुद्दीन : जो हुक्म। (**कुछ रुककर डरते-डरते**) एक अर्ज करूँ ?

रूपचन्द : (**एकदम रुखाई से**) फ़र्माइए।

मुमताजुद्दीन : (**डरते हुए धीरे-धीरे**) आज के रुपये में से अगर आधा......

रूपचन्द : (**क्रोध से खड़े होते हुए**) आपका सौदा नहीं हो सकता। आदाब अर्ज़।

मुमताजुद्दीन : (**मिन्नत से**) मुआफ़ कीजिए, मुआफ़ कीजिए।

रूपचन्द : जनाब, आप तो कुँजड़ों की भटा भाजी का सा सौदा कर रहे हैं।

मुमताजुद्दीन : मुआफ़ी, हुजूर, मुआफ़ी दीजिए। मुझे सब मंजूर है।

रूपचन्द : (बैठते हुए) अच्छी बात है। आप विज़िटर्स रूम में तशरीफ़ रखिए। सेठ साहब के आने पर आपको चैक मिल जायँगे।

मुमताजुद्दीन : (खड़े होते हुए) बहुत ख़ूब।

[चपरासी का तश्तरी में एक काग़ज़ लिये हुए प्रवेश। रूपचन्द काग़ज़ देखता है।]

रूपचन्द : (मुँह बिगाड़कर) इन चन्दे माँगने वालों के मारे तो नाकों दम है। (चपरासी से) अच्छा, भेज दो, उन लोगों को।

[मुमताजुद्दीन और चपरासी का प्रस्थान। रूपचन्द टेबिल की दराज से चैक बुक निकालकर चैक लिखना शुरू करता है। तीन गुजरातियों का प्रवेश। एक वृद्ध है, एक अधेड़ और एक युवक। वृद्ध गुजराती ढंग की पगड़ी लगाये हैं और सफ़ेद कोट तथा धोती पहने है। युवक अंग्रेज़ी ढंग के कपड़ों में है। तीनों गेहुँए रंग के है। वृद्ध कुछ मोटा तथा ठिंगना है, शेष साधारण क़द और शरीर के हैं। तीनों व्यक्ति रूपचन्द का अभिवादन करते है, पर रूपचन्द अभिवादन का उत्तर भी नहीं देता, चैक लिखता रहता है। तीनों आदमी सामने की कुर्सियों पर बैठ जाते है और रूपचन्द की तरफ़ देखते रहते है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

वृद्ध गुजराती : हम कल साँझ कूँ भी आया होता, पर आपका

मुलाकात नहीं हुआ।

[रूपचन्द कोई उत्तर न देकर लिखने में संलग्न रहता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

वृद्ध गुजराती : आज रात कूँ मेल से हम मंबई कूँ जाना चाना।

रूपचन्द : (**बिना सिर उठाये हुए लिखते-लिखते बड़े रूखे स्वर में**) आज रात कूँ मेल से मवई कूँ जा सकता हे।

वृद्ध : पण, मुनीम जी, हमारा जाना तो आपका शेठ पर निर्भर न ? उनकूँ मिलने का वास्ते हम मंबई से आया।

रूपचन्द : (**उसी प्रकार**) आपसे मिलने का वास्ते हम शेठ कूँ पूछा, पण उनकूँ इस वखत वीलकुल टाइम नई।

अधेड़ : मुनीम जी, मुनीम जी !

रूपचन्द : (**लिखना रोककर सिर उठा**) देखो, शेठ, आप सरखा चन्दा माँगने वाला का रोज वरात आता हे वरात ! समजा ? इस तरा सव कूँ चन्दा दिया जाय तो भुगतान में देने कूँ रुप्या नई वचे। समजा ?

युवक : क्या केते हो, मुनीम जी। इस लड़ाई मे कलकत्ता ने रुप्या। कमाया हे, कलकत्ता ने। मंवई से मिलियन्स कलकत्ता आया आपका शेठ ने कीतना कमाया हे ? उनके लिये फाइव टैन थाउजन्ड क्या है ?

रूपचन्द : (**फिर से उसी तरह लिखते हुए**) कलकत्ता ने रुप्या कमाया हे इसलिये मंवई वाला कलकत्ता वाला पर वलता हे, क्यूँ ?

वृद्ध : नई, नई।

रूपचन्द : (लिखना रोककर सिर उठा ज़ोर से) कलकत्ता वाला में अक्कल होती, समजा, अक्कल होती, ईसलिए कमाया। कलकत्ता वाला में वल होता, समजा, बल होता, ईसलिए मंबई से कलकत्ता कूँ रुप्या आया हे। मंबई वाला ने कलकत्ता वाला पर कोई भला कीधा है।

वृद्ध : नई, नई।

[बायीं तरफ़ के कमरे मे, बायीं तरफ़ की दीवाल का दरवाज़ा खोलकर दानमल का प्रवेश। दानमल की अवस्था करीब ३० वर्ष की है। वह गौर वर्ण का सुन्दर युवक है। मुख पर अत्यधिक प्रसन्नता और प्राफुल्य दृष्टिगोचर होता है। क़द में वह ऊँचा है। शरीर न बहुत दुबला है, न बहुत मोटा। छोटी-छोटी मूँछे हैं। खादी का कुरता और धोती पहने है। सिर पर गान्धी टोपी है।]

रूपचन्द : (फिर से लिखते हुए) सुनो, शेठ, आप फोकट अपना टाइम गमाते हो, और मेरा वी। आ वखत आपकूँ चन्दा नई मिल सकता।

दानमल : (बायीं ओर के कमरे से ज़रा ज़ोर से) कौन है, रूपचन्द ?

रूपचन्द : (अपने कमरे में से ही कुछ ज़ोर से) यों ही कुछ फालतू लोग बंबई से चन्दा माँगने आ गये हैं।

[दानमल दोनों कमरों के बीच का दरवाज़ा खोल रूपचन्द के कमरे मे आता है। उसे देखकर रूपचन्द खड़ा हो अपनी कुर्सी से हटता है। तीनों गुजराती भी खड़े हो जाते हैं।

दानमल रूपचन्द की कुरसी पर बैठता है। तीनों गुजराती दानमल का अभिवादन कर अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठते हैं। दानमल नम्रता-पूर्वक अभिवादन का उत्तर देता है। रूपचन्द सामने की चौथी कुर्सी पर बैठ जाता है।]

दानमल : (गुजरातियों से) आप लोग बंबई से आये हैं ?

वृद्ध : जी, शेठ, मंबई की ह्यूमैनटेरियन लीग ने हमारा डेपुटेशन आपका पास भेजा है।

दानमल : इतनी दूर से पधारने का आपने कष्ट उठाया ?

वृद्ध : कष्ट की तो कोई वात ई नई, शेठ।

दानमल : कब आप लोगों का आना हुआ ?

वृद्ध : चार दिवस हो गया, शेठ।

दानमल : चार दिन !

वृद्ध : जी, शेठ।

दानमल : यहाँ और किसी ने कुछ दिया ?

वृद्ध : एक आदमी से हजार रुप्या मिला, शेठ, बाकी सब केता हे आप कूं मिले। आपके देने पीछे बाकी लोग देगा।

दानमल : अच्छा, मेरे लिये आपका काम रुका है ?

वृद्ध : जी, शेठ।

दानमल : मुझसे आप कितना चाहते हैं ?

वृद्ध : (नम्रता से मुस्कराकर) हम लोग तो वोत उम्मेद से आया हे, शेठ, आपका जितना रजा हो।

दानमल : फिर भी, अपनी इच्छा तो बताइए।

[वृद्ध अपने साथियों की ओर देखता है।]

अधेड़ : कम से कम दस हज़ार तो दो, शेठ !

दानमल : (मुस्कराकर) कम से कम दस हज़ार !

युवक : (मुस्कराकर) जी, शेठ।

दानमल : (रूपचन्द से) मुनीम जी, इनको ग्यारह हज़ार एक सौ ग्यारह का चैक लिख दीजिए।

वृद्ध : (प्रसन्न होकर) धन्यवाद शेठ, धन्यवाद।

अधेड़ : (प्रसन्नता से) बोत बोत, धन्यवाद।

युवक : (प्रसन्नता से) मैनी मैनी थैंक्स।

दानमल : (खड़े होते हुए) और कोई आज्ञा ?

[सब लोग खड़े हो जाते है।]

वृद्ध : आपने सब कुछ कर दिया, शेठ।

[दानमल अपने कमरे मे जाकर अपनी आफ़िस चेअर पर बैठता है। रूपचन्द अपने कमरे में अपनी कुर्सी पर बैठता है। तीनों गुजराती अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठ जाते हैं।]

रूपचन्द : (रुखाई से) आप लोग विज़िटर्स रूम में ठेरिए। थोड़ा देर मे चेक आप कूँ पोंच जायगा।

वृद्ध : बोत अच्छा।

[तीनों खड़े होते है और अभिवादन कर दाहिनी तरफ़ के दरवाज़े से बाहर जाते है। इस बार रूपचन्द इनके अभिवादन का उत्तर देता है। रूपचन्द चैक बुक में एक चैक और लिखकर दानमल के कमरे में जाता है और दानमल के सामने की एक कुर्सी पर बैठता है।]

दानमल : क्या भाव, बन्द हुआ, पाट ?

रूपचन्द : साढ़े बानवे।

दानमल : और हैसियन ?

रूपचन्द : पौने अठारह।

दानमल : सवेरे कुछ सौदा किया ?

रूपचन्द : हाँ, दस हजार गाँठ पाट की ली और पाँच लाख हैसियन।

दानमल : क्यों, कोई खबर मिली क्या ?

रूपचन्द : पक्की खबर।

दानमल : क्या खबर मिली ?

रूपचन्द : नीचे के भाव इस सप्ताह में अवश्य बँध जायँगे।

दानमल : यह खबर तो बहुत दिन से उड़ रही है।

रूपचन्द : आज तो मैं खुद उनसे मिलकर आया हूँ।

दानमल : खुद से ?

रूपचन्द : हाँ, हाँ, खुद से।

दानमल : क्या भाव बँधेंगे ?

रूपचन्द : पट का पच्चानवे और हैसियन का अठारह।

दानमल : पक्का ?

रूपचन्द : बिलकुल। आज उस पार्टी ने बहुत गाँठें पोते की हैं, हैसियन भी बहुत लिया है।

दानमल : अब अपने यहाँ कितनी गाँठे पाट और कितना हैसियन पोते हैं ?

रूपचन्द : (विचारते हुए) कोई पचास हज़ार गाँठ पाट और तीन करोड़ हैसियन होगा। लड़ाई में तो तेज़ी का ही

रुजगार कहना चाहिए। लड़ाई—मतलब तेज़ी। पिछली लड़ाई मे एकदम से इतनी तेज़ी नहीं आयी थी जितनी इस लड़ाई में आयी। आज जिससे मैं मिलने गया था, वह कहता था कि पाट का भाव डेढ़ सौ हो जायगा और हैसियन का चालीस।

दानमल : हाँ, सवा सौ पाट और पच्चीस हैसियन तो हो ही गया था। वात यह है कि जूट की हिन्दुस्थान को मनापली है। हवाई लड़ाई में वार बैग के बिना काम नहीं चल सकता। जब तक लड़ाई चलेगी तब तक सरकार को वार वैग लेना ही पड़ेगा। बीच-बीच में रीएक्शन बहुत से आयेगे, पर अन्त मे तेज़ी ही रहेगी।

[कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

दानमल : चन्दे का चैक लिख लिया ?

रूपचन्द : हाँ, पर आपने चन्दा वहुत दिया। जो भी माँगने आता है हरेक को आप यों ही देते हे।

दानमल : भगवान् ने धन और किस लिए दिया है, रूपचन्द ?

रूपचन्द : यह तो ठीक है, पर देखकर चलना चाहिए।

दानमल : जो देखकर चलता है उसके पास यह धन क्या सदा रहता है ? रूपचन्द, मै तो लड़ाई के कारण इस धन्धे में पड़ा। दो महीने में ही इतना कमाया कि समझ में नहीं आता कि कहाँ लगाऊँ; और इतनी कमाई क्यों हो रही है जानते हो ?

रूपचन्द : क्यों ?

दानमल : मैं स्वयं के लिए नहीं कमाना चाहता, मैं चाहता हूँ कि इस कमाई से देश की सेवा करूँ। आपस वालों की, गरीबों की भलाई करूँ। इसलिए जो संस्था भी माँगती है, जी खोलकर उसी को देता हूँ। आपस वालों की भलाई करने की भी सोच रहा हूँ। रोज गरीवों को भी जो हो सकता है, वाँटता हूँ। (**कुछ रुककर**) रूपचन्द, मैं साध्य को प्रधान चीज मानता हूँ, साधन को गौण वस्तु। मेरा साध्य देश-सेवा और गरीबों का उपकार है। लड़ाई के कारण मैंने फाटके को साधन बनाया है। और फिर, रूपचन्द, आज कलकत्ता और बंबई मे जो बड़े-बड़े दानी है, दानवीर कहे जाते है, सब फाटके ही से तो बने है।

रूपचन्द : सब फाटके से; और गयी लड़ाई में ही अधिकांश बने।

दानमल : रूपचन्द, आज तो तुम्हें तीन चैक और लिखने पड़ेंगे।

रूपचन्द : किसके लिए ?

दानमल : लखमीदास, कमलाचरण और तुम्हारे लिए।

रूपचन्द : मेरे लिए भी ?

दानमल : हाँ तुम्हारे लिए भी। तुम्हारे लिए दस हज़ार का। एक नयी मोटर खरीदो। लखमीदास और कमलाचरण मेरे स्कूल और कॉलेज के सहपाठी हैं। मैं दो महीने मे इतना वड़ा आदमी हो गया पर वे विचारे जैसे थे वैसे ही हैं। मैंने लखमीदास को एक वाड़ी देने कहा था और कमलाचरण को एक वगीचा।

रूपचन्द : सेठ जी !

दानमल : बोलो मत। मित्रों के ग़रीब रहते मुझे धन से आनन्द ही नहीं आता। लखमीदास ने पचपन हजार में बाड़ी का सौदा किया है और कमलाचरण ने पैंतालीस हज़ार में बगीचे का।

रूपचन्द : पर इतने रुपये अभी बैंक में नहीं है।

दानमल : दोनों जायदादों के सौदे में पाँच-पाँच हज़ार बयाने के देना है। बयाने के चैक आज के दे दो और बाकी के रुपये के पोस्टडेटेड।

रूपचन्द : पर आज और भी कुछ चैक देने है।

दानमल : किनको ?

रूपचन्द : ताँबे की खानों का सौदा हो गया। राइस मिल का सौदा भी पट गया। और चीतपुर रोड का मकान भी ले लिया।

दानमल : किसी तरह से प्रबन्ध करो। (**मुस्कराकर**) मै जानता हूँ, तुम सब कर लोगे।

रूपचन्द : (**विचार करते हुए**) करना ही पड़ेगा।

दानमल : (**प्रसन्नता से**) हिअर स्पीक्स रूपचन्द एजेन्ट आफ़ दानमल कम्पनी !

[**रूपचन्द खड़े होकर टेबिल पर चैक बुक रख चार चैक और लिखता है। और चैक बुक दानमल के सामने दस्तख़त के लिये रखता है।**]

दानमल : (**एक चैक पर दस्तख़त कर**) यह ताँबे की खान का ?

रूपचन्द : जी। पन्द्रह दिनों का पोस्टडेटेड। इतने दिनों में कैलाशचन्द्र खान ट्रान्सफ़र करने की सारी व्यवस्था कर लेगा।

दानमल : (**दूसरे चैक पर दस्तखत कर**) यह राइस मिल का ?

रूपचन्द : यह भी पन्द्रह दिनों का पोस्टडेटेड है। इतने दिनों में लिखा-पढ़ी इत्यादि सब हो जायगी।

दानमल : (**तीसरे चैक पर दस्तख़त कर**) यह चीतपुर रोड के मकान का ?

रूपचन्द : जी, मकान के बयाने का, दूसरा सत्तर हजार का चैक और है।

दानमल : (**चौथे चैक पर दस्तख़त कर**) यह ?

रूपचन्द : जी, यह भी पन्द्रह दिनों का पोस्टडेटेड है। इस म्याद के भीतर नक़्शा वग़ैरह बनकर बयनामा लिख जायगा। (**कुछ रुककर**) पोस्टडेटेड चैक इसलिए दिये जाते हैं कि वेचने वाले मानते नहीं और चीजें सब आधे दामों से भी कम मूल्य में मिली हैं। ईश्वर की दया से पन्द्रह दिनों में अपने यहाँ वहुत रुपया आ जायगा।

दानमल : ठीक, (**पाँचवें चैक पर दस्तख़त करते हुए**) यह चन्दे का ?

रूपचन्द : जी।

दानमल : (चार चैकों पर और दस्तख़त करके) ये लखमीदास और कमलाचरण के !

रूपचन्द : जी।

दानमल : और तुम्हारा ?

रूपचन्द : उसकी अभी आवश्यकता नहीं। (चैक बुक उठाता है।)

दानमल : लाओ, चैक बुक मुझे दो।

[रूपचन्द चैक बुक नहीं देता। दानमल मुस्कराते हुए खड़ा होता है और चैक बुक रूपचन्द के हाथ से छीन फिर अपनी कुर्सी पर बैठ दस हजार का चैक रूपचन्द के नाम लिखता है। रूपचन्द के कमरे मे टेलीफ़ोन की घंटी बजती है।]

रूपचन्द : (दानमल की टेबिल की घड़ी देखते हुए) ग्यारह बजे। बाजार खुल गया। (जल्दी से अपने कमरे में जाता है।)

रूपचन्द : (अपनी कुर्सी पर बैठकर टेलीफ़ोन का रिसीवर दाहने हाथ में उठा दाहने कान में लगाकर) पाट खुल गयो ?……के भाव खुल्यो ?……के……इक्कानवे। (दूसरे फ़ोन की घंटी बजती है। उसका रिसीवर बायें हाथ से उठाकर बायें कान में लगाकर) हैसियन खुल गयो ? ……के भाव……सत्तरा चौदा आना।…… (तीसरे फ़ोन की घंटी बजती है। बायें कान मे लगे हुए रिसीवर को गर्दन टेढ़ी कर चेहरे और कन्धे के बीच में इस तरह रख

लेता है जिस से रिसीवर गिरता नहीं तथा रिसीवर में सुनने की जगह कान के नजदीक और बोलने की जगह मुँह के नजदीक आ जाती है पर हाथ खाली हो जाता है। उस हाथ में तीसरा रिसीवर उठाकर बाँयें कान में लगा) कौन ?······कौन ?······रुक्मणी रमण जी, हजार गाँठ वेच दूँ।······अच्छा। भाव इक्यानवे है।···इक्यानवे में ही वेच दूँ······वजार भाव वेच दूँ।...(दाहने कान में लगे हुए रिसीवर मे) वेच ···· रुक्मणी रमण जी री हजार गाँठाँ वेच······कसने वेच। (बाँयें कान मे लगे हुए रिसीवर मे) कह दिया वेचने को। (दाहने कान में लगे हुए रिसीवर में) वेची ?······साढ़े नव्वे में ? इतरी नीची ! (बाँयें कान मे लगे हुए रिसीवर में) साढ़े नव्वे में हजार गाँठ वेची। (उस रिसीवर को रख देता है। गर्दन में दवे हुए रिसीवर को बाँये हाथ से बाँयें कान में लगाकर) के भाव······के भाव······साढ़े सत्तरा। कुण वेचू चले है ?······खुदरा······। खुदरा······(उस रिसीवर को रख देता है। दाहने कान में लगे हुए रिसीवर में) के भाव······नव्वे। के वात है ? कुण वेचे है ? पंजाव पंचानन ? संगमरमर सदन ? संगमूसा महल ?······के भाव ?······साढे नुवासी। (रिसीवर रख देता है।)

[कुछ देर निस्तब्धता रहती है। फिर घंटी बजती है।]

रूपचन्द : (दाहने हाथ से रिसीवर उठाकर दाहने कान में लगाकर) के भाव······ के भाव······ (आश्चर्य से)

अठासी······के हूयो ? वार वैग कैंसिल हो गयो। (दूसरे फ़ोन की घंटी बजती है। उसका रिसीवर बाँयें हाथ से उठाकर बाँयें कान में लगाते हुए) के भाव······ के भाव ······(आश्चर्य से) साढ़ी सोला······

[दानमल घबड़ाकर अपने कमरे से रूपचन्द के कमरे मे आता है।]

रूपचन्द : के हुयो ? वार वैग कैंसिल हो गयो ?······कैसे हो सके है ?······हुयो है ?······कुण वेचू······कुण वेचू ? ······सगला वेचू ? (दाहने कान के रिसीवर में) के भाव ?······छियासी !······कोई लेऊई नई चाले ?······ भूकंप हो गयो।······हुयो के ?······वार वैग कैंसिल हो गयो ?

दानमल : (एकदम घबड़ाकर) क्या हुआ, रूपचन्द ?

रूपचन्द : वार बैग कैंसिल हो गया ! सब बाजार वेचू ! कोई लेऊ नही।

दानमल : (बहुत ज्यादा घबराहट से) मै पाट के वाड़े में जाता हूँ। (शीघ्रता से दाहनी ओर के दरवाजे से प्रस्थान।)

[तीसरे फ़ोन की घंटी बजती है। रूपचन्द फिर तीनों रिसीवर उसी तरह ले लेता है जैसे पहले लिये थे।]

रूपचन्द : कौन······कौन······माधोप्रसाद जी······पाँच हज़ार गाँठ वेचूं ?······(दाहने कान वाले रिसीवर में) वेच, पाँच हजार गाँठाँ माधोपरसाद री······कस ने वेच।······ (चौथे फ़ोन की घंटी बजती है। तीसरे फ़ोन का रिसीवर

रखकर चौथे फ़ोन का रिसीवर उठा) कौन······कौन ······अंबाप्रसाद जी, बीस लाख हैसियन वेचूँ ?······ **(बाँयें तरफ से रिसीवर में)** वेच अंबापरसाद री वीस लाख हैसियन······**(पाँचवे फ़ोन की घंटी बजती है। चौथे फ़ोन का रिसीवर रखकर पाँचवें फ़ोन का रिसीवर उठाकर)** कौन······कौन······ मोतीलाल जी ······ दो हजार गाँठ बेचूँ ?······**(दाहनी तरफ़ के रिसीवर में)** वेच, मोतीलाल री दो हज़ार गाँठाँ ?······**(दाहने रिसीवर मे)**······के ?······के?······कोई लेऊ नई······**(बाँयें रिसीवर मे)** के······कोई लेऊ नई ?······भाव······के भाव······साढे पन्द्रा······**(दाहने रिसीवर मे)** के भाव ? ······पोनी चोरासी······

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान : पाट का बाड़ा

समय : दोपहर

[सारा स्थान गन्दा है। बड़ा-सा हॉल है। पीछे और दाहनी तरफ़ क़तार मे छोटी-छोटी कोठरियाँ दिखती है जिनमें से कुछ में छोटे-छोटे तख़्त बिछे है और कुछ में भद्दी-सी कुर्सियाँ और टेबिलें रखी है। तख़्तों पर मैली-सी बिछावन है। कई कोठरियों में तख़्तों और टेबिलों पर टेलीफ़ोन भी रखे है। कई कमरों के तख़्तों और कुर्सियों पर कुछ आदमी बैठे है। कोई-कोई फ़ोन का रिसीवर उठाकर कान में लगाये है। कोई सुन रहा है। कोई बोल रहा है। इन दोनों क़तारों के सामने चौड़ा सा रास्ता छोड़कर लकड़ी का कटहरा लगा है। कटहरे के भीतर हॉल में काफ़ी जगह है। कटहरे के भीतर बाँयी तरफ़ कई बेंचें है। इन बेंचों पर बहुत से आदमी खड़े हुए हैं और बेंचों के नीचे कटहरे के भीतर की ख़ाली ज़मीन पर भी बहुत भीड़ है। कोठरियों मे बैठे हुए और हॉल में खड़े हुए आदमियों में ९९ फीसदी मारवाड़ी हैं। कोई मारवाड़ी पगड़ी लगाये है, कोई टोपीऔर कोई नंगे सिर भी है। शरीर पर अधिकांश व्यक्ति

कुरता और धोती पहने हैं, कोई-कोई कोट भी पहने हैं और कोई-कोई सिर्फ़ बनयान ही। किसी व्यक्ति की पगडी के पेच खुल गये हैं। किसी की टोपी अस्त व्यस्त है। जो नंगे सिर हैं उनमे से कई के बाल फैले हुए हैं। कोठरियों में बैठने वाले व्यक्तियों में कई हॉल मे आते है और हॉल में खडे हुए लोगों में से कई कोठरियों मे जाते हैं। यह आवागमन बराबर जारी है। बाड़े के भीतर का एक भी मनुष्य पूरे होश मे नहीं जान पड़ता। सभी नशेलचियों के सदृश दीख पड़ते हैं। किसी भी व्यक्ति मे धैर्य का लवलेश नहीं है। सबके हर व्यवहार में चाहे वह बोलना हो, चिल्लाना हो, या आना-जाना हो, अत्यधिक शीघ्रता और महान उद्विग्नता दृष्टिगोचर होती है। सारे बाड़े मे जोर का हो-हल्ला मचा हुआ है। बोलते और चिल्लाते सब हैं, पर सुनने वाले बहुत कम दिखते है। बेंचों पर खड़े हुए व्यक्ति, जो पाट के बाड़े मे 'रंगबाज' के विशेष नाम से पुकारे जाते है, विचित्र जीव दीख पड़ते हैं। उनकी बोली, उनकी चिल्लाहट, उनकी हलचल, उनके सारे व्यवहार से वे मनुष्य तो नहीं कहे जा सकते। उनमें जो पगड़ी बाँधे है उनमें से अधिकांश की पगडियाँ अत्यधिक मैली है तथा खुल-सी गई है और उनके पेच उनके कन्धों पर इधर-उधर फैले हुए है। उनमें जो टोपी लगाये हैं, उनमे से अधिकांश की टोपियाँ दाँये, बाँयें, आगे, पीछे इस तरह सरक गयी है कि उनके गिरने में थोड़ी ही कसर है। जो नंगे सिर है उनमें से अधिकांश के बाल बेतरह फैले हैं। कई के बालों ने तो फैलकर उनकी आँखें ही ढक ली हैं।

चिल्लाने के सिवा देखने की शायद इन्हें जरूरत ही नहीं है। शरीर पर कपड़े सभी के मैले हैं और पूरे बटन तो किसी के कोट या कुरते में नहीं है। किसी-किसी के कोट में तो एक ही बटन बचा है, जिससे किसी तरह कोट शरीर पर अटका सा है। कुरतों में तो किसी-किसी के एक भी बटन नहीं रहा है। रंगबाज़ बेंचों पर लंगूरों के सदृश उछल-उछल कर उन्हीं के सदृश किटकिटाकर चिल्ला रहे हैं। उनके दाहने हाथ हर उछाल में सबसे अधिक उछलते हैं और अँगूठे को छोड़ चारों उँगलियों में से कभी चार, कभी तीन, कभी दो और कभी एक के द्वारा पाट के भाव का विचित्र संकेत होता है। रंग-बाज़ पसीने से लतपत है और दाहने हाथ के फँसे रहने के कारण बाँये हाथ में बिना रूमाल के ही बीच-बीच में ही अपना पसीना इस बुरी तरह पोंछते है कि आसपास खड़े व्यक्तियों के मुख और आँखों पर उसके छींटे पड़े बिना नहीं रहते।]

एक रंगबाज़ : (दाहने हाथ की चारों उँगलियों को सामने अपनी तरफ हिलाते हुए चिल्लाकर) तिरासी, तिरासी, तिरासी, तिरासी, तिरासी !

दूसरा रंगबाज़ : (दाहने हाथ की तीनों उँगलियों को स्वयं अपनी तरफ़ हिलाते हुए चिल्लाकर) पोनी तिरासी, पोनी पोनी तिरासी, पोनी तिरासी, पोनी तिरासी !

नीचे खड़ा हुआ एक व्यक्ति : बेची। ढाई सै। बेची ढाई सै।

दूसरा व्यक्ति : पाँच सै बेची। पाँच सै बेची।

तीसरा व्यक्ति : ली ढाई सै, ली पाँच सै, पोनी तिरासी मे।

तीसरा
चौथा
पाँचवाँ
छठवाँ
} (एक साथ चिल्लाकर) हज़ार वेची। दो हज़ार वेची। साढ़ी व्यासी में।

सातवाँ
आठवाँ
} (एक साथ) ली तीन हज़ार साढ़ी व्यासी में।

एक रंगबाज़
दूसरा रंगबाज़
तीसरा रंगबाज़
चौथा रंगबाज़
} (एक साथ दाहने हाथ की दो उँगलियों को सामने की तरफ़ हिलाते हुए चिल्लाकर) साढ़ी व्यासी, साढ़ी व्यासी, साढ़ी व्यासी, साढ़ी व्यासी, साढी व्यासी।

पाँचवाँ रंगबाज़ : (दाहिने हाथ की एक उँगली को सामने की तरफ़ हिलाते हुए चिल्लाकर) सवा व्यासी, सवा व्यासी, सवा व्यासी, सवा व्यासी, सवा व्यासी।

नीचे खड़ा हुआ एक व्यक्ति : (चिल्लाकर) वेची व्यासी में हज़ार गाँठाँ। (और चिल्लाकर) वेची इक्यासी में दो हज़ा ः गाँठाँ। (और चिल्लाकर) वेची अस्सी में चार हज़ार गाँठाँ।

दूसरा व्यक्ति : ली, ली, ली, वाजार भाव छै हज़ार गाँठाँ।

अगणित आदमी : (एक साथ चिल्लाकर) अस्सी का वेचू ! अस्सी का वेचू ! अस्सी का वेचू ! अस्सी का वेचू ! अस्सी का वेचू !

[दानमल का शीघ्रता से प्रवेश। वह दाहिनी तरफ़ की कोठरियों की क़तार में से सबसे पहली कोठरी में जाता है।

अन्य कोठरियों की अपेक्षा यह कोठरी अधिक साफ़-सुथरी है। इसकी टेबिल कुर्सियाँ आदि भी दूसरी कोठरियों से अच्छी हैं। एक कुर्सी पर एक अधेड़ अवस्था का काला-सा व्यक्ति, जो टोपी लगाये और कुरता तथा धोती पहने है, बैठा हुआ फ़ोन से बात कर रहा है। दानमल को देखकर वह खड़ा हो जाता है और फ़ोन में "अस्सी का बेचू, अस्सी का बेचू !" कहकर फ़ोन का रिसीवर रख देता है। दानमल और वह दोनों बैठ जाते हैं और दोनों में बातचीत होना शुरू होती है बाड़े में वैसा ही हल्ला रहता है, परन्तु दानमल की कोठरी बहुत नज़दीक होने के कारण इस हल्ले में भी इन लोगों की बातचीत सुन पड़ती है।]

दानमल : (घबड़ाहट से) रामलाल यह क्या हुआ ?

रामलाल : वार वैग जो अप्रेल, मई, जून मे डिलेवरी होने वाला था, उसकी डिलेवरी सितंबर तक बढ़ गयी, सरकार !

दानमल : इतनी सी बात पर भूकंप ! वार वैग कैंसिल तो नहीं हुआ ?

रामलाल : कैंसिल तो नहीं हुआ, सरकार, पर लोग तो नये वार वैग के आर्डर की उम्मीद में थे और इसी का डिलेवरी लेना बढ़ गया।

दानमल : फिर भी, रामलाल, इतनी सी बात पर ऐसा कुलैप्स तो नहीं होना चाहिए था ?

रामलाल : यह तो फाटका है, सरकार। साइकलॉजी का बाजार है।

दानमल : और घटेगा ?

रामलाल : फाटका बिगड़ने के बाद भाव का सवाल ही नहीं रहता। तेज़ी में कितना भी बढ़ सकता है, मद्दी में कितना भी घट...।

दानमल : (**और भी घबड़ाकर**) फिर अपना माल ?

रामलाल : मेरी समझ में तो सब बेच देना चाहिए। नुक़सान में सौदा रखना ठीक नहीं, काट देना चाहिए।

ज़ोर की आवाज़ें : इठत्तर का बेचू ! इठत्तर का बेचू ! इठत्तर का बेचू ! इठत्तर का बेचू !

दानमल : (**एकदम घबड़ाकर**) रामलाल !

रामलाल : (**ज़ोर से**) बेचिए, सरकार ! बेचिए।

दानमल : इस भाव मे ?

रामलाल : (**घबड़ाकर जल्दी से**) फाटका मे भाव नहीं देखा जाता, सरकार !

ज़ोर की आवाज़े : छियत्तर का बेचू। छियत्तर का बेचू। छियत्तर का बेचू।

दानमल : (**पागलों के सदृश**) रामलाल ! रामलाल !

रामलाल : बेचिए, सरकार, बेचिए।

दानमल : (**उसी प्रकार के स्वर मे**) कर ! जो तुझे दिखे सो कर।

[**रामलाल दौड़ते हुए कटहरे के भीतर पहुँचता है। दानमल कुर्सी पर लेट सा जाता है।**]

एक रंगबाज़ : (**दाहने हाथ की चारों उँगली सामने की तरफ हिलाते हुए**) छियत्तर, छियत्तर, छियत्तर !

रामलाल : बेची छियत्तर में पाँच हज़ार।

एक व्यक्ति : ली पाँच हजार छियत्तर में।

दूसरा रंगबाज
तीसरा रंगबाज
चौथा रंगबाज
पाँचवाँ रंगबाज
: (दाहने हाथ की एक साथ चारों उँगली सामने की तरफ़ हिलाते हुए) पिचत्तर, पिचत्तर, पिचत्तर, पिचत्तर, पिचत्तर !

रामलाल : बेची दस हज़ार गाँठ पिचत्तर में !

एक व्यक्ति : ली दस हज़ार पिचत्तर में !

बहुत से रंगबाज : (एक साथ दाहने हाथ की चारों उँगली सामने की तरफ़ हिलाते हुए) चोत्तर, चोत्तर, चोत्तर, चोत्तर, चोत्तर !

रामलाल : बेची दस हज़ार चोत्तर में !

बहुत से रंगबाज : (एक साथ दाहने हाथ की चारों उँगली सामने की तरफ हिलाते हुए) तेत्तर, तेत्तर ! बात्तर, बात्तर !

अगणित आदमी : (एक साथ ज़ोर से) बात्तर का बेचू ! बात्तर का बेचू !

कुछ आदमी : (एक साथ) दानमल बेचू ! दानमल बेचू !

[बड़ा कोलाहल होता है। कुछ समझ में नहीं आता।]

लघु यवनिका

उपसंहार

स्थान : कलकत्ते की फौजदारी कोर्ट

समय : दोपहर

[कोर्ट के कमरे की तीन तरफ़ की दीवालें दिखती हैं, जिन में कई दरवाजे और खिड़कियाँ है। पीछे की दीवाल पर बादशाह की एक बड़ी सी तस्वीर लगी है। तस्वीर के नीचे एक घड़ी है। पीछे की दीवाल से लगा हुआ एक ऊँचा प्लेटफ़ार्म है ; उस पर दरी और दरी पर क़ालीन। उस पर मजिस्ट्रेट की ऊँची कुर्सी है। कुर्सी के सामने राइटिंग टेबिल है, जिस पर लिखने-पढ़ने का सामान, स्टेशनरी और कई फ़ाइल रखे हैं। ऊँचे प्लेटफ़ार्म के नीचे एक और प्लेटफ़ार्म है, उस पर मेजें लगी हैं। मेजों के एक तरफ़ सिरिश्तेदार और दूसरी ओर अदालत के और अहलकारों की कुसियाँ है। कुसियों के सामने टेबिलें हैं और इन टेबिलों पर भी लिखने-पढ़ने का सामान, स्टेशनरी और कई फ़ाइल रखे हैं। सिरिश्तेदार के प्लेटफ़ार्म के सामने लकड़ी का कटहरा है। इस कटहरे के बाँयीं तरफ़ मुलज़िम के खड़े होने की जगह है। यह चारों ओर से लकड़ी के कटहरे से घिरी हुई है। इस कटहरे के सामने कुसियों की क़तारें और कुसियों के पीछे

फिर कटहरा है। कटहरे के पीछे बेंचों की कई क़तारें है। इन कुर्सियों और बेंचों के मुँह मजिस्ट्रेट की बैठक की ओर है। परदा खुलते समय कुछ चपरासियों को छोड़कर कमरे में और कोई नही है। ये चपरासी फ़ाइल इत्यादि ठीक कर रहे है। रूपचन्द, कैलाशचन्द, नीलरतन, मुमताजुद्दीन, लखमीदास और कमलाचरण का प्रवेश। लखमीदास और कमलाचरण दोनों की उम्र क़रीब ३० साल की है। लखमीदास साँवले और कमलाचरण गेहुँए रंग का है। दोनों साधारण उँचाई और शरीर के मनुष्य हैं। छोटी-छोटी मूँछें है। दोनों काली टोपी, कोट और धोती पहने हुए हैं। सब लोग आपस में बात करते हुए आ रहे हैं।]

रूपचन्द : बिलकुल नियत बिगाड़ ली, बिलकुल।

[सब लोग बेंचों पर बैठ जाते हैं।]

रूपचन्द : दानमल इस तरह नियत न बिगाड़ता तो मै आप लोगों को फौजदारी में नालिश करने की कभी सलाह न देता।

लखमीदास : दस-बारह लाख के लिए दानमल अपनी सात पीढ़ियों का नाम इस प्रकार डुबो देगा, यह मै सोच ही नहीं सकता था।

कमलाचरण : फिर जब यह रुपया आया था, उस समय कैसी जल्दी-जल्दी बैंक में रख लिया, जब गया तो उसी तरह निकालना भी था।

कैलाशचन्द्र : और यहाँ नहीं बचा था, तो देश से मँगाता।

नीलरतन : हाँ, हॅमने सुना इन दो मास में ऊशने वोत ठो रुपिया देश भेजा।

सुमताजुद्दीन : मैं ग़रीव तो वेमौत मर गया। रूपचन्द साहव के कहने से मैंने अपना मकान सत्तर हज़ार में रहन कर पेमेन्ट के लिए उसे रुपया दिया। उसका पोस्टडेटेड चैक ! कभी कोई ख्वाव में भी सोच सकता था कि दानमल कंपनी का चैक डिसआनर होगा।

लखमीदास : अरे, भाई, आपही का क्या, सवका यही हाल है। मैंने कानपुर में अपना मकान रहन कर उसे पैंतालीस हज़ार रुप्या भुगतान के लिए दिया था। मैने भी यही सोचा था कि उसका पोस्टडेटेड चैक न सिकरे यह असंभव वात है।

कमलाचरण : इसी पोस्टडेटेड चैक के भरोसे पर तो मैंने भी अपना वनारस का वग़ीचा रहन कर उसे चालीस हज़ार दिया था।

कैलाशचन्द्र : और, भाई, मैंने तो इस पोस्टडेटेड चैक के इत्मीनान पर एक लाख रुपये में अपनी पत्नी के ज़ेवर रहन रखे थे।

नीलरतन : (**रूमाल से अपनी आँखों के आँसू पोंछते हुए**) और हॅम ! हॅम तो मॅर गया हूँ, वीलकूल मॅर गॅया हूँ। मील, धान, चावल शॅव पर शाठ शहस्र टाका ऋन लेकर दानमॅल शेट को पोस्टडेटेड चैक पर दीया है।

रूपचन्द : ठीक, भाई, आप क्या सव मेरे भरोसे पर मरे हैं।

सबने दानमल की इज़्ज़त बचाने के लिए, ठीक टाइम पर उसका भुगतान हो जाय, इस उद्देश्य से, उसे एक सच्चा, ईमानदार, आदमी समझकर रुपया दिया। उसे तो मैं दो ही महीने से जानता हूँ पर उसका कुटुम्ब प्रसिद्ध कुटुंम्ब था। वह भी अच्छा आदमी दिखता था। क्यों लखमीदास जी, कमलाचरण जी, आप लोग तो उसे बहुत दिनों से जानते है ?

लखमीदास : (**बेपरवाही से**) बहुत थोड़ा। जोधपुर के स्कूल में कुछ दिन साथ रहा था।

कमलाचरण : और मेरा जयपुर के कॉलेज में।

रूपचन्द : यहाँ भी उसने आरंभ में अच्छा काम किया।

कैलाशचन्द्र : कमाया था, इसलिए।

लखमीदास : और क्या ?

कमलाचरण : इसमें क्या सन्देह है ?

रूपचन्द : भुगतान न करता तो न करता, दिवालिया हो जाता पर जिन ग़रीबों से उनकी जायदादें रहन कराकर क़र्ज़ लिया उन्हें तो पटा देता।

[**नीलरतन फूट-फूट कर रोने लगता है। मुमताजुद्दीन रूमाल से आँखें पोंछता है।**]

रूपचन्द : ओ ! यह आप लोग क्या करते हैं ! मुझे देखिए, मेरी तरफ़ देखिए। मुझे देखकर तो हिम्मत रखिए। आप लोगों का तो रुपया ही गया है। मेरी तो इज़्ज़त चली गयी। मैं बाज़ार में किसी को मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रहा। जिन्दगी में मैंने बड़ी-बड़ी जगह काम किया है, बड़े-बड़े

कन्सर्न्स को कन्ट्रोल किया है, पर मेरी साख कभी नहीं गयी। 'जाय लाख रहे साख', पर इस दानमल ने तो मेरी साख भी खाक में मिला दी। क्या करूँ? दो ही रास्ते थे—या तो आत्महत्या कर लेता, या आप लोगों की सहायता कर इस परोपकारी काम से कुछ शान्ति लाभ करता। आत्महत्या करना तो वुज़दिली होती, इसलिए इस परोपकार पर कमर कसी। (कुछ ठहरकर) और देखिए, मुझे विश्वास है कि वह फ़ौजदारी मे कभी जेल जाना स्वीकार न करेगा। इन सब पोस्टडेटेड चैक्स के पेमेन्ट के लिए वह देश से रुपया मँगायेगा, अवश्य······

[एक नवयुवक बैरिस्टर का प्रवेश। उसकी उम्र क़रीब ३० वर्ष की है। वह साँवले रंग का ऊँचा पूरा इकहरे शरीर का बंगाली है। अंग्रेजी लिबास में है।]

रूपचन्द: (उसे देखकर) ओ! अपने वैरिस्टर साहब आ गये।

[सब लोग उठकर उसके नजदीक जाते है और फिर सब आकर उसी बेंच पर बैठते है।]

बैरिस्टर: यू आर श्योर टु विन। यू आर श्योर टु विन।

[सिरिश्तेदार और अहलकारों का प्रवेश। सिरिश्तेदार की उम्र क़रीब ५० वर्ष की है। वह साँवले वर्ण का ठिगना और दुबला बंगाली मुसलमान है। खिचड़ी बाल और मूँछे-दाढ़ी हैं। काले रंग की शेरवानी और ढीला पाजामा पहने है। सिर पर तुर्की टोपी लगाये है।]

सिरिश्तेदार : **(रूपचन्द की तरफ़ आते हुए)** ओ ! आप लोग आ गये ?

[बैरिस्टर, रूपचन्द और उसके सब साथी खड़े हो जाते और सिरिश्तेदार को झुक-झुक कर सलामें करते हैं। सिरिश्तेदार सलामों का उत्तर देता है।]

रूपचन्द : आज पहले नम्बर पर किसका मुक़दमा है, सिरिश्तेदार साहब ?

[धीरे-धीरे कोर्ट रूम मे आदमी आने लगते हैं। और एक पुलिस सार्जेन्ट भी तमंचा लगाये कभी कमरे के अन्दर आता है और कभी बाहर जाता है।]

सिरिश्तेदार : आप ही लोगों का।

मुमताजुद्दीन : आज क्या-क्या होगा, सिरिश्तेदार साहब ?

सिरिश्तेदार : अब तो बहुत थोड़ा काम बाक़ी है। प्रासीक्यूशन की तरफ़ का स्टेटमेन्ट हो ही गया। **(रूपचन्द की ओर इशारा कर)** इनकी गवाही भी हो गयी। आज पहले एक्यूज़्ड का स्टेटमेन्ट होगा और उसने अगर अपने डिफ़ेन्स मे कुछ कहा तो फिर बहस के लिए पेशी मुक़र्रर होगी; क्यों बैरिस्टर साहब ?

बैरिस्टर : ऑफ़ कोर्स।

सिरिश्तेदार : लेकिन वह तो कुछ कह ही नहीं रहा है। उसने कोई कौन्सिल भी एन्गेज नहीं किया।

रूपचन्द : कहेगा वह क्या ? चैक्स पर उसके दस्तख़त है, इससे क्या वह इंकार कर सकता है ? फिर **(सबकी तरफ़**

इशारा कर) इन सब ने मेरे सामने उसे कैश रुपया दिया है।

सिरिश्तेदार : हाँ, यह तो आपने अपनी गवाही में कहा ही है।

रूपचन्द : मुझे तो यक़ीन है, सिरिश्तेदार साहव, कि वह फ़ौजदारी में कभी जेल जाना मंजूर न करेगा और इन सव चैक्स का पेमेन्ट अपने मुल्क से रुपया मँगाकर करेगा।

सिरिश्तेदार : पर पेमेन्ट करने से क्या होता है, जनाब, चैक्स के पेमेन्ट करने पर भी उसे जेल तो जाना ही पड़ेगा।

लखमीदास : यह क्यों ?

सिरिश्तेदार : जनाव, मुक़दमा है चीटिंग का; ताजीरात हिन्द की दफ़ा ४२० के मुताबिक़। उसने आप सबसे रुपया लेकर यह जानते हुए भी कि उसके चैक्स का पेमेन्ट न होगा, आप लोगों को धोखा देकर आपको झूठे पोस्टडेटेड चैक दिये हैं। क्यों बैरिस्टर साहव ?

बैरिस्टर : ऑफ़ कोर्स। ऑफ़ कोर्स।

[नेपथ्य में 'शान्ति-शान्ति' आवाज आती है। सिरिश्तेदार और अहलकार जल्दी से अपनी-अपनी कुर्सी के निकट जाकर खड़े हो जाते हैं। बैरिस्टर, रूपचन्द और उसके साथी अपनी बेंच के सामने अदब से खड़े हो जाते हैं। कोर्ट में अब बहुत से आदमी आ चुके हैं, इनमें कई बैरिस्टर और वकील भी हैं। सर्वसाधारण अन्य बेंचों के सामने तथा बैरिस्टर वकील लोग कुर्सियों के सामने खड़े हो जाते हैं। पुलिस सार्जेन्ट कमरे के अन्दर आकर रोब से खड़ा हो जाता है। मजिस्ट्रेट का प्रवेश

मजिस्ट्रेट की अवस्था क़रीब ४० वर्ष की है। वह गोरे रंग का ठिगना और मोटा बंगाली है। मूँछें नहीं है। सिर के बाल कुछ-कुछ सफ़ेद हो गये है। वह काले रंग का बाला बरदार अँगरखा, उस पर काला ही चोगा और पतलून पहने हुए है। सिर पर गोल बंगाली पगड़ी है। मजिस्ट्रेट अपनी कुर्सी पर बैठता है, सिरिश्तेदार और अहलकार भी अपनी-अपनी कुर्सियों पर। रूपचन्द और उसके साथी बेंचों पर बैठते है। रूपचन्द का बैरिस्टर आगे बढ़कर अन्य बैरिस्टरों और वकीलों के साथ की कुर्सियों पर बैठता है। बाक़ी के लोगों में कुछ तो बेंचों पर बैठते है और कुछ खड़े रहते है। कोर्ट में निस्तब्धता छा जाती है। सिरिश्तेदार एक फ़ाइल लेकर मजिस्ट्रेट के सामने रखता है।]

मजिस्ट्रेट : (फ़ाइल देखते हुए) दानमल मुलजिम को हाज़िर करो !

[चपरासी बाहर जाता है।]

नेपथ्य मे : (ज़ोर से) दानमल मुलजिम हाज़िर है ?

[मजिस्ट्रेट फ़ाइल देखता रहता है। कुछ ही देर में दो पुलिस कान्सटेबलों के साथ दानमल का प्रवेश। कान्सटेबलों की वर्दी बंगाल पुलिस के समान है। दानमल का सारा रूप एक दम बदल गया है। उसका सौन्दर्य, प्रसन्नता और प्रफुल्लता न जाने कहाँ चली गयी हैं। वह नंगे सिर है और रूखे बाल फैले हुए हैं। चेहरे पर हजामत बढ़ गयी है। खादी का कुर्ता और धोती काफ़ी मैले हो गये हैं। पैरों के जूतों में बहुत कीचड़ लगा हुआ

है। उसके एक हाथ में हथकड़ी है, जिसकी चेन एक कान्सटेबल के हाथ में है। दानमल आकर मुलज़िम के कटहरे में खड़ा हो अपने अत्यधिक उदास और उतरे हुए मुख को नीचे की तरफ़ झुका लेता है। दोनों कान्सटेबल उसके इधर-उधर कटहरे के बाहर खड़े हो जाते हैं। जनसमुदाय एक टक उसकी ओर देखने लगता है।

मजिस्ट्रेट : (दानमल की ओर देखकर) तुम जो कुछ केना चाता उसे इस आनरेबिल कोर्ट का सामने के सकता।

[दानमल कुछ देर उसी तरह सिर झुकाये खड़ा रहता है, कुछ नहीं कहता, धीरे-धीरे बोलना शुरू करता है।]

दानमल : (उसी प्रकार सिर झुकाये हुए मानो अपने आपसे कह रहा है) मुझ पर मुक़दमा चला है दफ़ा ४२० के अनुसार। (कुछ रुककर) अर्थात् मैंने चीटिंग किया है, धोखा दिया है, मैं चीट हूँ, मैं धोखेबाज़ हूँ। (फिर कुछ ठहर कर एकाएक सिर उठाकर बड़े ऊँचे स्वर में) मैंने धोखा दिया है! मैं धोखेबाज़ हूँ! किसे धोखा दिया? (सिर घुमाकर कैलाशचन्द्र इत्यादि की तरफ़ देखते हुए और ज़ोर से) कैलाशचन्द्र को? नीलरतन को? लखमीदास को? कमलाचरण को? (एकदम आवाज गिर जाती है जैसे थक गया हो) इसके गवाह हैं रूपचन्द जी! (रुककर लंबी साँस लेता है। लंबी साँस लेते-लेते ही उसका सिर फिर झुक जाता है। धीरे-धीरे) मैंने धोखा देने का यह रास्ता क्यों पकड़ा? लड़ाई के कारण? हाँ, लड़ाई के कारण।

पिछली लड़ाई में लोगों ने बहुत धन कमाया था। (**फिर एकाएक सिर उठाकर ज़ोर से**) इसी कलकत्ते में न जाने कितने बने थे। (**फिर कुछ रुककर एकाएक सिर झुकाकर**) सट्टा ? फाटका ? हाँ, सट्टा फाटका। कितने बने इस सट्टे फाटके में ? इस समय के सभी दानवीर तो। (**कुछ रुककर**) सट्टा, फाटका ? सट्टा, फाटका, याने जुआ। और ये सब जुआड़ी। पर······पर······(**एकाएक सिर उठाकर ज़ोर से**) सफल जुआड़ी! (**ज़ोर से हँसकर**) धनी जुआड़ी! (**कुछ रुककर**) कौन इन जुआड़ियों का मान नहीं करता ? कौन इन धनवानों की इज़्ज़त नहीं करता ? बड़े-बड़े धर्माचार्य, बड़े-बड़े समाज-सेवक, बड़े-बड़े राजनैतिक नेता······ अरे······सभी तो, सभी तो, इनके चारों ओर घूमते हैं। इनकी पद-वन्दना करते है। (**फिर एकाएक सिर झुक जाता है। कुछ रुककर धीरे-धीरे**) कोई धनवान बनना चाहता है स्वयं सुख भोगने, कोई धन कमाने की इच्छा करता है नाम बढ़ाने और कोई धन के संग्रह में प्रयत्नशील होता है दूसरों की सेवा करने। (**फिर कुछ रुककर**) पहला निकृष्ट, दूसरा मध्यम और तीसरा उत्तम उद्देश्य है। (**फिर कुछ रुककर**) मेरा उद्देश्य तीसरा था। शायद दूसरा भी अन्तःकरण में छिपा हो, पर पहला कदापि नहीं। साधन था जुआ। सफल होता तो····· तो······पहले सफलता मिली भी······तब······तब मेरी पद-वन्दना करने वाले भी काफी···काफ़ी से ज़्यादा लोग हो गये थे। मेरा मस्तिष्क

भी सफलता के नशे से भर गया था। पर नहीं······अन्त मे असफल हुआ। (**एकदम रुककर चेहरा एकदम नीचे झुका लेता है। कुछ देर बाद एकाएक सिर उठाकर जोर से**) इन जुआड़ी—धनवानों ने, इन जुआड़ी श्रीमानों के पूजक धर्माचारियों, समाज-सेवकों, राजनैतिक नेताओं ने मेरे मन में भी, (**रुककर एकदम धीरे से**) इस छोटे से हृदय में भी महत्त्वाकांक्षा को, महत्त्वाकांक्षा को उत्पन्न किया। 'महाजनो येनगतः स पन्था' के अनुसार मै भी उसी पथ का पथिक होने चला, जिस पर इतने बड़े-बड़े जन चले थे। (**कुछ रुककर**) पर······पर शायद साध्य से साधन को कम महत्त्व नहीं है। और सफलता ?······सफलता को तो सबसे अधिक। मैं बुरे साधन द्वारा भी यदि सफल हो जाता ?······पर ······पर······मै असफल······असफल हुआ······वह बुरे साधन का उपयोग कर।······(**एकदम ज़ोर से मजिस्ट्रेट की ओर देखकर**) मजिस्ट्रेट साहब, मजिस्ट्रेट साहब, आई प्लीड गिल्टी। मै दोष स्वीकार करता हूँ। मै गुनाह मंजूर करता हूँ। मैने चीटिंग किया है! मैंने धोखा दिया है! मै चीट हूँ! मैं धोखेबाज़ हूँ! (**कैलाशचन्द्र वग़ैरह की ओर देखकर**) मैने कैलाशचन्द्र से एक लाख रुपया लिया है। मैंने नीलरतन से साठ सहस्र टाका पाया है! मुमताजुद्दीन ने मुझे सत्तर हज़ार रुपया दिया है। लखमीदास का, मेरे स्कूल के सहपाठी लखमीदास का मुझ पर पैंतालीस हजार रुपया पावना है। कमला-

चरण, मेरे कालेज के साथी कमलाचरण ने भी मुझे चालीस हज़ार रुपये देने की कृपा की है। और (**मजिस्ट्रेट की तरफ़ देख**) और······मजिस्ट्रेट साहब, यह सब रुपया, जैसा मेरे मुनीम रूपचन्द ने अपनी गवाही में कहा, उनके सामने······(**थकावट के कारण एक दम धीरे-धीरे**) उनके सामने, मुझे कैश मिला है, भुगतान में देने के लिए। (**और धीरे**) इन सब को धोखा देने के लिए मैंने इन्हें, यह जानते हुए भी कि ये चैक न सिकरेंगे, झूठे पोस्टडेटेड चैक दिये हैं। (**एकदम ज़ोर से मजिस्ट्रेट की तरफ़ देखकर**) दीजिए, मजिस्ट्रेट साहब, दीजिए, मुझे ऐसी सख्त···ऐसी सख्त·· सजा दीजिए कि चाहे सारा समाज, धर्माचार्य, समाज-सेवक, और दरिद्रनारायन के झूठे, पर लक्ष्मीनारायण के सच्चे पूजक ये राजनैतिक नेता, रुपये का पूजन करें, श्रीमानों का चरण चुवन करें, पर मेरे मन में, मेरे छोटे-से हृदय में, इसकी प्राप्ति की अभिलाषा के अवशेष का अवशेष भी शेष न रहे। मजिस्ट्रेट साहब······मजिस्ट्रेट साह······

[**दानमल एकाएक कटहरे से गिर पड़ता है। कान्सटेबल दौड़कर दानमल को कटहरे से उठाते हैं। कोर्ट में कुछ हल्ला मचता है।**]

चपरासी : शान्ति ! शान्ति !

मजिस्ट्रेट : (**जोर से**) कोई डाक्टर ?

[**जनसमुदाय में से एक बंगाली युवक डाक्टर, जो अंग्रेज़ी वस्त्रों में है, दानमल की तरफ़ बढ़ता है। दानमल का शरीर**

दोनों कान्सटेबलों के हाथों में है। डाक्टर पहले उसकी नब्ज़ देखता है। फिर तेठासकोप से उसका हार्ट।]

डाक्टर : (ज़ोर से) ओ ! मूर्छा नेई ! हार्ट फ़ेल हो गिया।

[रूपचन्द और उसके साथी एक दूसरे की तरफ़ देखते हैं। कोर्ट में एकदम हल्ला मचता है।]

जनसमुदाय में का एक वृद्ध—रुपये की चोट थी।

दूसरा वृद्ध : रुपये की चोट ऐसी ही होती है।

एक युवक : (दोनों वृद्धों की तरफ़ घृणा से देखते हुए) बेव-कूफ़ !

[वह युवक शीघ्रता से दानमल की लाश के पास पहुँचता है। मजिस्ट्रेट का प्रस्थान। कान्सटेबल दानमल की लाश को धीरे-धीरे कोर्ट के बाहर लेजाने लगते हैं। भीड़ उसके पीछे-पीछे जाने लगती है।]

यवनिका

समाप्त

फाँसी

मुख्य पात्र, स्थान

पात्र

कवि

पूँजीपति

मज़दूर

स्थान

जेल का एक सैल

स्थान : सैल

समय : रात्रि का तीसरा पहर

[सैल के तीन तरफ़ की पत्थर की दीवालें दिखती हैं। बायीं ओर की दीवाल के ऊपर की तरफ़ एक वैन्टीलेटर है और दाहिनी तरफ़ की दीवाल में एक लोहे का दरवाज़ा। दरवाज़ा बन्द है। फ़र्श पर कब्रों के सदृश तीन लम्बे-लम्बे चौतरे हैं। इन पर जेल के बिछौने बिछे हैं। तीनों चौतरों पर कैदियों के कपड़े पहने हुए कवि, पूँजीपति और मज़दूर बैठे हुए हैं। कवि गौर वर्ण, पूँजीपति गेहुँए रंग और मज़दूर कुछ साँवले रंग का है। तीनों की अवस्था लगभग तीस वर्ष की है।]

कवि : हाँ, हाँ, पूँजीपति की और श्रमजीवी की, सृष्टि एक तत्त्व है।

पूँजीपति : एक ही तत्त्व है।

कवि : सर्वथा ! और वह कैसा है, जानते हैं ?

मज़दूर : कैसा ?

कवि : वह सत्य है, शिव है, सुन्दर है। अनेक रूप में परिणत होकर वह अपनी सुन्दरता बढ़ाता है। विश्व के दो महान् आलय जो हमें दिखते हैं—आकाश और समुद्र—आकाश में

सूर्य, चन्द्र, अगणित तारे फिर कभी-कभी उठने वाले बादल, उनके भिन्न-भिन्न रूप, अलग-अलग रंग; उनमें बिजली इन्द्रधनुष, कभी-कभी धूप में बरसती हुई फुहार और उसमें भी इन्द्रधनुष के से रंग। सागर में बड़ी-छोटी लहरें उसका फेन और चाँदनी में उसकी चमक। पृथ्वी पर नित्य उषा और सन्ध्या। परिवर्तन होती ऋतुएँ--वशेषकर वर्षा और वसन्त। उसमें पर्वत, वन, नदियाँ, निर्झर, तड़ाग। कभी लहलहाते हरे-हरे खेत, कभी नवपल्लवों तथा कुसुमों के गुच्छों से युक्त डोलते हुए वृक्ष। फिर जीव-सृष्टि--चौकड़ी भरते मृग, जुगनू और वीरबहूटी। गगन में नाना भाँति के गाते हुए विहग और पानी में भाँति-भाँति की तैरती हुई मछलियाँ, और इन सबसे श्रेष्ठ मनुष्य—उसके श्रेष्ठतम कलात्मक कर्म विशाल मूर्तियाँ, ललित चित्र, सुन्दर संगीत और सर्वश्रेष्ठ काव्य; और ये हमारे कार्य यदि किसी इष्ट को सामने रखकर किये जायँ।

मज़दूर : तब तो क्या पूछना है।

कवि : बशर्ते वह इष्ट सुन्दर हो। स्त्री के लिए पुरुष और पुरुष के लिए स्त्री ! मेरा वह इष्ट कितना सुन्दर था !

मज़दूर : बहुत सुन्दर था, कवि जी ?

कवि : ओह ! क्या कहूँ। अरे इस एक तत्त्व ने उस शरीर में अनेक रूप में परिवर्तित हो सारी सृष्टि के सौन्दर्य का उसे प्रतीक बना दिया था। उसमें क्या नहीं था ? आकाश की विशालता थी, समुद्र की तरगें थीं। तारों के स्थान पर

उसके चमकते हुए भूषण थे। बादलों के सदृश रंग बदलते हुए वह कपड़े पहनती थी। उदय और अस्त होते हुए सूर्य की ही नहीं चन्द्र की भी उसके मुख में आभा थी। जैसी ऋतु आती, वैसी वह हो जाती। वर्षा में वृक्ष पर झूलती हुई वह इन्द्र-धनुष-सी जान पड़ती और वसन्त में कुसुम क्यारियों में केलि करती हुई उन कुसुमों के सार के सदृश। चौकड़ी भरते मृगों और कलोल करती हुई मछलियों के समान उसके नेत्र थे। वीरबहूटी और जुगनू उसके ललाट पर लगी हुई ईंगुर की टिकली तथा उसके चारों ओर की केशर पर बुरकाये हुए रुपहरी बादल में दिख जाती थी। गाते हुए विहगों के सदृश उसकी बोली के भिन्न-भिन्न स्वर थे। मैंने उसकी मूर्तियाँ बनायी थीं, चित्र बनाये थे, उसी के गीत गाता था, उसी पर काव्य लिखता था।

पूँजीपति : ऐसी सुन्दर स्त्री के लिए किसी भी सहृदय कवि का यह करना स्वाभविक ही था।

कवि : सर्वथा, और इसके बाद एक बात और स्वाभाविक थी।

पूँजीपति : क्या ?

कवि : अन्त में एकीकरण का प्रयत्न। विप्रलंभ क्या सदा विप्रलंभ रह सकता है ? विप्रलंभ के बाद संयोग की इच्छा क्या अस्वाभाविक है ?

पूँजीपति : कदापि नहीं, कदापि नही।

कवि : वही हुआ। संयोग के नाना प्रयत्न किये पर......

मजदूर : पर इसमें सफलता नहीं मिली; क्यों ?

कवि : हाँ, नहीं मिली और जब सफलता नहीं मिली तब जो कुछ किया वह भी स्वाभाविक था।

पूँजीपति : क्या ?

कवि : बलात्कार ! मेरे लिए तो प्रलय का अवसर आ रहा था, प्रलय का। यौवन का प्रलय ही यथार्थ में जीवन का प्रलय है। प्रलय के समय समुद्र बलपूर्वक ही तो पृथ्वी को अपनी लहरों से दबोचता है। मैंने वही किया और क्या ? उसे मार तो डाला डाक्टरों ने, अस्पताल में, इस पर मुझे फाँसी ? (**लम्बी साँस लेकर**) क्या······क्या कहूँ ? कैसा ······कैसा यह कानून है ?

पूँजीपति : कवि जी, मुझे फाँसी हुई है पूंजी के कारण। पूंजी और फाँसी ! अरे जो विश्व की सारी हलचलों का साधन है, वह फाँसी का कारण ! जीवन से मरण !

कवि : हाँ हाँ, आश्चर्य, महान् आश्चर्य की बात है !

मजदूर : ऐसा ?

कवि : इसमें भी कोई सन्देह है ?

पूँजीपति : अजी पूंजी के बिना इस संसार में क्या हो सकता है ? संसार के सभी बड़े-बड़े आविष्कार और कलाओं का निर्माण पूंजी से हुआ है, होता है, और होगा। अपनी पूर्व-जन्म की संचित पूंजी से पूर्व-जन्म के पुण्यात्मा और तपस्वी इस जन्म में पूंजीपति होते है, और फिर भी वे कैसे कल्याण-कारी कार्य करते है ?

कवि : हाँ, हाँ ! अनेक विश्व-हित के एक नहीं अगणित कार्य।

पूँजीपति : अवश्य, कवि जी। शिक्षा के लिए दान देते हैं, जिससे नयी-नयी चीज़ों के निर्माणकर्त्ताओं का निर्माण होता है। फिर जहाँ ये निर्माणकर्त्ता निर्माण करते हैं, उन संस्थाओं को पूंजीपति ही तो स्थापित करते हैं। कला के उत्कर्ष के लिए भव्य भवन बनाते हैं, मूर्तियाँ बनवाते हैं, चित्र बनवाते हैं। संगीत और कवियों को प्रोत्साहन देते हैं।

कवि : अवश्य, अवश्य।

पूँजीपति : अरे सरकार भी अगर कोई अच्छा काम करती है, तो उसका श्रेय भी इन्हीं को तो है। यथार्थ में सरकार इन्हीं की तो प्रतिनिधि है। इनसे गाँवों की जमा न मिले, इनकी आमदनी पर इनकमटैक्स न प्राप्त हो, तो सरकार क्या कर सकती है ? फिर इनके मन्दिर, इनकी धर्मशालाएँ। (**कुछ रुककर**) इस पूंजी को सदा बढ़ाते रहना ही संसार का सबसे महान् धर्म तथा इसमें जो बाधाएँ आवें उनका निराकरण सबसे बड़ा कर्त्तव्य कर्म है।

मजदूर : ऐसा !

कवि : (**मजदूरों की ओर देखकर**) इसमें कोई सन्देह है ?

पूँजीपति : कवि जी, मेरे कारखाने में स्ट्राइक हुई। बोलिए, उस स्ट्राइक को कैसे चलता रहने दे सकता था ? मजदूरों को समझाया-बुझाया, सभी तो किया; पर जैसे-जैसे समझाया, उनका मिजाज बढ़ता ही गया; आखिर जब वे मार-काट पर उतारू हो गये तब मेरी पिस्तौल मारने के लिए नहीं, उन्हें भय दिखाने को चली, जिससे निर्माण के कार्य में

वाधा न पहुँचे। कुछ गोलियाँ चल गयीं। मज़दूरों को हथियारों के लाईसेन्स न मिलकर जो पूंजीपतियों को मिलते हैं, वह आखिर काहे के लिए? पूंजी के वढ़ाने के महान् धर्म और उसके मार्ग की बाधाओं के निराकरण के कर्त्तव्य कर्म में यदि इन शस्त्रों का उपयोग नहीं हो सकता तो ये निरर्थक है। कीड़ों-मकोड़ों के सदृश एक मज़दूर मर गया। (**मज़दूर की त्योरी चढ़ जाती है।**) अरे वह तो पुण्य था, मेरे जीवन का सबसे बड़ा पुण्य कार्य ! उस पर मुझे फाँसी ! वाह रे कानून ! मेरी और उसकी एक ही औकात ?

मज़दूर : पर, पूंजीपति जी, विना काम किये दुनियाँ में क्या हो सकता है? संसार के वड़े-वड़े आविष्कार और कलाओं का विकास यथार्थ में पूंजी का नहीं, मेहनत का फल है। पूर्व-जन्म थोथी कल्पना है, और पूर्व-जन्म के कर्मो से अच्छे और बुरे जन्म होते हैं, यह पूंजीवाद को कायम रखने के लिए जनता को एक झूठे सिद्धान्त का पढ़ाना तथा धोखा देना है।

पूंजीपति : धोखा ! इतने ज्ञानी और विचारशीलों का मत धोखा ?

मज़दूर : हाँ, हाँ, धोखा और वड़े से वड़ा धोखा! दुखियों के दुःख उनके पूर्व-जन्म के कर्मो के फल हैं, अतः उसके सुधार का यत्न फ़िज़ूल का काम है, यह सिद्ध करने को पूर्व-जन्म, और उस जन्म के कर्म के सिद्धान्त से सुन्दर अन्य कोई सिद्धान्त न निकाला जा सकता था। विश्व का सच्चा हित दान के धन से नही हो सकता। वह सरकारी अधिकार

से होता है। यह तब जब कि सरकार काम करने वालों की सरकार रहे और उत्पत्ति तथा उत्पन्न की हुई सम्पत्ति का बँटवारा काम करने वालों की प्रतिनिधि उस सरकार के हाथ मे हो। महान् आविष्कार और कलाएँ ही नहीं, संसार का सुख ही इस पर निर्भर है। एक मनुष्य सुखी और हज़ारों, लाखों, करोड़ों दुखी हों, यह सामाजिक संघटन तो अस्वाभाविक है। अस्वाभाविक चीज सदा थोड़े ही चल सकती है। जो पूंजीवाद अगणितों के दुःख को कायम रख, कुछ के सुख का निर्माण करता है, उसका नाश ही सबसे बड़ा धर्म और इस काम में जो बाधाएँ आवें उनका निराकरण ही सबसे बड़ा कर्म है।

पूँजीपति : हरि, हरि, हरि, शिव, शिव, शिव !

मजदूर : मैंने एक ऐसे आदमी का अन्त कर दिया। मुझे क्यों फाँसी हो ? होनी तो नहीं चाहिए थी, पर इस समय के कानून······

[**दरवाज़ा खुलने की आवाज़**]

कवि : तो ···· तो······अब वक्त आ गया। हाय ! हाय ! अब वह आकाश, वह चाँदनी, वह जीव सृष्टि और······ और······वह गयी तो गयी······उसी के सदृश किसी दूसरी को ढूंढ़ता, सब······सब चले। अरे पतझड़ तो वसन्त के पहले होती है, जीवन के इस वसन्त के बीच यह पतझड़ कैसा ? प्रलय तो सृष्टि के पूर्ण विकास के बाद आता है। मेरा तो यौवन अभी विकसित हो रहा था। यह प्रलय

कैसा ? हाय ! हाय ! यह अन्याय, यह ज़ुल्म !

पूँजीपति : अभी तो न जाने मेरे कितने काम बाकी हैं ? मध्य-भारत का कॉटन मिल अभी अधूरा पड़ा है। बिहार का शुगर मिल इसी साल में चलना शुरू हुआ है। यू० पी० के पेपर मिल की अभी तो नींव पड़ी है। न जाने कितनी ……कितनी फैक्टरियाँ और कितने……कारखाने बनाने थे। लेक रोड के मकान की नींव खुद रही है। हिन्दुस्थान के अच्छे से अच्छे शिल्पी को वह काम सौंपा है। उसकी चित्रकारी की व्यवस्था बाकी है। नरनारायण के मन्दिर की प्रतिष्ठा शेष है। हरिद्वार की धर्मशाला का उद्यापन होना है।

मज़दूर : कवि जी, आपको क्यों दुःख हो रहा है ? सृष्टि एक ही तत्त्व है। उसी में तो आप मिलियेगा। यह तो बन्धन-मुक्ति है। और, पूँजीपति जी, आपको भी दुःख नहीं होना चाहिए। पूर्व-जन्म के अच्छे कर्मों के फलस्वरूप ही तो पूँजीपति के घर में जन्म होता है। आपने मन्दिर बनवाये हैं, धर्मशाला बनवायी है, अपने जीवन का सबसे बड़ा पुण्य कार्य आपने एक मज़दूर की हत्या करके किया है। आपका नया जन्म तो और अच्छा होगा। दुःख तो मुझे होना था। पर जानते हैं ? मुझे हर्ष है। एक खून चूसने वाले का खून कर मैंने तो यह जन्म सफल कर लिया। फाँसी न होती तो अच्छा था। पृथ्वी का भार और घटाता, पर ख़ैर, इतना……इतना ही सही।

[लोगों के आने की आहट होती है]

कवि : अरे सारे भारतवर्ष के कलाकारों ने मुझे सबसे बड़ा उदीयमान कवि मान मुझे क्षमा करने के लिए दरख्वास्तें दी गयी थीं। शायद......शायद मुझे छोड़ने के लिए ये लोग आ रहे है।

पूँजीपति : और......और मेरे बचाने के लिए न जाने कितना धन खर्च किया जा रहा है। शायद......शायद मुझे भी छोड़ने के लिये।

[सैल का दरवाजा खुलता है। वर्दी पहने हुए जेलर का कुछ वार्डर्स के साथ प्रवेश।]

जेलर : तैयार......तैयार......हो जाओ, तुम लोग ईश्वर को याद करो।

[कवि शून्य और कातर दृष्टि से सामने की ओर देखता है। पूँजीपति रोता है। और इन दोनों को देखकर मजदूर कहकहा लगाकर हँसता है।]

यवनिका

समाप्त

मुख्य पात्र, स्थान

मुख्य पात्र

रघुराजसिंह	:	एक जमीदार
नर्मदाशंकर	:	रघुराजसिंह के स्टेट का मैनेजर
चूरामन	:	एक किसान
क्रान्तिचन्द्र	:	चूरामन का पुत्र

स्थान

एक नगर

एक गाँव

पहला दृश्य

स्थान : नगर में रघुराजसिंह के महल की एक बालकनी

समय : प्रातःकाल

[एक विशाल बालकनी का जो हिस्सा दिखायी देता है वह सुन्दरता से बना और सजा है। उसके खंभे संगमरमर के हैं और रेलिंग बीड़ की रँगी हुई। फर्श मोज़ेक का बना है, जिसमें रंग-बिरंगे बेल-बूटे हैं। छत पर चूने की नक्काशी है और उससे बिजली की कई बत्तियाँ झूल रही है, जिनके शेड बेश-कीमती है। एक बिजली का पंखा भी लटक रहा है। पीछे की रेलिंग के निकट ही वृक्षों के ऊपरी भाग दिख पड़ते हैं, जिससे जान पड़ता है कि बालकनी तीसरे या चौथे मंज़िल पर है। बालकनी में लकड़ी का एक सुन्दर झूला, सोफ़ा-सेट, टेबिलें आदि सुन्दरता से सजी हैं। कुछ चीनी मिट्टी के गमले भी रखे हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधों से भरे है। बालकनी की बनावट और सजावट के देखने से वह किसी अत्यन्त संपन्न व्यक्ति के महल का एक भाग जान पड़ती है। रघुराजसिंह बालकनी के एक कोने में खड़ा हुआ एक छोटी-सी सुन्दर दूर्बीन से पीछे के दरख्तों के परे की कोई वस्तु देख रहा है। रघुराजसिंह करीब

२५ वर्ष की अवस्था का, गौर-वर्ण, ऊँचा-पूरा, किन्तु दुबला, सुन्दर मनुष्य है। वह ढीली बाँहों का पतला-सा कुरता और चूड़ीदार पाजामा पहने है। उसका सिर खुला है, जिस पर लंबे बाल लहरा रहे हैं। छोटी-छोटी मूँछें हैं और आँखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा। उसके नजदीक ही नर्मदाशंकर खड़ा है। नर्मदा-शंकर की उम्र लगभग ६५ वर्ष की है। वह साँवले रंग, ठिगने क़द का मोटा आदमी है। सिर पर बड़ा-सा साफ़ा बाँधे है और शरीर पर शेरवानी तथा पाजामा पहने है। उसके बड़े-से मुख पर उसकी छोटी-छोटी आँखे और बड़ी-बड़ी सफेद मूँछें एक ख़ास स्थान रखती है।]

रघुराजसिंह : (दूर्बीन से देखते-देखते) भोज की ठीक तैयारी हो रही है, मैनेजर साहब, बहन के विवाह में किसानों की यह दावत मै विवाह का सबसे बड़ा काम मानता हूँ। (कुछ रुककर) कुल मिलाकर कितने किसान आवेंगे ?

नर्मदाशंकर : पच्चीस हजार से कम नहीं, राजा साहब, आपने उन्हे मय वाल-वच्चों के आने का निमंत्रण जो भेजा है।

रघुराजसिंह : (दूर्बीन से देखते-देखते ही) क्यों, पहले की शादियों मे किसानों को कुटम्ब-सहित निमंत्रण नहीं दिया जाता था ?

नर्मदाशंकर : कभी नही, सिर्फ़ मर्द वुलाये जाते थे, वे भी चुने हुए घरों के, और घर पीछे एक आदमी।

रघुराजसिंह : (दूर्बीन से देखते-देखते ही) पर यह ग़लत वात

थी, मैनेजर साहब। सिर्फ़ मर्दों को, वह भी चुने हुए घरों के, तथा घर पीछे एक ही आदमी को बुलाने का क्या अर्थ था ?

नर्मदाशंकर : अर्थ तो सभी पुरानी बातों का है, राजा साहब। (**कुछ रुककर**) हाँ, एक कठिनाई ज़रूर है।

रघुराजसिंह : (**दूर्बीन आँखों के सामने से हटा, नर्मदाशंकर की ओर देख**) कैसी कठिनाई, मैनेजर साहब ?

नर्मदाशंकर : (**गला साफ़ कर कुछ भर्राये हुए स्वर में**) आप माफ़ करें तो कहूँ।

रघुराजसिंह : आप मेरे पिताजी के समय से काम कर रहे है, शायद चालीस वर्ष आपको काम करते-करते बीत गये। मै आपके सामने पैदा हुआ। पिताजी की मृत्यु के बाद मेरी नाबालिग़ी मे आपने ही कुल काम किया, आज भी आप ही मैनेजर है, आपको मै अपना बुजुर्ग मानता हूँ; आपको कोई बात कहने के पहले माफी माँगने की ज़रूरत है ?

नर्मदाशंकर : मै आपकी कृपा का हाल जानता हूँ, राजा साहब, इसीलिए आज कुछ कहने की हिम्मत कर रहा हूँ। जो-जो बातें पहले होती थी उनके कारण ही (**बालकनी की ओर इशारा कर**) ये महल महलात, यह वैभव और ऐश्वर्य नजर आता है। विवाह में घर पीछे एक किसान और वह भी चुने हुए घरों के किसानों को, निमंत्रण देने का सवाल नहीं है, प्रश्न है कार्य की सारी पद्धति का।

रघुराजसिंह : अच्छा, तो जिस पद्धति से मैं काम कर रहा हूँ वह आप मुनासिब नहीं समझते ?

नर्मदाशंकर : (**सहमे हुए स्वर मे**) बात तो ऐसी ही है और समय-समय पर मैं अपनी राय का संकेत भी करता आया हूँ।

रघुराजसिंह : (**कुछ याद करते हुए**) हाँ, मुझे याद आ रहा है। काम सँभालते ही जब मैंने किसानों पर का सारा कर्ज़ माफ़ किया तब वह भी आपको पसन्द नहीं आया था।

नर्मदाशंकर : हाँ, राजा साहब, मुझे तो पसन्द नहीं आया था।

रघुराजसिंह : (**विचारते हुए**) परन्तु आखिर उस कर्ज़ में से कितना कर्ज वसूल होता ?

नर्मदाशंकर : सवाल कर्ज़ की वसूली का नहीं है।

रघुराजसिंह : तब ?

नर्मदाशंकर : किसानों पर उस कर्ज के कारण दबाव था, वह चला गया।

रघुराजसिंह : ओह ! तो अपना कोई फ़ायदा न होने पर भी किसानों को कुचलकर रखना ही पुरानी पद्धति का अर्थ है।

नर्मदाशंकर : नहीं, राजा साहब, ऐसी बात नहीं है।

रघुराजसिंह : तब ?

नर्मदाशंकर : बिना किसानों पर दबाव रखे हम ज़मींदारी से कोई लाभ उठा नहीं सकते।

[**कुछ देर निस्तब्धता।**]

रघुराजसिंह : (गंभीरता से विचारते हुए) और जिन ज़मीनों पर ज़्यादा लगान था, मेरा उनका लगान घटाना भी आपको पसन्द न आया होगा ?

नर्मदाशंकर : किसी जमीन पर ज़्यादा लगान था ही नहीं, राजा साहब।

रघुराजसिंह : किसी ज़मीन पर ज़्यादा लगान नहीं था ?

नर्मदाशंकर : किसी पर भी नहीं।

रघुराजसिंह : तो जो किसान इतना रोते और बिलखते थे, वह सब उनका ढोंग था ?

नर्मदाशंकर : बिलकुल ढोंग, राजा साहब।

रघुराजसिंह : इतने मनुष्य झूठे आँसू बहाते थे ?

नर्मदाशंकर : आप इन किसानों से अभी वाकिफ़ नहीं है, राजा साहब, ये क्या-क्या कर सकते है, आप जानते नही। आँखों में दवा डालकर ये आँसू बहा सकते है।

[**कुछ देर फिर निस्तब्धता।**]

रघुराजसिंह : (**विचारते हुए**) और जिन ग़रीब किसानों को मैंने बिना कोई नज़राना लिये ज़मीनें दीं, वह भी ग़लती की ?

नर्मदाशंकर : वे इतने गरीब थे ही नही, राजा साहब, कि नज़राना न दे सके।

रघुराजसिंह : पर कितने किसानो ने उनकी सिफ़ारिश की थी ?

नर्मदाशंकर : चोर-चोर मौसेरे भाई, राजा साहब।

[**फिर कुछ देर निस्तब्धता।**]

रघुराजसिंह : और आज विवाह के उपलक्ष में मैंने कुटुम्ब-सहित किसानों को जो भोज दिया, इसमें क्या ग़लती है ?

नर्मदाशंकर : किसानों का भोज ख़र्च का नहीं, आमदनी का कारण होता था, वह अब खर्च का कारण हो जायगा।

रघुराजसिंह : अर्थात् ?

नर्मदाशंकर : राजा साहब, इस निमंत्रण में सिर्फ संपन्न किसानों को बुलाया जाता था। घर पीछे एक आदमी को निमंत्रण दिया जाता था। एक मिठाई, एक नमकीन, एक साग, एक रायता और पूड़ी-कचौड़ी उन्हें खिला दी जाती थी। फ़ी आदमी मुश्किल से चार आना खाता था। खानेवाले कोई एक रुपया, कोई दो, कोई चार, कोई पाँच, कोई सात, व्यवहार करते थे—कोई ग्यारह और कोई इक्कीस भी। आज के भोज में न जाने कितनी तरह की मिठाइयाँ, नमकीन, तरकारियाँ, रायते, मुरब्बे, अचार, चटनियाँ और भी न जाने क्या-क्या, इन्हें खिलाया जायगा। संपन्न कम और दरिद्री अधिक आएँगे, फिर उनका पूरा का पूरा कुटुम्ब खायगा। व्यवहार देने वाले कितने होंगे ?

रघुराजसिंह : (आश्चर्य से) व्यवहार ! आप इनसे व्यवहार लेंगे ?

नर्मदाशंकर : (और भी आश्चर्य से) क्यों व्यवहार नहीं लिया जायगा ?

रघुराजसिंह : कभी नहीं।

[नर्मदाशंकर आश्चर्य से स्तंभित-सा होकर रघुराजसिंह

की तरफ़ देखता है । कुछ देर निस्तब्धता ।]

नर्मदाशंकर : (धीरे-धीरे अत्यन्त भर्राये हुए स्वर में) लेकिन ······लेकिन, राजा साहब, व्यवहार······व्यवहार न लेना तो उन किसानों······किसानों का भी अपमान······अपमान करना······

लघु-यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान : गाँव के एक मकान का कोठा

समय : प्रातःकाल

[साधारण लंबाई-चौड़ाई का देहाती मकान का एक कोठा है। तीन ओर की दिखनेवाली दीवालों पर गारे की छपाई है, जो छुई मिट्टी से पुती है। कहीं-कहीं दीवारे मैली हो गयी है। पीछे की दीवाल में ऊपर की तरफ़ दो छोटी-छोटी खिड़कियाँ है, जिसमें लकड़ी के भद्दे-से जंगले है। खिड़कियाँ ऊपर होने के कारण खिड़कियों के बाहर क्या है, वह दिखायी नहीं देता। दाहनी ओर की दीवाल में एक छोटा-सा दरवाज़ा है, जिसकी चौखट और किवाड़ देहाती ढंग के बने है। दरवाज़ा बन्द है। छत पर बाँसों का पटाव है, जिस पर गारा छपा है और छुई पुती है। इधर-उधर से गारे की छपाई झड़ जाने के कारण बाँस दिखायी देते है। ज़मीन गोबर से लिपी है। तीन तरफ़ खाली ज़मीन छोड़कर, बीचों-बीच पीछे की दीवाल से सटी हुई एक लाल रंग की जाजम बिछी है। जाजम इधर-उधर मैली हो गयी है और यत्र-तत्र फट भी गयी है। जाजम पर कई किसान बैठे है। इन की अवस्थाएँ भिन्न-भिन्न है और स्वरूप भी अलग-अलग, लेकिन

कपड़े सबके प्राय: एक-से हैं। इनके कपड़ों के कारण देखनेवालों को इनके किसान होने में कोई शक नहीं रह जाता। इस समुदाय मे एक ही व्यक्ति ऐसा है जो किसान नहीं जान पड़ता। इसका नाम है क्रान्तिचन्द्र। क्रान्तिचन्द्र की अवस्था २२, २३ वर्ष से ज्यादा नहीं है। वह साँवले रंग का, ऊँचा-पूरा वलिष्ठ व्यक्ति है। उसकी बहुत बड़ी-बड़ी आँखे और कुछ सिकुड़े-से ओठ उसके मुख में एक खास स्थान रखते हैं। वह खाकी रंग की कमीज और निकर पहने है। सिर खुला है, जिस पर लम्बे सँवारे हुए बाल हैं। क्रान्तिचन्द्र के पास ही उसका पिता चूरामन बैठा है। चूरामन की उम्र करीब ६० वर्ष की है। उसका रंग भी साँवला है सारा शरीर दुबला और मुख पिचका हुआ, जिसमें उसकी घुसी हुई आँखें उसके मुख को अत्यधिक करुण बना रही है। उसकी और अन्य किसानों की वेश-भूषा में कोई फर्क नहीं हैं; इतना अन्तर है कि वह कानों में सोने की मुरकियाँ पहने है। क्रान्तिचन्द्र अत्यन्त क्रोध भरी मुद्रा और अत्यधिक क्रूर दृष्टि से, जो उसकी बड़ी-बड़ी आँखों के कारण और ज़्यादह क्रूर हो गयी है, चूरामन की तरफ़ देख रहा है और चूरामन जमीन की ओर। कभी-कभी वह क्रान्ति की तरफ़ दृष्टि उठाता है. पर ज्योंही वह देखता है कि क्रान्तिचन्द्र उसकी ओर देख रहा है, त्योंही अपनी दृष्टि फिर नीचे कर लेता है। बाकी किसान कभी पिता और कभी पुत्र की तरफ़ देखते हैं। कोठे मे एक विचित्र प्रकार का सन्नाटा छाया हुआ है।]

क्रान्तिचन्द्र : (धीरे-धीरे) तो निमंत्रण के ठीक समय तक हम लोग इसी प्रकार मौन बैठे रहेंगे और बाहर बैठे हुए सब

लोग हमारे निर्णय की प्रतीक्षा करते रहेंगे ?

[**कोई कुछ नहीं बोलता। फिर निस्तब्धता।**]

क्रान्तिचन्द्र : (**कुछ देर बाद उठते हुए**) अच्छी बात है, आप लोग इसी प्रकार बैठे रहें, मुझे जो कुछ करना ठीक जान पड़ता है, मै जाकर करता हूँ। (**खड़ा होता है।**)

चूरामन : बैठ, बैठ, रेवापरसाद ! सुन तो।

क्रान्तिचन्द्र : (**खड़े-खड़े ही, क्रोध से**) मेरा नाम रेवाप्रसाद नही है, पिताजी, मैंने कई बार आप से कह दिया, मै न किसी का प्रसाद हूँ न किसी का दास।

चूरामन : (**डरते-डरते**) भूल गया, भूल गया, पर तू बैठ तो, किरान्तीचन्दर।

क्रान्तिचन्द्र : (**कुछ शान्ति से**) पर बैठकर करूँ क्या ? यहाँ तो सभी ने मौन-व्रत धारण कर रखा है।

चूरामन : मउन बिरत की बात नहीं है, बेटा, तूने पिरसन ही ऐसा रखा है कि जबाब सरल काम थोड़ई है।

क्रान्तिचन्द्र : (**बैठते हुए**) मैने ऐसा प्रश्न रखा है ? पिताजी, पिंजरे में बन्दी पक्षी के उड़ने के लिए यदि पिंजरे का द्वार खोल दिया जाय तो द्वार खोलनेवाला कोई समस्या खड़ी नहीं करता। अंधकार में रहनेवाले व्यक्ति को यदि प्रकाश में ले आया जाय तो प्रकाश मे लाने वाला कोई भूल नहीं करता।

[**कोई कुछ नहीं बोलता। फिर निस्तब्धता।**]

क्रान्तिचन्द्र : (**फिर उठते हुए**) मै देखता हूँ, यहाँ इस प्रश्न का

निर्णय न हो सकेगा। (खड़ा होता है।)

एक किसान : तब कहाँ होगा, भैया ?

दूसरा किसान : हाँ, सब गावँन के पंच तो हियाँ बइठे हैं। यहाँ निरनय न होई तो कहाँ होई।

क्रान्तिचन्द्र : (खड़े-खड़े ही) दासता की शृंखलाओं में, वर्षों, नहीं-नहीं युगों, नहीं-नहीं पीढ़ियों तक, बँधे रहने के कारण पंचों में इस प्रश्न के निर्णय की सामर्थ्य नहीं रह गयी है।

तीसरा किसान : तब निरनय कौन करेगा ?

क्रान्तिचन्द्र : बाहर खड़ी हुई किसान-जनता।

चूरामन : बैठ, रेवा, बैठ तो······

क्रान्तिचन्द्र : (क्रोध से) फिर······फिर ·····रेवा, पिताजी ·····

चूरामन : अरे, भैया, बुढ़ा गया हूँ, भूल जाता हूँ रे।

क्रान्तिचन्द्र : (कुछ शान्त होते हुए) पर भूल पर भूल और उस पर भी भूल, भूलों की झड़ियों ने ही तो हमारी यह दशा कर दी है। मूल की बातों में भूल होना सबसे बड़ी भूल है।

चूरामन : अच्छा, तू बैठ तो।

[क्रान्तिचन्द्र बैठ जाता है। फिर कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।]

क्रान्तिचन्द्र : (कुछ देर बाद) फिर सन्नाटा ! आप लोगों को हो क्या गया है ? एक छोटी-सी बात के निर्णय में इस प्रकार का पशोपेश !

चूरामन : छोटी बात ! यह छोटी बात है ?

क्रान्तिचन्द्र : और क्या है ? ज़मींदार के निमंत्रण में जाकर गन्दे घी की मिठाई, चोकर की पूड़ियाँ और सड़े साग खाना छोटी बात नहीं तो कोई बड़ी बात है ? फिर यह सब भी किस अपमान से किया जाता है। मुझे अपने छुटपन के एक ऐसे ही निमंत्रण का स्मरण है। महल के फाटक से ही हमारा अपमान आरंभ हुआ था। सदर फाटक में तो हम लोग घुसने ही न पाये। एक पुराना टूटा-फूटा फाटक हमारे लिए खोला गया था। हरेक को प्रवेश के पहले अपने निमंत्रण का टिकट दिखाना पड़ा। आपको निमंत्रण था, पिताजी, मुझे नहीं, इसलिए आपके कितने गिड़गिड़ाने और अनुनय-विनय करने पर मुझे घुसने दिया गया था। वह दृश्य आज भी दृष्टि के सामने घूम जाता है। हम लोगों को घुड़साल में खिलाया गया था, घुड़साल में। घोड़ों की लीद और मूत की दुर्गन्ध से नाक सड़ी जाती थी। उस दुर्गन्ध को इतने वर्षों के पश्चात् भी मेरी नाक तो नहीं भूली है। फटी पत्तलो और फूटे सकोरों मे हमें परसा गया था। परसगारी करनेवाले हमे इस प्रकार परसते थे, मानो हम कंगीर हों और वह भोजन करा हम पर महान उपकार किया जा रहा हो। भोजन की सामग्री का स्वाद अभी भी मेरी जीभ नहीं भूली है—कह नही सकता, घी में मिठाई बनी थी या किसी गन्दे परनाले के पानी में, दही का रायता था या छुई मिट्टी का, साग था कदाचित् सप्ताहों का सड़ा हुआ और पूरियाँ आटे की तो नहीं थी, लकड़ी के बुरादे

की हो सकती है। ऐसे भोजन के पश्चात् हमारे ग़रीब भाइयों को जो खनाखन व्यवहार का रुपया देना पड़ा था उसका शब्द अभी भी मेरे कानों में गूंज उठता है। पिताजी, आप कहते हैं ऐसे निमंत्रण में न जाने का निर्णय छोटी बात नहीं है; बड़ी, बहुत बड़ी बात है।

चूरामन : बेटा, पिरसन मान-अपमान और भोजन का नही है।

क्रान्तिचन्द्र : तब ?

चूरामन : जमींदार का न्योता है, बेटा, ज़मीदार का।

क्रान्तिचन्द्र : ऐसा ! तो जो आपको लूट रहा है, जो आपका खून पी रहा है, उस लुटेरे उग्र डाकू के भय से आप निमंत्रण में जा रहे हैं।

चूरामन : **(भयभीत स्वर में)** बेटा ·····बेटा ···· कैसी······ कैसी बातें कर रहा है, क्या पागल हो गया है ? इसकूल और कालेज में जाकर क्या लड़के इस तरा से पगले हो जाते हैं ? भीतों के भी कान होते है, बेटा·····थोड़ा · ···

क्रान्तिचन्द्र : **(आश्चर्य से)** सच्ची बात कहने मे काहे का डर, पिताजी ? दूसरों के श्रम पर बिना कोई श्रम किये जो तरह-तरह के गुलछर्रे उड़ाते है, वे लुटेरे नहीं तो क्या है ? श्रम करनेवाले भूखे और नंगे रहते है और ये आरामतलब बिना कोई काम किये अलमस्त। ऐसे लोग खून चूसनेवाले नहीं तो और क्या कहे जा सकते है ? स्कूल और कॉलेज यदि सच्ची वस्तुस्थिति दिखा दे तो क्या वे कोई अपराध करते है ? दीवालों के कान होते है ! पिताजी, मै डरता नही

हूँ, भय से अधिक बुरी वस्तु मैं संसार में और कोई नहीं मानता। ईंट, चूने, मिट्टी-गारे की दीवालों के नहीं, मनुष्यों के समूहों के सामने मै ये सव बाते कहने, ऊँचे से ऊँचे स्वर में कहने के लिए तैयार हूँ, तैयार ही नही, पिताजी, मैंने कही है; स्वयं ज़मींदार के सम्मुख कहने, उसे लिखकर भेजने के लिए प्रस्तुत हूँ।

चूरामन : शिव, शिव ! शिव, शिव !

एक किसान : सब धान बाइस पसेरी नहीं होता। सब जमींदार एकसे नहीं होते।

दूसरा किसान : फिर हमारे इन जमींदार ने तो काम हाथ में लेते ही हम पर न जाने कित्ते उपकार किये हैं।

तीसरा किसान : इस न्योते को ही देखो न ? पहले व्याह-सादी में छाँट-छाँट कर, छटे घरों के एक-एक आदमी को न्योता जाता था, अब पूरे के पूरे गाँवों को न्योता, हर किसान को, किसान के पूरे कुनबे को न्योता।

क्रान्तिचन्द्र : ठीक, जान पड़ता है, ज़मींदार आप सबकी आँखों मे धूल डालने में सफल हो गया। यद्यपि मैं कॉलेज से हाल ही में आया हूँ, पर विद्यार्थी की हैसियत से यहाँ आता-जाता तो रहता ही था। जमीदार के काम सँभालने के पश्चात् उसके द्वारा जो उपकार हुए हैं उन सबका वृत्त मैं भली भाँति जानता हूँ, और सिद्ध कर सकता हूँ कि उसकी जिन वातों को आप उपकार मानते हैं वे उपकार की न होकर यथार्थ मे आपके अपकार की वातें हैं।

एक किसान : (व्यंग से) ऐसा !

क्रान्तिचन्द्र : जी हाँ। और जो कुछ मै कहता हूँ उसकी सत्यता सिद्ध करने की सामर्थ्य भी रखता हूँ। उसकी पहली बात जिसे आप उपकार समझते हैं, यही है न कि उसने, आप पर जो कर्ज था उसे छोड़ दिया ?

एक किसान : हाँ। **(दूसरों की ओर देखकर)** क्यों, भइया ?

कुछ किसान : **(एक साथ)** हाँ......हाँ।

क्रान्तिचन्द्र : आप बता सकते है, उसमें से कितना कर्ज ऐसा था, जो वसूल हो सकता ?

[कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।]

क्रान्तिचन्द्र : जिस वर्ष कर्ज़ की यह छूट की गयी उस वर्ष गर्मियों की छुट्टी मे मैंने अनेक गाँवों मे जा-जाकर उन किसानों की स्थिति की जाँच की थी, जिन पर कर्ज छोड़ा गया था। आप सच मानिए, इन किसानों में से सौ में से निन्यानवे ऐसे थे, जिनके पास ज़मींदार के कर्ज़ का व्याज चुकाते-चुकाते भोजन बनाने के टूटे-फूटे बर्तन तक न बचे थे। खेती का जो इक्का-दुक्का सामान था, कंकाल हुए बैल थे, सड़ा या क़ानून के अनुसार कर्ज़ में पतला-सा बीज था, वह नीलाम कराया नही जा सकता था। फिर जमीदार कर्ज़ वसूल कहाँ से करता ?

एक किसान : पर सौ मे एक से तो वसूल कर लेता।

क्रान्तिचन्द्र : यही तो आप समझते नहीं। सौ में से एक से पुराना कर्ज़ वसूल करने की अपेक्षा, पुराना कर्ज छोड़, उन्हें नया

कर्ज दे उनसे व्याज वसूल करना जमींदार के लिए कहीं अधिक लाभप्रद था।

[**सब किसान एक दूसरे का मुख देखते है। फिर सब चूरामन की ओर देखते है। वह कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।**]

क्रान्तिचन्द्र : कहिए, मै ठीक कहता हूँ, या ग़लत ?

[**फिर कोई कुछ नहीं बोलता। फिर निस्तब्धता**]

क्रान्तिचन्द्र : (**कुछ देर बाद**) दूसरा उपकार, जो इस जमीदार का आप मानते होंगे, वह कदाचित् उसका कुछ जमीनों का लगान कम करना है ?

एक किसान : हॉ, हाँ, यह तो उनका बड़ा भारी काम है।

कुछ किसान : (**एक साथ**) हॉ ·····हाँ·····हाँ·····हाँ······

क्रान्तिचन्द्र : यहाँ भी आप लोग भूल में है।

कुछ किसान : (**एक साथ**) कैसे······कैसे······?

क्रान्तिचन्द्र : इस सम्बन्ध मे भी मैंने जाँच कर ली है। जिनकी जमीनों पर लगान कम किया गया, उनमे से सौ में से निन्यानवे किसानों पर बक़ाया लगान की नालिशें की गयी थीं। ज़मीनों के अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं था। बेदख-लियाँ हो सकती थीं, परन्तु वे जमीने इतनी बुरी दशा में थी कि बेदख़ली के पश्चात् कोई उन्हें लेता ही नहीं। ज़मींदार घर में कितनी ज़मीन जोतता, अतः लगान कम कर उन्हीं किसानों के पास ज़मीन रहने देना ज़मीदार के लिए ज़्यादा फायदेमन्द था।

[फिर सब किसान एक दूसरे का मुख देखने लगते हैं और फिर सब चूरामन की ओर देखते है। कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।]

क्रान्तिचन्द्र : आप थोड़ा सा ध्यान देकर ज़मींदार क़ी कार्रवाइयों को देखें तो उनका सच्चा रहस्य आपकी समझ मे आ जाय।

[फिर कुछ देर निस्तब्धता।]

क्रान्तिचन्द्र : तीसरा काम जो इस जमीदार ने किया, वह है कुछ किसानों को विना नजराने के मुफ़्त मे ज़मीनें देना। (कुछ रुककर) क्यो ?

कुछ किसान : (एक साथ) हाँ·····हाँ·····हाँ·····हाँ·····

क्रान्तिचन्द्र : मैं आपसे पूछता हूँ, यदि जमीदार यह न करता तो करता क्या ? क्या आप नही जानते कि उसकी हजारों एकड़ जमीन पड़ती पड़ी है। विना नज़राने के जमीने उठा देने से भी उसकी आमदनी बढ़ी है या घटी ? मैंने इस सम्बन्ध मे भी सारी बातों का पता लगाया है और इस काम में ज़मीदार की वार्पिक आय मे कोई पच्चीस हज़ार रुपये की वृद्धि हुई है।

[सब लोग फिर एक दूसरे की ओर देखकर चूरामन की तरफ़ देखने लगते है। वह फिर कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।]

क्रान्तिचन्द्र : अब विवाह के इस निमंत्रण को ले लीजिए। आप समझते है कि छटे हुए किसानों को ही निमंत्रण न देकर, हर

गाँव के हर किसान को निमंत्रण दे, ज़मींदार ने आप सब पर वड़ा प्रेम दर्शाया है। मैं कहता हूँ कि इस दुर्भिक्ष के समय आप पर और विशेषकर ग़रीब किसानों पर, इससे वड़ा ज़ुल्म सम्भव नहीं था। इसके पिता केवल सम्पन्न किसानों को वुलाते थे। उनसे व्यवहार वसूल होता था। अव सभी वुलाये गये हैं; कुटुम्व सहित। सवसे व्यवहार की वसूली होगी; एक-एक घर से नहीं, घर के प्रत्येक व्यक्ति से। चार आना खिलाकर चार रुपया वसूल किये जायँगे।

एक किसान : भाई, यह तो सच है।

कुछ किसान : (एक साथ) हाँ····· हाँ······हाँ······हाँ......

[**कुछ देर निस्तब्धता।**]

क्रान्तिचन्द्र : ज़मींदार और किसान के हित एक दूसरे के ठीक विरुद्ध है। दोनों एक दूसरे का हित-साधन कर ही नहीं सकते। जो ज़मीदार इसकी डींग मारता है वह लुटेरा और डाकू ही नहीं, धोखेवाज़ भी है तथा धोखा देकर अधिक लूटने और ख़ून चूसने का इच्छुक। हम किसान अधिक संख्या में हैं। जिधर अधिक संख्या होती है वही वल। हमने न सच्ची वस्तुस्थिति समझी है और न अपना वल पहचाना है। शत्रु को मित्र मान, उससे मित्र का-सा व्यवहार, सच्ची वस्तु-स्थिति को न पहचानना नहीं तो और क्या है? वल रहते हुए भी अपने को निर्वल समझने से अधिक कौनसी भूल हो सकती है? ज़मीदार हमारा शत्रु है, सवसे वड़ा शत्रु। भक्षक और भक्ष्य का कैसा व्यवहार? उनके आपस में कैसा

प्रेम ? और अपना सच्चा स्वरूप पहचानकर, अपना वल जानकर, यदि हम सव एक हो इस भोज में सम्मिलित न हों तो जमीदार हमारा क्या कर सकता है ! (**कुछ रुककर सबकी ओर एक बार दृष्टि घुमा**) मै कहता हूँ इससे अच्छा अवसर मिल नही सकता, जब हम जमींदार को वतादे कि तुम और हम यथार्थ में मित्र नहीं, शत्रु हैं, तुम्हारा हमारा कोई व्यवहार नहीं, तुम्हारे हित और हमारे हित एक दूसरे के ठीक विपरीत है। अब हमने उन्हें पहचान लिया है। अपने आपको भी हमने जान लिया है। हम अपने रास्ते चलेगे, तुम अपने रास्ते चलो। तुम एक हो, हम करोड़ों। एक का सातों सुख भोगना, और करोड़ों का अन्न के लिए 'त्राहि-त्राहि' और 'पाहि-पाहि' करना, वस्त्रों के विना नंगे घूमना, घरों के विना वृक्षों के नीचे पड़े रहना, यह सदा सम्भव नहीं। तुमने वर्षो नहीं, युगों से हमें लूटा है, हमारा खून पीकर स्वयं लाल हुए हो, हम अब धोखा नहीं खा सकते। तुम्हारा नाश करके ही हम सुखी हो सकते है। यह सब स्वयं समझ लेने ही नहीं, पर उसे वता देने के पश्चात् ही हमारा कार्य ठीक दिशा में हो सकेगा, क्योंकि उस कार्य के मार्ग का प्रधान रोड़ा भय फिर हमारे सामने न रह जायगा।

[क्रान्तिचन्द्र चुप होकर सब की तरफ़ देखता है। कोई कुछ नहीं बोलता। सब लोग चूरामन की ओर देखते हैं। चूरामन ज़मीन की तरफ। कुछ देर निस्तब्धता।]

क्रान्तिचन्द्र : (**फिर क्रोध से खड़े होकर**) जान पड़ता है आप पंचों के लिए सच्ची वस्तुस्थिति समझ सकना, अपने बल को पहचानकर ठीक दिशा मे चलना सम्भव नही रह गया है; परन्तु मैं जानता हूँ कि किसान जनता की यह दशा नही है। आप थोड़े बहुत सम्पन्न हैं न, इस नाम मात्र की सम्पन्नता के कारण जीवन में पड़े हुए सुख के छोटे-छोटे छींटे भी नहीं छोड़ पाते। इन सुखों के छींटों के सूख जाने का भय आपसे अपने भाइयों के गले पर भी छुरी चलवा रहा है। अपने भाइयों के ख़ून से तर खाने की सामग्री भी आप पंच खाने को तैयार हैं, परन्तु याद रखिए, इस खाने में अब आपके ग़रीब किसान भाई आपका साथ देनेवाले नहीं हैं। किसानों की नब्ज़ जितनी दूर तक मैं देख सकता हूँ, आप पंच कहे जाने पर भी नहीं। आपकी ज्ञान-शक्ति स्वार्थ के कारण कुंठित जो हो गयी है। आप सच्चे पंच रहे ही कहाँ है ? (**पीछे की दीवाल की दोनों खिड़कियों के निकट जा उनमे से बाहर की ओर देखते हुए**) बाहर की इस अपार किसान-जनता के, पिताजी, आप सच्चे चूड़ामणि हो सकते थे, (**लौटकर**) पर इतना प्रयत्न करने के पश्चात् मुझे आज मालूम हो गया कि यह आपके लिए संभव नहीं। जाने दीजिए, आपके पाप का प्रायश्चित् आपका पुत्र करेगा। पंच कहे जाने वाले, इक्के-दुक्के कुल्हाड़ी के बेंट, चाहे जमींदार के भोज में सम्मिलित हो जायँ, पर सच्चे किसान कभी भी उस भोज में न जायँगे। वे उन मिठाइयों,

उन पूरी-कचौड़ियों, उन साग-रायतों को हाथ भी न लगायँगे, जो उसके खून को चूसकर बनाये गये हैं। वह सामग्री चाहे आप पंचों के गले उतर जाय, पर सच्चे किसानों के ओठों का स्पर्श भी न कर सकेगी। (दाहिनी ओर की दीवाल के दरवाजे के निकट जाते हुए) और······और······ स्मरण रखिएगा कि चाहे आप अपने भाइयों के इच्छा के विरुद्ध उसे खा आवें (रुककर बड़े ही क्रूर स्वर में आँखों से आग-सी बरसाते हुए) पर वह अब आपको हज़म न हो सकेगी। उसका एक-एक कण आपके उदरों को चीर-चीरकर निकलेगा और······और······(शीघ्रता से बाहर जाता है।)

चूरामन : (मानो किसी नींद से जगा हो) बेटा!······ बेटा !······ठैर······ठैर······सुन······सुन तो······

(क्रान्तिचन्द्र को न लौटते देख जल्दी से बाहर जाता है।)

[भीतर बैठे हुए किसानों में खलबली-सी मच जाती है, सभी उठकर दरवाजे की ओर बढ़ते हैं। नेपथ्य में 'क्रान्तिचन्द्र की जय', 'क्रान्ति अमर हो', 'किसानों की जय', 'जमींदार-प्रथा का नाश हो' इत्यादि के बुलन्द नारे सुनायी देते हैं।]

लघु-यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान : रघुराजसिंह के महल की बालकनी

समय : मध्याह्न

[वही बालकनी है जो पहले दृश्य में थी। सूर्य तो नहीं दिखता, पर यत्र-तत्र उसमें धूप पड़ती हुई दिखायी देती है, जिस से जान पड़ता है कि दिन चढ़ गया है। रघुराजसिंह अकेला बेचैनी से इधर-उधर टहल रहा है। उसके मुख पर उद्विग्नता के भाव झलक रहे हैं। हाथ में उसके वही दूर्बीन है, जो पहले दृश्य में थी। अनेक बार ठहरकर दूर्बीन से वह पीछे के दरख्तों के परे कुछ देख लेता है। बदहवास-सी अवस्था में नर्मदाशंकर का हाथ में एक खुली चिट्ठी लिये हुए जल्दी से प्रवेश।]

नर्मदाशंकर : राजा साहब ! राजा साहब !

रघुराजसिंह : (टहलना बन्द कर, नर्मदाशंकर की ओर बढ़कर) कहिए···कहिए, मैनेजर साहेब, किसानों का कोई पता......

नर्मदाशंकर : जी हाँ। (चिट्ठी रघुराजसिंह को देकर) यह पता है।

[रघुराजसिंह चिट्ठी लेकर उसे पढ़ने क्या, आँखों से पीने-सा लगता है। एक पंक्ति के एक सिरे से दूसरे सिरे तक और एक

पंक्ति के बाद दूसरी पंक्ति पर नाचती हुई उसकी आँखों की पुतलियों से उसके हृदय के उद्वेग का पता चलता है। बड़ी-सी चिट्ठी को वह सेकिण्डों में पढ़ डालता है। उसे पूरा करते-करते उससे खड़ा नहीं रहा जाता; वह पहले कुर्सी पकड़ता और फिर एकाएक कुर्सी पर बैठ जाता है। कुर्सी पर बैठकर वह फिर से चिट्ठी पढ़ता है। अब उसका सिर झुक जाता है। नर्मदाशंकर एकटक रघुराजसिंह की सारी मुद्रा को देखता रहता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

नर्मदाशंकर : देखा, राजा साहब, देखा, आपने इन किसानों की बदमाशी को देखा ? आप इन पर प्राण देते हैं। इनके थोड़े से लाभ के लिए अपनी ज़्यादा से ज़्यादा हानि करने के लिए तैयार रहते हैं। काम सँभालने के बाद आपने इन बदज़ातों के लिए क्या नहीं किया ? पर......पर, राजा साहब; लातों के देव बातों से थोड़े ही सीधे रहते हैं। ज़मींदार की बहन के विवाह-भोज का किसानों द्वारा बहिष्कार ! एक भी किसान का न आना ! और ऐसी......आह ! ऐसी चिट्ठी, बेहूदगी, ज़्यादा से ज़्यादा बेहूदगी भरी हुई चिट्ठी भेजना ! इन दो कौड़ी के किसानों की यह मजाल ! इनकी यह हिम्मत ! इनका यह साहस ! इनकी यह हिमाक़त ! ओह ! ज़मींदारों के सिरमौर इस घराने की आज क्या इज़्ज़त रह गयी ? दूसरे ज़मींदार हम पर किस प्रकार हँसेंगे ? हमारी कैसी खिल्ली उड़ेगी ? हमारा कैसा मज़ाक उड़ाया जायगा ? ओह ! ओ......

रघुराजसिंह : (**एकाएक खड़े होकर पत्र को देखते हुए**) पर······ पर······मैनेजर साहब, 'किसानों के प्रतिनिधि क्रान्तिचन्द्र' ने ठीक तो लिखा है—'भक्षक और भक्ष्य का कैसा व्यवहार?' मेरी ग़लती थी जो मैं यह समझता था कि किसानों का मैं हित कर सकता हूँ। ज़मीदार रहते हुए कोई ज़मींदार किसानों का हित नहीं कर सकता। मुझे······मुझे तो अब दूसरी ही बात सोचनी है।

नर्मदाशंकर : (**आश्चर्य से**) कैसी ?

रघुराजसिंह : (**टहलते हुए**) मैं ज़मींदार रहना चाहता हूँ तो सच्चा ज़मीदार रहकर अपना, अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर का, अपने छोटे से कुटुंब का हित करूँ, या······या ······(**चुप हो जाता है।**)

नर्मदाशंकर : या ?

रघुराजसिंह : या······या इस ज़मींदारी के तौक़ को गले से निकाल, जिनके हित की मैं डोंग मारता हूँ उन्हीं का-सा हो, उन्हीं के सच्चे हित में अपना जीवन······अपना जीवन व्यतीत कर दूँ।

नर्मदाशंकर : (**अत्यधिक आश्चर्य से चिल्लाकर**) राजा साहब! राजा साहब······

[रघुराजसिंह गम्भीर मुद्रा से सिर नीचा कर इधर-उधर टहलने लगता है। नर्मदाशंकर आश्चर्य से स्तंभित-सा रघुराजसिंह की ओर देखता रहता है।]

यवनिका

समाप्त

आधुनिक यात्रा

पात्र और स्थान

मुख्य पात्र

रामखिलावन	: एक यात्री
विन्द्रावन	: एक यात्री

स्थान

पहला दृश्य	: एक कस्बे की सड़क
दूसरा दृश्य	: एक रेलवे स्टेशन का बाहरी भाग
तीसरा दृश्य	: एक स्टेशन का प्लेटफार्म
चौथा दृश्य	: रेलगाडी का डब्बा

पहला दृश्य

बेकरारी

स्थान : एक कस्बे की सड़क

समय : मध्यान्ह

[पीछे की ओर दूर पर बस्ती का कुछ हिस्सा दिखायी पड़ता है। मकानों की बनावट से जान पड़ता है कि कोई कस्बा है। बस्ती के सामने खेत हैं, जिनमें पौधों के ठूँठ दिखायी पड़ते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि हाल ही में उन खेतों की फ़सल काटी गयी है। सड़क दाहिनी से बायीं ओर गयी है। यद्यपि सूर्य नहीं दिखता तथापि सारे दृश्य पर जो प्रकाश फैला हुआ है तथा वस्तुओं की जैसी छाया पड़ रही है, उससे भास हो जाता है कि मध्याह्न का समय है। रामखिलावन और बिन्द्राबन का दाहिनी ओर से जल्दी-जल्दी प्रवेश। दोनों ऊँचे पूरे गठे हुए शरीर के व्यक्ति हैं। रँग गेहुँआ है। अवस्था अधेड़। चढ़ी हुई मूँछे। वेष-भूषा शहर से सम्बन्ध रखने वाले पढ़े-लिखे देहातियों की-सी, सिर पर कुछ मैले-से साफ़े, शरीर पर उजले कुर्ते और मैली-सी धोतियाँ, पैरों में देहाती जूते। बायें कन्धे पर कुछ सामान

जो दाहिने हाथ से सँभाला हुआ और बायें हाथ में ऊँची-ऊँची लाठियाँ।]

रामखिलावन : इस दुपहरी में दौड़ते-दौड़ते जान निकल गयी।

बिन्द्राबन : और अभी हुआ क्या है ? गाड़ी मिल जाय, उस मे बैठ जायँ, ठिकाने पहुँच जायँ, तब की बात है।

रामखिलावन : जब-जब कहीं जाओ, यही आफत। दिनों पहले मुसाफिरी की बात सोचो, सफर के दिन बेकरारी से दौड़े-दौड़े टेसन पहुँचो।

बिन्द्राबन : और जितनी बेकरारी टेसन पहुँचने मे उतनी ही गाड़ी लेट। करो घंटों इन्तजारी टेसन पर।

रामखिलावन : और फिर गाड़ी आते ही फौजदारी।

बिन्द्राबन : और गाड़ी मे बैठ भर पायें। बस जहाँ बैठे हो गयी (हँसते हुए) पक्की जमींदारी।

रामखिलालन : (उठाकर हँसते हुए) खूब, भाई, खूब—बेकरारी, इन्तजारी, फौजदारी, जमीदारी। हम लोगों ने तो कबता कर डाली कबता।

[कुछ देर निस्तब्धता।]

बिन्द्रावन : अच्छा, अब सुस्ता लिये। चलो अब कदम बढ़ाये चले चलें। कहीं गाड़ी चली न जाय।

रामखिलावन : हाँ, सायद गाड़ी जल्दी ही आ जाय।

[दोनों का जल्दी-जल्दी बाँयी ओर प्रस्थान।]

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

इन्तजारी

स्थान : एक रेलवे स्टेशन का बाहरी भाग

समय : अपराह्न

[पीछे की ओर रेलवे स्टेशन का कुछ भाग दिखायी देता है। उसके सामने मैदान है। मैदान में एक ओर रामखिलावन और बिन्द्राबन अपना-अपना सामान जमीन पर रखे उस पर बैठे हुए हैं।]

रामखिलावन : वही हुआ न जो हमेसा होता है। वेकरारी में दुपहरी भर दौड़ते-दौड़ते टेशन पहुँचे और गाड़ी साढ़े तीन घन्टे लेट। अब करो इन्तजारी।

बिन्द्राबन : पर, भाई, करे क्या ? ठीक वखत टेशन पहुँचे और गाड़ी भी ठीक वखत आजाय तो टिकस ही न मिले।

रामखिलावन : क्यों, भाई, तीस वरस का तो हम दोनों को होस है। साथ-साथ ही रहे हैं। घूमे-घामे भी हैं, पर मुसाफरी में ऐसी मुसीबत तो कभी नहीं देखी।

बिन्द्राबन : कभी नहीं, कभी नहीं। (कुछ रुककर) कहते हैं आवादी वहुत वढ़ गयी है और रेलें घट गयी हैं।

रामखिलावन : क्यों जी, इतने आदमी वढ़ कैसे गये ?

बिन्द्राबन : **(सोचते हुए)** देखो न मेरे परदादा अकेले थे उनके हुए दो। उन दो में से एक के तीन और दूसरे के चार। उन तीनों में से एक के तीन, दूसरे के पाँच, तीसरे···

रामखिलावन : **(ठठाकर हँसकर, बीच ही मे)** अरे इस तरह तो मेरे वंस में भी हुआ। चार पीढ़ी का हिसाब लगाया जाय तो कई के नाम ही भूल जायँ।

बिन्द्राबन : तो वस, इसी तरह बढ़े है। पुरानों में लिखा है न बिस्नू के ब्रह्मा भये और ब्रह्मा के फलाँ-फलाँ और ब्रह्मा ने कहा अपने लड़कों बच्चों से कि सृस्टी वढाओ।

रामखिलावन : पर कहाँ तक बढ़े, भाई।

बिन्द्राबन : अब महेस का काम सुरू हो गया है। इस लड़ाई के पूरे होते-होते एक भी बचने वाला नही।

रामखिलावन : हाँ, अब तक फौज लड़ती थी, अव परजा पर बम पड़ते हैं।

बिन्द्राबन : देखना परजा का एक भी आदमी वच जाय तो। बस फिर वही ब्रह्मा, विस्नू, महेस तीन रह जायँगे और इनमें से भी अखीर में एक।

[**कुछ देर निस्तबधता।**]

रामखिलावन : और गाड़ी कितनी घटीं ?

बिन्द्राबन : अपने टेसन की गाड़ियों का ही हिसाब लगा लो। **(सोचते हुए)** सबेरे एक पसींजर जाती और एक आती थी। उसके वाद जाने वाली और आने वाली फास पसींजर,

फिर दो एसपिरिस, फिर दो पसीजर……

रामखिलावन : (**बीच ही मे**) हाँ, हाँ, वहुत थी वहुत……

बिन्द्राबन : और अब रह गयी दो पसीजर और दो डाक ।

रामखिलावन : पर, भाई, इतनी आवादी कोई वरस, दो वरस में थोड़े ही बढ़ी है ।

बिन्द्राबन : पर गाड़ियाँ तो इन्हीं बरसो में घटी हैं न ।

रामखिलावन : (**सोचते हुए**) और इसी लिए बेकरारी यह इन्तजारी । यह फौजदारी यह जमीदारी ।

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

फौजदारी

स्थान : स्टेशन का प्लेटफार्म

समय : सन्ध्या

[प्लेटफार्म का थोड़ा-सा भाग दिखायी देता है। प्लेटफार्म पर एक गाड़ी खड़ी है। हो-हल्ला मचा हुआ है। डिब्बों की खिड़कियों मे से यात्री उतरने का प्रयत्न कर रहे हैं, क्योंकि डब्बों के दरवाजे बन्द है। उतरने वाले यात्री इन्हीं खिड़कियों में से चढ़ने वाले यात्रियों की शीघ्रता के कारण उतर नहीं पाते। चढ़ने वाले यात्रियों को डब्बे मे बैठे हुए आदमी चढ़ने नहीं देते। ऐसी कशमकश मची हुई है जिसका वर्णन कठिन है। पूरी फौजदारी का दृश्य है। कौन क्या कहता है यह न तो पूरा सुन पड़ता और न पूरा समझ में ही आता। हाँ, बीच-बीच में पान, बीड़ी, माचिस, सिगरेट, पूड़ी, मिठाई, दही बड़ा, ठण्डा पानी इत्यादि शब्द सुन पड़ते हैं। और कभी-कभी 'देखता हूँ न चढ़ने देने वाले को। देखूँ कैसे घुसता है।' 'साले'.... 'सूअर' .... इत्यादि शब्द। रामखिलावन और बिन्द्राबन थर्ड क्लास के एक डिब्बे की खिड़कियों में से डिब्बे में घुसने का प्रयत्न कर रहे हैं। जिस

खिड़की से रामखिलावन घुसने का प्रयत्न कर रहा है उससे एक यात्री उतरने का प्रयत्न कर रहा है; और जिस खिड़की से बिन्द्राबन घुसने का प्रयत्न कर रहा है उस खिड़की में भीतर एक यात्री खड़ा हुआ बिन्द्राबन न घुस पाय इस प्रयत्न में तल्लीन है। स्टेशन के अफसर तटस्थ-से खड़े हुए इस दृश्य को देख रहे हैं। जैसे यात्रियों के उतरने-चढ़ने मे सहायता करना उनका काम नहीं।]

लघु यवनिका

चौथा दृश्य

जमींदारी

स्थान : रेलवे का डिब्बा

समय : रात्रि

[थर्ड क्लास के डिब्बे का कुछ भाग दिखायी देता है। कुछ यात्री आराम से बैठे हुए है, कुछ आधे लेटे भी। रामखिलावन और बिन्द्राबन खड़े हुए अपना सामान लपेट-लपट रहे है।]

रामखिलावन : (बिन्द्राबन से) कहो कैसी जमीदारी रही ?

बिन्द्राबन : हॉ, खूब रही, भाई, खूब। हमारे डिब्बे मे यों तो हम हमेसा ही किसी को घुसने नही देते, पर अब की बार तो……

एक अन्य यात्री : (बीच ही में) हॉ, हाँ, आप लोगों के आने के वाद तो आपने किसी को नहीं घुसने दिया।

दूसरा यात्री : किसी को नही… किसी को नहीं। माफ कीजिए आपके घुसते समय मैंने ही सबसे ज्यादा आपका रास्ता रोका था, पर आपके आने से तो इतना आराम मिला कि क्या कहूँ।

तीसरा यात्री : (**राम खिलावन और बिन्द्राबन की लाठियों की ओर संकेत कर**) यह प्रताप इन गोफियों का है।

रामखिलावन : नहीं, नहीं, यह परताप है जिमीदारी का।

तीसरा यात्री : (कुछ आश्यचर्य से) जिमीदारी · ·· जिमीदारी कैसी!

रामखिलावन : देखो, भाइयो, आज (**बिन्द्राबन की ओर संकेत कर**) हम दोनों ने आजकल की मुसाफरी के लिए एक कवता बनायी है।

कुछ यात्री : (एक साथ) कवता······कवता क्या ····· कैसी कवता ?

रामखिलावन : (**जिसने अपना सामान लपेट कर कन्धे पर रख लिया था, खिड़की से बाहर देखते हुए**) अभी गाड़ी तो खड़ी रहेगी न ?

कुछ यात्री : (फिर एक साथ) हाँ, हाँ, अभी गाड़ी छूटने में बहुत······बहुत देर है।

तीसरा यात्री : वह कवता·····क्या कहा आपने·····हाँ, इसे और कहकर उतरिए।

रामखिलावन : कवता यह है :

वेकरारी, इन्तजारी, फौजदारी, जमीदारी।

[**यात्री एक-दूसरे का मुँह देखते हैं।**]

एक अन्य यात्री : कुछ समझे नहीं हम लोग।

बिन्द्राबन : मैं समझाये देता हूँ। देखिए, गाड़ियाँ हो गयी हैं कम,

टिकस मिलने मे होती है मुसकल, इसलिए कैसी बेकरारी से हम लोग दौड़े-दौड़े टेसन आते है ।

कुछ यात्री : (**एक साथ**) ठीक······ठीक······बिलकुल ठीक।

बिन्द्राबन : और टेसन पर फिर होती है इन्तजारी, क्योंकि गाड़ी आती है लेट।

कुछ यात्री : (**ठठाकर हँसते हुए**) ठीक······बिलकुल ठीक।

बिन्दाबन : और फिर गाड़ी आते ही गाड़ी मे घुसने के लिए सुरू होती है फौजदारी।

कुछ यात्री : (**और जोर से हँसते हुए**) वाह ! वाह ! वाह ! वाह !

बिन्द्राबन : (हँसते हुए) और जहाँ घुसने को मिला, दूसरे घुसने वालों के लिए बस हो जाती है जमीदारी कायम !

कुछ यात्री : (**और जोर से हँसते हुए**) खूब ! ······बहुत खूब !

रामखिलावन : और जब हम दोनों ने यह कबता बना डाली तब फौजदारी भी जरा बहादुरी से की और जमींदारी के हक की भी पूरी-पूरी रच्छा की, जो आप लोगों ने भी आज देख ही ली।

कुछ यात्री : (**एक साथ**) ठीक······बिल्कुल ठीक।

[**नेपथ्य में रेल की घंटी की आवाज़ सुनायी देती है।**]

बिन्द्राबन : अच्छा, भाई, अब चले।

[**दुआ सलामें होती है और रामखिलावन तथा बिन्द्राबन डब्बे की खिड़कियों से ही बाहर को उतरते है।**]

कुछ यात्री : (एक साथ) बेकरारी ······इन्तजारी····· फौज-
दारी····· जमींदारी······ ।

[कई यात्रियों के ज़ोर से कहकहे। नेपथ्य से गाड़ी की सीटी की आवाज़ ।]

यवनिका

समाप्त

ईद और होली

पात्र, स्थान

मुख्य पात्र

राम	: एक बच्चा
हमीदा	: एक बच्ची
रतना	: राम की माँ
खुदाबख़्श	: हमीदा का बाप

स्थान

एक नगर

पहला दृश्य

स्थान : एक गली

समय : सन्ध्या

[सकरी-सी गली का एक हिस्सा दिखायी देता है, जिसके दोनों तरफ़ एक मंज़ले और दो मंज़ले छोटे-छोटे मकानों के बाहरी भाग दृष्टिगोचर होते हैं। गली के एक ओर सबसे नज़दीक ख़ुदाबख़्श के एक मंजले मकान के सामने का कुछ हिस्सा दीख पड़ता है। मकान में जाने-आने का एक छोटा-सा दरवाजा है। गली के दूसरी तरफ़ सबसे नजदीक रतना के दो मंज़ले मकान के सामने का कुछ भाग दिखायी देता है। इस मकान में जाने-आने का एक बड़ा-सा दरवाजा है। ख़ुदाबख़्श और रतना के मकान एक दूसरे के ठीक सामने हैं और बीच में गली है। हमीदा ख़ुदाबख़्श के मकान के भीतर से निकलकर गली में आती है। हमीदा क़रीब चार वर्ष की छोटी-सी बालिका है। रंग गेहुँआँ है और देखने मे साधारणतया सुन्दर है। छोटे-छोटे फैले हुए बाल हैं। एक गुलाबी रंग का रेशमी पाजामा और हरे रंग का रेशमी कुरता पहने है। कानों में चाँदी की बालियाँ हैं। हमीदा के हाथों में पत्ते का दोना है और उसमें मैदे की

बनी हुई सिवइयाँ हैं।]

हमीदा : (रतना के मकान के नज़दीक जाकर ज़ोर से) आम! ओ आम!

[रतना के मकान से राम निकलता है। उसकी उम्र भी हमीदा के बराबर ही है, पर क़द मे वह हमीदा से कुछ ऊँचा और शरीर में भी कुछ मोटा है। रंग गेहुँआँ है और देखने मे बुरा नहीं है। एक सफ़ेद जाँघिया पहने है और उसके ऊपर वैसा ही कुरता।]

राम : (हमीदा को देखकर) ओ हम्मू।

हमीदा : हाँ आम। आद ईद, ईद। (सिवइयाँ दिखाते हुए) जे।

राम : जे त्या है, हम्मू?

हमीदा : ईद ती छिमइयाँ।

राम : ईद ती छिमइयाँ?

हमीदा : हाँ, आम, ईद ती छिमइयाँ। मीथी, मीथी।

[दोनों रतना के मकान के नज़दीक गली के एक किनारे पर बैठ जाते हैं।]

हमीदा : हम तुम दोनों थाँय।

राम : दोनों थाँय?

हमीदा : (सिवइयाँ राम के मुँह की तरफ़ ले जाते हुए) हाँ, आम, दोनों थाँय।

[हमीदा राम को अपने हाथ से सिवइयाँ खिलाती है, फिर ख़ुद खाती है। रतना अपने मकान के बाहर निकलती है। वह क़रीब ४० साल की गेहुँएँ रंग की साधारण उँचाई और शरीर की स्त्री

है। वेश-भूषा से विधवा जान पड़ती है।]

रतना : (ज़ोर से) राम! ओ राम!

राम : (उसी तरह बैठे हुए सिवइयाँ खाते-खाते) हाँ, माँ।

रतना : (राम के नज़दीक आते और राम तथा हमीदा को क्रोध से देखते हुए) फिर उस मलेच्छा के साथ खा रहा है। भिष्ट कहीं का।

राम : अले, माँ, छिमइयाँ है, छिमइयाँ, मीथी, मीथी। ईद ती हैं, ईद ती, माँ।

[रतना नज़दीक पहुँचकर राम का हाथ पकड़ती है। हमीदा बैठी-बैठी खाती रहती है। ख़ुदाबख़्श अपने मकान के बाहर निकलता है। उसकी उम्र क़रीब ४५ वर्ष की है। रंग साँवला है। वह ऊँचा पूरा, मोटा-ताजा व्यक्ति है। ईद के कारण धुला हुआ सफ़ेद पाजामा और चिकन का कुरता तथा उस पर हरे रंग की रेशमी सदरी पहने है। सिर पर हरे रंग का ही बड़ा-सा रेशमी साफ़ा बाँधे है।]

रतना : (ख़ुदाबख़्श को न देख हमीदा की तरफ़ क्रोध से घूरते हुए गरजकर) हरामजादी, सौ बार कहा मेरे लड़के के साथ न खेला कर। अपना छुआ, अपना जूठा, खिलाती है, मलेच्छा कहीं की।

[हमीदा पर रतना की घुड़की का कोई असर नहीं पड़ता और उसका खाना जारी रहता है।]

ख़ुदाबख़्श : (उसी तरफ़ नज़दीक आते हुए) बस बहुत हुआ, बहुत हुआ, ख़बरदार, अगर ज़बान चूकी तो।

रतना : **(खुदाबख़्श की तरफ़ देखते हुए)** ब्राह्मन का धरम भिष्ट कराता है और कहता है खबरदार, जबान चूकी तो। उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे।

खुदाबख़्श : **(हमीदा को गोद में उठाते हुए)** मै औरत के मुँह नहीं लगना चाहता। काफिर कहीं की।

रतना : औरत भी तेरे मुँह नहीं लगना चाहती। **(राम को गोद में उठाते हुए)** अपनी शाहजादी को अपने बस में रख।

खुदाबख़्श : क्यों तेरा लड़का भरष्ट होता है ?

रतना : मेरा लड़का तेरे घर नहीं गया था। तेरी लड़की आयी थी।

खुदाबख़्श : **(हमीदा को गोद मे उठाये अपने घर की तरफ जाते हुए)** अब कभी पेशाब करने भी न आयेगी।

रतना : **(राम को गोद में उठाये अपने घर के अन्दर जाते हुए)** वही अच्छा है, धरम तो बचा रहेगा।

खुदाबख़्श : **(घर में जाते-जाते घृणा से)** काफिर और मजहब।

रतना : **(भीतर से)** मलेच्छ। मलेच्छ।

[दोनों अपने-अपने बच्चों के साथ अपने-अपने घरों के अन्दर चले जाते है। नेपथ्य में 'मारो मारो' कोलाहल होता है। खुदाबख़्श बाहर आता है। गली में कुछ मुसलमान लाठियाँ लिये दौड़ते हुए आते हैं।]

खुदाबख़्श : क्या हुआ, बिरादरान ?

एक आगन्तुक : झगड़ा।

ख़ुदाबख़्श : हिन्दू मुसलमानों में ?

दूसरा आगन्तुक : हाँ, हाँ, और किसमें होगा ?

[आगन्तुक दौड़ते हुए दूसरी तरफ़ चले जाते हैं। ख़ुदाबख़्श जल्दी से घर के अन्दर जाता है और एक लाठी लेकर आता है तथा उसी तरफ़ चला जाता है जिस तरफ़ दूसरे मुसलमान गये थे। नेपथ्य में कोलाहल बढ़ता है। हमीदा अपने घर से निकलती है और रतना के मकान के भीतर जाती है। नेपथ्य में कोलाहल होता रहता है। ख़ुदाबख़्श एक हाथ में तेल से भीगे हुए चिथड़े और दूसरे हाथ में एक मशाल लिये हुए आता है। रतना के मकान के इधर-उधर वे चिथड़े रख मकान में आग लगाने का प्रयत्न करता है।]

ख़ुदाबख़्श : (क्रोध से दाँत पीसते हुए) मलेच्छ ! मलेच्छ ! हम मलेच्छ ! ले गालियों का नतीजा, ले। तेरा राम, तेरा मकान, तेरा सब कुछ ख़ाक में मिला दूँ तब तो मेरा नाम ख़ुदाबख़्श। जा, दोज़ख में जा, मय खानदान और दौलत के जा, काफ़िर कहीं की।

[नेपथ्य का कोलाहल और बढ़ता है।]

लघु यवनिका

दूसरा दृश्य

स्थान : रतना के मकान की छत

समय : रात्रि

[लंबी छत है। पीछे की तरफ़ मकान की दीवाल है और सामने की ओर ईंट चूने की रेलिंग। रेलिंग के नीचे भी दीवाल है। दाहिनी और बाँयीं तरफ़ से आग की लपटें और धुँआँ उठ रहा है। बीच-बीच में दाहिनी और बाँयीं तरफ़ से आग के कुछ कण छत पर आते हैं। छत पर राम और हमीदा खड़े हुए बात कर रहे हैं। नेपथ्य मे बीच-बीच में कोलाहल सुनायी देता है।]

हमीदा : ईद ते वादे वदते है, आम।

राम : (आग की लपटों की ओर इशारा कर) औल ईद ते छात होली वी दल रही है, हम्मू।

हमीदा : हाँ, औल होली ता दाना वी हो लहा है, आम।

राम : ईद ते वादे वद लहे है, होली ता दाना हो लहा है।

हमीदा : मैने तो तुधे ईद ती छिमइयाँ थिलाई थीं, आम। तू मुधे होली ती मिथाई नई थिलायदा ?

राम : होली दल दाने पर मेरे घल में मिथाई वनेदी, हम्मू।

[आग की लपटें धीरे-धीरे नज़दीक आने लगती हैं।]

राम : अले होली तो पाछ-पाछ आती जाती है।

हमीदा : कैसी अच्छी, लाल-लाल, पीली-पीली।

[आग के कण और नज़दीक़ आने लगते हैं।]

हमीदा : (कणों को पकड़ने का प्रयत्न करते हुए) जुदनू, आम, जुदनू।

राम : नहीं, छोना, हम्मू, छोना।

[नेपथ्य में ज़ोर से 'हम्मू ! हम्मू !' शब्द होता है।]

हमीदा : अव्वा पुताल लहे है, आम, अव्वा।

[नेपथ्य में जोर से 'राम ! राम !' शब्द होता है।]

राम : माँ वुला लही है, हम्मू, माँ।

[नेपथ्य में फिर ज़ोर से 'हम्मू ! हम्मू !' शब्द होता है।]

हमीदा : (जोर से) हाँ, अव्वा !

नेपथ्य से : अरी कहाँ है, हम्मू ! कहाँ ?

हमीदा : (मुस्कराकर राम से) आम, अव्वा मुधे धूँध लहे हैं।

नेपथ्य से : (जोर से) राम ! राम !

राम : (ज़ोर से) हाँ, माँ !

नेपथ्य से : (ज़ोर से) अरे कहाँ है, राम कहाँ ?

राम : (मुस्कराकर हमीदा से) हम्मू, माँ मुधे धूँध लही हैं।

नेपथ्य से : (ज़ोर से घबराहट के स्वर से) हम्मू ! हम्मू ! कहाँ है, वोल तो ?

हमीदा : (ताली बजाकर नाचते हुए ज़ोर से) आम की छत पल अव्वा, आम की छत पल।

नेपथ्य से : राम ! राम ! कहाँ है, छत पर है ?

राम : (हमीदा के साथ ताली बजाकर नाचते हुए) हाँ, माँ, छत पल ही तो हूँ।

नेपथ्य से : या ख़ुदा !

नेपथ्य से : हे भगवान् !

[राम और हमीदा उसी तरह ताली बजाकर नाचते रहते हैं। आग की लपटें और नजदीक आती हैं। सामने की दीवाल पर दीवाल की कारनिस पकड़कर कठिनाई से ख़ुदाबख़्श चढ़ता हुआ दीख पड़ता है। धीरे-धीरे ख़ुदाबख़्श छत पर पहुँचता है।]

हमीदा : (ख़ुदाबख़्श को देखकर हर्ष से चिल्लाकर उसकी तरफ़ आते हुए) ओ ! अव्वा ! अव्वा !

ख़ुदाबख़्श : (क्रोध से) कम्बख़्त, तू यहाँ क्यों आयी ?

हमीदा : (मुस्कराते हुए) थेलने तो, अव्वा, आम ते छात थेलने तो।

ख़ुदाबख़्श : (अपने साफ़े को उतार रेलिंग से बाँधते हुए घृणा से) मरने को बे शऊर।

[ख़ुदाबख़्श साफ़े को रेलिंग से बाँध हमीदा को गोद में उठाता है।]

हमीदा : औल आम तो इछती अम्मा ले दायगी ?

राम : मैं अपने पैलों छे छीदी से उतर आता हूँ।

[राम छत की दाहनी तरफ़ जाने लगता है, जिधर से आग की लपटें आ रही हैं।]

ख़ुदाबख़्श : हाँ, जा, अपने पैरों से सीढ़ी से उतरकर आ जा।

[राम उसी तरफ़ बढ़ता है।]

खुदाबख़्श : (उसी तरफ़ देखते हुए ज़ोर से) ठहर ! राम ! ठहर !

[राम जो आग की लपटों के बहुत नजदीक पहुँच गया है, रुक जाता है। ख़ुदाबख़्श दौड़कर उसी तरफ़ जाता और उसे दूसरी गोद से उठा रेलिंग में बँधे हुए अपने साफ़े के नज़दीक आकर हमीदा और राम को अपनी दोनों भुजाओं से अपने दोनों तरफ़ के पसवाड़ों मे दाब हाथों से साफ़े को पकड़ नीचे उतरने का प्रयत्न करता है। दोनों तरफ़ से आग की लपटें ख़ुदाबख़्श के नज़दीक पहुँच जाती है।]

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

स्थान : गली

समय : प्रातःकाल

[दृश्य वैसा ही है जैसा पहले दृश्य में था। अन्तर इतना ही है कि रतना के मकान का बहुत सा हिस्सा जल गया है। आग अब बुझ गयी है। रतना के मकान के नज़दीक ही गली के एक किनारे पर राम और हमीदा बैठे हुए हैं। दोनों के बीच मे मिठाई का एक दोना रखा है और दोनों उस दोने में मिठाई खा रहे है। खुदाबख़्श और रतना का प्रवेश।]

ख़ुदाबख़्श : (दोनों बच्चों को मिठाई खाते देख मुस्कराकर रतना से) बहन, राम फिर भरष्ट हो रहा है।

रतना : (मुस्कराते हुए) नही, भाई, सच्चा धरम सीख रहा है।

ख़ुदाबख़्श : शर्त यही है कि बड़े होने पर भी इसी मजहब को को माने।

[दोनों कुछ देर चुप रहकर एकटक बच्चों की तरफ़ देखते है। बच्चों की पीठ उनकी तरफ़ रहने के कारण बच्चे उन्हें नहीं देख पाते। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

रतना : भाई, तुमने राम की जान बचाकर जो जस मुझ पर

किया है उसे मैं...........

ख़ुदाबख़्श : (**बीच ही में**) मैंने ? नहीं, वहन, मैंने तो राम की जान लेने के लिए ऐसी कोई बात नहीं जो उठा रखी हो। उस परवरदिगार ने उसकी जान बचायी। (**रतना की तरफ़ देखते हुए**) वहन, जब मैं छत पर उसे छोड़, और हमीदा को लेकर, आने का इरादा कर रहा था, बल्कि राम को आग से ख़ाक होते हुए जीने से उतरकर आने की सलाह देकर हमीदा को ले उतरने का इरादा कर रहा था, उस वक़्त.....उस वक़्त.....वहन...... (**चुप हो जाता है।**)

रतना : (**ख़ुदाबख़्श की तरफ़ देखते हुए**) हाँ, उस वखत, भाई ?

ख़ुदाबख़्श : उस वक़्त .....उस वक़्त .....मैं ऐसा.....मैं ऐसा कर ही न सका। जैसे किसी ने मुझे ऐसा न करने के लिए मजबूर कर दिया।.....वहन .....वहन.....यह खुदा का पैग़ाम था, खुदा का पैग़ाम।

[**ख़ुदाबख़्श चुप हो जाता है। रतना उसकी तरफ़ देखती रहती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।**]

ख़ुदाबख़्श : (**कुछ ठहरकर**) खुदा ने राम को मेरे हाथ से बचवाकर तुम्हारे मकान जलाने के मेरे गुनाह को मुआफ़ कर दिया।

रतना : मलेच्छ ने काफ़िर का मकान जलाया था, भाई खुदा-वख़्श ने बहन रतना का नहीं।

खुदाबख़्श : इन बच्चों ने, बहन, इन बच्चों ने हमें मलेच्छ और काफ़िर से भाई और बहन बना दिया।

रतना : बच्चे कदाचित् मैली आतमाओं को पवित्तर करने की भगवान की देन हैं।

[राम और हमीदा, जो अब मिठाई खा चुके हैं, उठते और खुदाबख़्श और रतना की तरफ़ घूमते हैं।]

राम : (रतना को देखकर उसी तरफ़ दौड़ते हुए) माँ ! माँ !

हमीदा (खुदाबख़्श को देखकर उसी ओर दौड़ते हुए) अब्बा ! अब्बा !

[राम को खुदाबख़्श और हमीदा को रतना गोद में उठाते हैं।]

रतना : क्यों, बेटा, हम्मू को मिठाई खिलायी ?

राम : हाँ, माँ, इछने तल मुधे ईद ती छिमइयाँ थिलाई थीं, आद मैंने इछे होली ती मिथाई थिलाई है।

[खुदाबख़्श और रतना हँस पड़ते हैं।]

यवनिका

समाप्त

उठाओ खाओ खाना

अथवा

बफे-डिनर

मुख्य पात्र, स्थान

मुख्य पात्र

रंगलाल : खाना देने वाला मेजमान

प्रभावती : मेजमान की पत्नी

विशुद्धानन्द : एक ब्राह्मण मेहमान

जोगेन्द्रसिंह : एक सिक्ख मेहमान

हरीराम : एक हरिजन मेहमान

रशीदखाँ : एक मुसलमान मेहमान

स्थान

नयी दिल्ली

समय

वर्त्तमान

स्थान : नयी दिल्ली में न० १ के मकान का एक विशाल कमरा

समय : रात्रि

[आधुनिक ढंग का एक विशाल कमरा है। कमरे के बीचों-बीच एक लम्बी टेबिल पर विविध प्रकार की खाद्य-सामग्री सजी है। इसी टेबिल के निकट एक अन्य टेबिल पर चीनी के (फुल साइज़ के) प्लेट एक दूसरे पर रखे हुए हैं। इन्हीं प्लेटों के निकट एक ओर बड़े छोटे चम्मच और काँटे रखे है। दूसरी ओर कुछ नेपकिन तह किये हुए रखे है। कुछ खानसामे वर्दी लगाये हुए इधर-उधर खड़े है। कमरे में बिजली का तेज प्रकाश है। न० १ से ६ तक व्यक्तियों का अनेक स्त्री-पुरुष मेहमानों के साथ प्रवेश। इनमें सभी वर्गों के व्यक्ति है। कोई किसी आयु का है और कोई किसी आयु का। कोई गौर वर्ण है, कोई गेहुँएँ रँग का, कोई साँवला। कोई शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहने है, कोई शेर-वानी और ढीला पाजामा और कोई पश्चिमी ढंग के वस्त्र। कुछ व्यक्ति खादी का कुरता-धोती पहने है और गांधी टोपी लगाये है। स्त्रियाँ साड़ी और सलूके पहने हैं तथा आभूषण भी धारण किये हैं।]

जोगेन्द्रसिंह : अच्छा, बफे-डिनर का इन्तजाम है ?

रंगलाल : जी, हाँ। आजकल सब से नये ढंग का यही प्रबन्ध माना जाता है।

रशीदखाँ : इस इन्तजाम में सब से बड़ी खूबी तो यह है कि आदमी अपनी मंशा के मुताबिक जो चीज उसे पसन्द होती है वह ले लेता है। और कोई चीज़ फिजूल जाया नही होती।

हरीराम : और टेविल-कुर्सियों आदि के प्रबन्ध में जो कठिनाइयाँ आती हैं और खर्च होता है, वह भी नहीं होता।

प्रभावती : अच्छा, चलिए शुरू किया जाय।

[सब लोग टेबिल के निकट जा एक-एक प्लेट, एक-एक बड़ा चम्मच, एक-एक काँटा और एक-एक नेपकिन उठा उस प्लेट में खाने की सामग्री रखते है। और कोई खड़े-खड़े तथा कोई इधर-उधर घूमते हुए खाना आरम्भ करते हैं। विशुद्धानन्द कोई प्लेट या खाद्य-सामग्री नहीं उठाता और एक मेहमान बालूशाही और एक कचौड़ी उठाकर अपने रूमाल में बाँध अपने जेब मे रखता है।]

प्रभावती : (इस मेहमान के पास जाकर) कहिए, आप कुछ नहीं लेगे ?

मेहमान : (जेब का रूमाल निकालकर दिखाते हुए) नही, मैंने एक बालूसाही और एक कचौड़ी ले ली है।

[यकायक एक मेहमान का प्लेट घूम-घूमकर खाने के कारण उलट जाता है। उसके कपड़े बिगड़ते हैं, फर्श बिगड़ता है

ग्रौर उसी के निकट खड़े हुए एक मुसलमान मेहमान के कपड़े बिगड़ते हैं।]

मुसलमान मेहमान : (चिल्लाकर) लाहोल बलाकूबत्। यह आपने क्या किया ?

प्रभावती : (दोनों के निकट ग्राकर) कोई हर्ज़ नहीं, कोई हर्ज़ नहीं। **(एक खानसामा से)** आप लोगों को बाथ-रूम में ले जाग्रो। **(दूसरे खानसामा से)** फर्श साफ करो।

[इन दोनों मेहमानों को एक खानसामा लेकर जाता है ग्रौर दूसरा फर्श साफ करता है। इसी बीच एक मेहमान अपना अधखाया प्लेट टेबिल पर रख देता है।]

प्रभावती : (उसके पास जाकर) क्यों आपने इतनी जल्दी कैसे समाप्त कर दिया ?

मेहमान : श्रीमती जी, उठाग्रो खाग्रो खाने का यह मेरा पहला अनुभव है। आपने इतने तो पदार्थ तैयार किये हैं ग्रौर छोटा-सा प्लेट। मीठा-नमकीन सब साथ मिल-मिलाकर ऐसा चूं-चूं का मुरब्बा हो गया है कि खाया जाना कठिन है।

प्रभावती : (मुस्कराकर) तो दो प्लेटें ले लीजिए। चलिए मैं ठीक किये देती हूँ। **(टेबिल के निकट जा एक खानसामे से)** साहब के लिए मीठी चीज़ें एक प्लेट में ग्रौर नमकीन दूसरे प्लेट में इस तरह सजा दो कि अलग-अलग रहें।

मेहमान : लेकिन दोनों हाथ में दो प्लेट ले लूंगा तो खाऊँगा कैसे ?

प्रभावती : (मुस्कराकर खानसामे से) साहब के दोनों प्लेट दूसरे

कमरे में ले जाकर एक टेबिल पर रख दो और कुर्सी रख दो। आप बैठकर खायँगे।

[खानसामा इस मेहमान के लिए दो प्लेट सजाने लगता है।]

प्रभावती : (विशुद्धानन्द के पास जाकर) पंडित जी, आप कुछ नहीं खाइयेगा ?

विशुद्धानन्द : मैं ? मैं श्रीमती जी ? (ज़ोर से) सुनिए, आप ! और सुनें सब लोग !

[विशुद्धानन्द के इतनी ज़ोर से बोलने पर सब लोगों का ध्यान उसकी ओर आर्कषित होता है।]

विशुद्धानन्द : आप पूछती हैं, श्रीमती जी, मैं कुछ नहीं खाऊँगा ? मैं पूछता हूँ खाऊँ क्या ? मेरी तो सारी ज्ञानेन्द्रियाँ, उठाओ खाओ खाने का यह दृश्य देखकर ऐसी तृप्त हुई हैं कि कर्मेन्द्रियाँ किसी भी कृति के लिए असमर्थ हो गयी हैं और जो मन प्राणी के सारे कार्यों का संचालन करता है उसमें क्षुधा जैसी वस्तु बाकी नहीं रही है कि वह खाने की तनिक भी प्रेरणा दे। रंगलाल जी ! प्रभावती जी ! इस उठाओ खाओ खाने का दृश्य जीवन में मैंने पहली बार देखा है।

जोगेन्द्रसिंह : ऐसा, पंडित जी ?

विशुद्धानन्द : जी, हाँ, सरदार साहब ! और एक बार देखने के पश्चात् दूसरी बार इसे भगवान् न दिखावे। मैं भारतीय संस्कृति का एक छोटा-सा उपासक हूँ। भारतीय संस्कृति में भोजन का सबसे बड़ा महत्त्व है। यहाँ पवित्र प्रणाली से बना

हुआ पवित्र भोजन, पवित्रता से परोसा हुआ, पवित्र ढंग से खाया जाता था।

हरीराम : तो आप, पुरानी दलित-गलित छुआछूत का प्रतिपादन कर रहे है ?

दूसरा मेहमान : ब्राह्मण ठहरे न।

तीसरा मेहमान : फिर नाम है पंडित विशुद्धानन्द ।

[अट्टहास]

विशुद्धानन्द : जी हाँ, मैं ब्राह्मण हूँ और अपने नाम के अनुरूप सर्वथा विशुद्ध, जिसे आप में से कोई ऐसा नहीं है जो न जानता हो। मुझे ब्राह्मण होने का गर्व है। अपने नाम के अनुसार आचरण पर भी अभिमान है। पर इसी के साथ आप सब यह भी जानते हैं कि मैं दकियानूसी ब्राह्मण नहीं हूँ और छुआछूत भी नहीं मानता। मुसलमानों के घर में मुस्लिम बहनों द्वारा बनाया हुआ निरामिष भोजन मैंने अनेक बार किया है। हरिजन भाइयों के घर में दाल-भात खाया है। दिल्ली के ही नहीं इस देश के जो काँग्रेसी भाई मुझे जानते है वे इस बात को भी जानते हैं।

एक काँग्रेसी : मैं पंडित जी के संबंध में इस बात की तो कंठ-पर्यन्त गंगाजल में खड़े होकर गवाही दे सकता हूँ।

[अट्टहास]

विशुद्धानन्द : परन्तु, छुआछूत न मानना किसी भी जाति के हाथ का बनाया अथवा लाया हुआ भोजन यदि शुद्ध हो तो उसे खा लेना एक बात है और इस उठाओ खाओ खाने में

खाना एक दूसरी बात।

रशीदखाँ : यह कैसे, पंडत जी ?

विशुद्धानन्द : वही बताता हूँ, मौलाना साहब। इस उठाओ खाओ खाने में खाना एक दूसरे की जूठन खाना है और मैं अपनी पुत्री तथा पुत्रादि का भी जूठा खाने के लिये तैयार नहीं। जरा देखिये तो ! इस उठाओ खाओ खाने का दृश्य ! जरा-जरा से चीनी के प्लेट, उसमें अनेक प्रकार का थोड़ा-थोड़ा-सा खाना; ज्यादा रखने की गुजाइश नहीं। किसी को किसी वस्तु की फिर आवश्यकता हो तो अपने पूरे प्लेट को टेबिल पर रख जूठे हाथ से अनेक वस्तुओं को चम्मच से और पूरी आदि वस्तुओं को जूठे हाथ से ही उठा-उठाकर अपने प्लेट में रखते जाना यह धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, पर आरोग्यता जिसे हम हाईजीन कहते है, उस दृष्टि से भी सर्वथा अनुचित है।

एक डाक्टर मेहमान : (सिर हिलाते हुए) यह तो पंडित जी कुछ दूर तक ठीक कह रहे हैं।

विशुद्धानन्द : फिर जरा भोजन को स्वाद की दृष्टि से भी देखिए।

हरीराम : जो ब्राह्मणों के लिए सबसे प्रधान वस्तु है।

विशुद्धानन्द : जी हाँ। भारतीयों में इस प्रकार के भोजों के अवसर पर बड़े-बड़े थालों में सामग्री आती है। पृथक्-पृथक् वस्तु के पृथक्-पृथक् स्वाद का आनन्द मिलता है। पश्चिमी भोजों में यदि प्लेट छोटे रहते है तो एक बार में एक वस्तु ही परोसी जाती है। यहाँ छोटे से छोटे प्लेट में जैसा अभी

मेरे एक भाई ने कहा, मीठे नमकीन सब का चूँ-चूँ का मुरब्बा।

कुछ व्यक्ति : (एक साथ) हाँ, यह तो ठीक है।

विशुद्धानन्द : यदि कोई भारतीय ढंग से जमीन पर अथवा पश्चिमी ढंग से टेबिल पर बिठाकर भोजन और खाने का प्रबन्ध नहीं कर सकता तो भोज आदि देवे ही क्यों ? इस देश में सैकड़ों नहीं सहस्रों की पंगत होती है। खड़े-खड़े घूमते हुए खाना। कैसा वीभत्स दृश्य देखा अभी हम सब ने जब एक भाई का प्लेट ही उलट गया। एक पुरानी कथा आपको बताऊँ।

एक मेहमान : हाँ, कथावाचक भी तो रहे हैं पंडत जी।

विशुद्धानन्द : जी हाँ, और उसका भी मुझे कम गर्व नहीं है। यह सारी सृष्टि अनादि काल से मानवों के जीवन की कथा ही तो रही है और अनंतकाल तक रहने वाली है। उस कथावाचन से श्रेष्ठ और कौनसा कर्म हो सकता है ? मैं कथावाचक रहा हूँ, अभी भी हूँ, और जीवनपर्यन्त रहने वाला हूँ। जो कथा मैं आपको बता रहा था वह है भोज के समय की। एक दिन की सभा में राजा भोज ने सभा में आने वाले हर सभ्य को मूर्ख कहना आरम्भ किया। आने वालों में एक आशुकवि भी थे। उन्होंने मूर्खो के चार प्रधान लक्षणों का उसी समय एक श्लोक बना दिया और कहा कि इन चार लक्षणों में कोई भी मुझ पर लागू नहीं होता। अतः हे राजन्, मैं मूर्ख क्यों ? उन चार लक्षणों में एक था

"खादन न च्छामि" अर्थात् मैं चलते हुए नहीं खाता।

एक मेहमान : तो आपकी दृष्टि से हम सब मूर्ख हैं।

[अट्टहास]

विशुद्धानन्द : यह तो छोटे मुँह बड़ी बात कहना होगा। पर इस उठाओ खाओ खाने के आयोजन को मै मूर्ख-आयोजन अवश्य कहूँगा; इतना ही नहीं, आरोग्यता के सिद्धान्तों के विपरीत अपवित्र और वीभत्स आयोजन। इस उठाओ खाओ खाने के दृश्य को पहली बार ही देखने के पश्चात् मेरे मन में ऐसी ग्लानि की उत्पत्ति हुई है कि मैं इसके विरोध में एक आन्दोलन आरम्भ करूँगा।

जोगेन्द्रसिंह : इक्क दो तीन।

[अट्टहास]

विशुद्धानन्द : मैं बैठक खाने में बैठता हूँ। आप लोग भोजन कर पधारिए।

प्रभावती : आपके लिए, पंडत जी मै अलग थाल लगवा देती हूँ, आप बैठकर भोजन करिए।

विशुद्धानन्द : नहीं, आज नहीं, श्रीमती जी। मैंने आरम्भ में ही कही थी अपनी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और मन की अवस्था, फिर कभी आकर खा जाऊँगा। मेरा तो यह घर ही है। (**प्रस्थान**)

[सब का खाना बंद सा हो जाता है। एक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता।]

रंगलाल : पंडित जी के सदृश आदमी भी सठिया जाता है।

[कुछ देर निस्तब्धता।]

रंगलाल : हम लोगों ने भी खाना क्यों बंद कर दिया ? हम लोग तो भोजन समाप्त करें।

[फिर कुछ देर निस्तब्धता।]

एक महिला : (अपने प्लेट को टेबिल पर रखते हुए) मुझसे तो अब न खाया जायगा।

[प्रायः सभी महिलाएँ और अनेक व्यक्ति अपने-अपने प्लेट टेबिल पर रख देते हैं।]

यवनिका

समाप्त

बूढ़े की जीभ

के नज़दीक ही एक छोटा-सा रेशमी ग़लीचा बिछा है, जिस पर पलँग रखा है। पलँग के पाये चाँदी के है और उस पर स्वच्छ शैया है। बाँयीं ओर की दीवाल के नज़दीक भोजन करने के लिए दो पटे रखे हैं—एक बैठने और दूसरा थाल रखने के लिए। पटे पर हुकुमचन्द बैठा हुआ भोजन कर रहा है। हुकुमचन्द की अवस्था लगभग ६५ वर्ष की है। उसका रंग गेहुँआँ है और शरीर साधारण ऊँचा, पर बहुत ही दुबला। वह केवल धोती पहने है। ऊपर का शरीर खुला है। शरीर की एक-एक हड्डी दिखती है। सिर, मूँछों और भवों के छोटे-छोटे बाल तथा शरीर की रोमावली सब सफेद हो गये हैं। उसके सामने भोजन की बहुत प्रकार की सामग्री रखी हुई है। हुकुमचन्द बहुत झुक-झुक ध्यान-पूर्वक देख-देखकर खाता है, जिससे जान पड़ता है उसे बहुत कम दिखायी देता है। वह बोलता ज़ोर से है और कठिनाई से सुनता है, जिससे मालूम होता है कि उसकी सुनने की शक्ति भी बहुत कम हो गयी है। सारे संभाषण में हुकुमचन्द बराबर खाता रहता है। उसके पास ही उसका नौकर खड़ा है। नौकर की उम्र करीब चालीस वर्ष की है। वह काले रंग का कुछ ठिगना और दुबला मनुष्य है। घुटनों तक चढ़ी हुई धोती को छोड़कर और कोई वस्त्र शरीर पर नहीं है।]

हुकुमचन्द : (ज़ोर से) इतनी देर! बघार लगाने में इतनी देर लग गयी! यदि चूल्हे में आग है तो करछुली को तपने में कितनी देर लग सकती है? अगर चौके में घी, हींग और जीरा है तो दाल के छौकने में इतनी देर का काम क्या?

जा, हल्कू, जा, देख तो।

[हल्कू का जीने से ऊपर की मंजिल को प्रस्थान।]

हुकुमचन्द : (अपने आप) यह रसोइया बिलकुल बेकाम हो गया है। एक घंटे के काम में दस घंटे लगाता है। दाल में बघार ही तो देना था। दाल कुछ सिजाना थोड़े ही थी। करछुली तपाकर उसमें घी डालने भर का काम था। ठीक तरह करछुली तप गयी होती तो घी कड़कड़ाने लगता। कड़कड़ाते हुए घी में हींग और जीरा ही तो डालना था और फिर उस करछुली को दाल में। इसमें इतनी देर!

[हल्कू के साथ रसोइये का ऊपर से प्रवेश। रसोइये की अवस्था लगभग पचास वर्ष की है। वह गौरवर्ण का ठिंगना पर बहुत मोटा मनुष्य है। बाल सफेद हो चले हैं। कमर में एक मैला-सा गमछा बाँधे है और कन्धे पर अत्यन्त मैला यज्ञोपवीत दिखता है। वह एक रकाबी में चावल और दाल की कटोरी लिये है। इन्हे वह पटे पर रखता है।]

हुकुमचन्द : (ध्यानपूर्वक चावल की रकाबी और दाल की कटोरी को देखकर, ग़ौर से रसोइया को देखते हुए) महाराज, इतनी देर का क्या काम था? दाल में बघार देने में घंटों! इतने से काम में तो इतनी देर लग नहीं सकती थी। चूल्हे में आग तो होगी ही। करछुली आग में रखने का ही तो काम था। तेज आग में करछुली को तपते क्या देर लगती है? उसके तपने के बाद उसमें थोड़ा-सा घी ही तो डालना था। जाड़े का मौसम भी नहीं कि घी जम गया

हो। पिघले हुए घी को गरम करछुली में कड़कड़ाते क्या देर लग सकती थी ? और घी कड़कड़ाने के बाद उसमें हींग और ज़ीरा ही तो डालना था।

रसोइया : सरकार……

हुकुमचन्द : महाराज, आपका मन अब काम में नहीं लगता। किसी दिन भी तो रोटी ठीक नहीं बनती। कभी दाल में बघार नहीं तो कभी आलू के रसे में दही नदारत। कभी अरबी में पूरा घी नहीं तो कभी परवल में बीजे ही बीजे। कभी करेला कडुआ तो कभी भिंडी छिली नहीं। कभी लौकी कड़ुई तो कभी ककड़ी कानी। कभी रायते में पूरी राई नहीं तो कभी श्रीखंड में जायफल लापता। कभी कचौरी में गरम मसाला नहीं तो कभी समोसे ठंडे। कभी पूरनपूड़ी का पूरन गायब तो कभी मिस्सी रोटी में बेसन ही बेसन। कभी भजिये चीठे तो कभी पकोड़े कड़े। कभी कलाकन्द में रवा नहीं तो कभी पेड़े में शक्कर ही शक्कर। कभी मलाई में ठीक तरह से गुलाब नहीं तो कभी बिना लच्छे की रबड़ी, मानो दूध ही दूध।

रसोइया : हुज़ूर……

हुकुमचन्द : रसोइयाजी, काम में मन न लगता हो तो इस्तीफ़ा दे दो। ऐसी रद्दी रोटी तो मैंने जनम करम में नहीं खायी। तनखाय देने को पैसे होंगे तो एक नहीं, दस रसोइये आ जायँगे। घी, शक्कर, सीधा-सामान, साग, भाजी, दूध, दही के लिए पास में टके होंगे तो जो चाहे सो

बनवा लूंगा। आप यह न सोचिए कि आपको ही रसोई बनानी आती है। पिरथी निर्बीज नहीं हो गयी है। पचासों और सैकड़ों रसोइये जूतियाँ चटकाते हुए घूमते फिरते हैं। मैं तो यह सोचता था कि पुराने आदमी हैं। जाने दो, भाई, जाने दो, पर बरदास की हद होती है, महाराज, कहाँ तक सहूँ ? एक दिन की बात हो तो हो। जब तक जीना है तब तक खाना तो पड़ेगा ही। जाइए, पापड़ लाइए।

[**रसोइये का प्रस्थान।**]

हुकुमचन्द : (**अपने आप**) तनखाय लगती है, सामान खरच होता है, और रसोई का यह हाल! घी आग जलाने को झोंकते होंगे। शक्कर चोरी जाती होगी। साग-भाजी के पैसों में से खा जाते होंगे। तब रसोई ठीक बने तो कैसे बने ? रोज रसोई की पंचायत! सुबह के कलेऊ में गड़-बड़। दोपहर का भोजन ठीक नहीं। तीसरे पहर के तिप-हरे में गड़बड़। शाम की ब्यालू बुरी। रात का दूध तक खराब। हर वखत कोई न कोई चकल्लस लगी ही रहती है।

[**रसोइये का प्रवेश। वह पापड़ परसता है।**]

हुकुमचन्द : देखो, महाराज, आज अखीरी वखत कहे देता हूँ। रोज-रोज मुझसे यह हाय-हत्या न होगी। इसी हाय-हत्या के मारे जो थोड़ा-बहुत खाता हूँ, वह भी अंग नहीं लगता। लगे कहाँ से ? खून तो खौलने लगता है। ठंडा खून रहे, उसमें खाना पहुँचे तो हजम हो। हजम हो तो खून बने। इसी परेशानी के मारे शरीर की हड्डी-हड्डी निकल आयी

है। अब अगर कलेऊ, भोजन, तिपहरे, ब्यालू रात के दूध किसी में भी गड़बड़ हुई तो मुझसे बुरा कोई न होगा। एक मिनिट में मैं टीनपाट कसवा दूंगा। दोनों कान खोलकर सुन लो, दोनों कान !

[हुकुमचन्द उठता है। कमर झुक जाने के कारण झुककर चलता है। हल्कू हाथ पकड़कर धीरे-धीरे बाँयीं ओर के एक दरवाज़े से उसे बाहर ले ज' ता है। रसोइये का प्रस्थान। दाहनी ओर के एक दरवाज़े से सरदारमल और अनोखेलाल का प्रवेश। सरदारमल की अवस्था लगभग ३५ वर्ष की है। उसका रंग गोरा है। वह ऊँचा-पूरा, मोटा-ताज़ा साधारणतया सुन्दर मनुष्य है। लंबे बाल और छोटी-छोटी मूँछें हैं। वह सफ़ेद कुरता और धोती पहने है, किन्तु नंगे सिर है। अनोखेलाल की अवस्था लगभग ४५ वर्ष की है। वह गेहुँएँ रंग का ऊँचा, किन्तु दुबला मनुष्य है। सिर और मूँछों के बाल कुछ-कुछ सफ़ेद हो चले हैं। वह टसर की शेरवानी और सफ़ेद पाजामा पहने है। सिर पर कश्मीरी कामदार टोपी है।]

अनोखेलाल : तो अब तक कोई लाभ नहीं है, कुमर साहब ?

सरदारमल : कोई नही, वैद्य जी, दस्त होते ही जाते हैं।

अनोखेलाल : जब तक उनका अन्न न ़ंद किया जायगा, तब तक दस्त बंद होना कठिन है।

[दोनों दो कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। हुकुमचन्द को हाथ पकड़े हुए हल्कू लाता है और सावधानी से एक कुरसी पर बैठाता है। हल्कू का प्रस्थान।]

सरदारमल : (**ज़ोर से**) वाबूजी, वैद्यजी आये हैं।

हुकुमचन्द : (**ज़ोर से**) कौन ? कौन ? कौन आया है, बेटा ?

सरदारमल : (**और ज़ोर से**) वैद्यजी, बावूजी।

हुकुमचन्द : (**ज़ोर से**) वैदजी, अच्छा, अच्छा। कहाँ हैं, बेटा ?

सरदारमल : (**ज़ोर से**) यहीं आपके सामने बैठे है, वावूजी।

हुकुमचन्द : (**ज़ोर से**) कहाँ ? कहाँ, बैठे है ?

सरदारमल : (**और ज़ोर से**) आपके सामने ही तो, वावूजी।

अनोखेलाल : (**ज़ोर से**) आपके सामने ही तो हूँ, लाला साहव।

हुकुमचन्द : अच्छा, अच्छा, मुझे कुछ कम दिखने लगा है, वैदजी। क्या कहूँ ? भोजन कम हो गया है तव आँख की जोत कैसे ठीक रहे। आँख की जोत तो घी से रहती है। घी पेट में पहुँचता ही नहीं। और जो पहुँचता है सो हजम नहीं होता।

[**हल्कू का रकाबी लेकर प्रवेश। रकाबी मे पान, किमाम, मसाले की सुपारी, इलायची, लौंग, जायपत्री बहुत सी चीज़ें है। वह एक छोटी टेबिल उठा, उसे हुकुमचन्द के बहुत नज़दीक रख, उस पर रकाबी रखता है।**]

हल्कू : (**ज़ोर से**) पानदान रखा है, हुजूर। (**प्रस्थान**)

हुकुमचन्द : (**पान उठाकर खाते हुए**) हाजमा तो इतना बिगड़ गया है, बैदजी, कि ठिकाना ही नहीं। कुछ भी खाता हूँ तो पेट में घुड़दौड़-सी मच जाती है। फिर गरड़-गरड़ गाड़ी-सी चलती रहती है। कभी-कभी पेट फूलकर नगाड़ा हो

जाता है। बुरी-बुरी डकार। और जब देखो तब भूख लगी हुई।

अनोखेलाल : यह सब, लाला साहब, अवस्था के कारण है।

हुकुमचन्द : (ज़ोर से) क्या, क्या, क्या कहा आपने ? मैं कुछ ऊँचा भी सुनने लगा हूँ।

अनोखेलाल : (ज़ोर से) मैंने कहा कि कम दिखाना, कम सुनना, हाज़मे का ख़राब होना, यह सब अवस्था के कारण है।

हुकुमचन्द : अवस्था के कारन ! अवस्था के कारन ! क्या कहते है, बैदजी ? मेरे पिता अस्सी साल की उमर में नजदीक से नजदीक लिखा हुआ पोस्टकार्ड बिना चश्मे के पढ़ते थे। मेरी माँ पचासी साल की उमर में बिना ऐनक लगाये सुई में डोरा पिरो देती थीं, और वह भी रात को। मेरे दादा नव्बे साल के होकर मरे, पर कान के इतने सच्चे थे कि अगर कमरे में तिनका भी गिर पड़े तो उसकी आवाज तक उनके कान में पहुँच जाती थी। इसका कारन था, बैदजी, उन सबकी खुराक थी। अच्छा हाजमा था। पिताजी अस्सी साल की अवस्था में सवेरे पूरे डेढ़ सेर दूध और आध सेर पूरी का कलेवा करते थे। दोपहर को भोजन के साथ खिचड़ी बनती थी। उसमें आध सेर घी रहता था। तीसरे पहर के तिपहरे में बारों महीने डेढ़ पाव बादाम और डेढ़ पाव पिस्ते तलवाकर उसमें सेंधा नमक और काली मिरच भुरकाकर खाते थे। (**मुँह में पानी आ जाता है, उसे**

गुटकते हुए) शाम को व्यालू में हमेशा पराठे रहते थे और वे भी पूरे तीन पाव। और इस सबके ऊपर, वैदजी, रात को सोते वक़्त अढ़ाई सेर दूध की रबड़ी पीते थे।

अनोखेलाल : परन्तु आपका हाजमा······

हुकुमचन्द : क्या कहा मेरे दादा? उनका तो पूछिए मत। वे नव्वे साल तक जिये, लेकिन नव्वे साल की उमर में भी पट्ठे दिखते थे, पट्ठे। उनकी ख़ुराक······

अनोखेलाल : (बहुत ज़ोर से) मैं कह रहा था कि आपका तो हाजमा ठीक नहीं है।

हुकुमचन्द : (ज़ोर से) हल्कू! ओ हल्कू!

[हल्कू का दौड़ते हुए प्रवेश। वह हुकुमचन्द के बहुत निकट खड़ा होता है।]

हुकुमचन्द : कौन?

हल्कू : (ज़ोर से) मैं हूँ, सरकार।

हुकुमचन्द : अबे तू कितना भूलता है? रकाबी में न तांबूल-विहार है न पिपरमेंट। मुझे पान खाना है, या घास?

[हल्कू दौड़कर जाता है।]

हुकुमचन्द : (अनोखेलाल से) आपने क्या कहा मेरा हाजमा ठीक नहीं? पर, वैदजी, इसे ठीक करने की ज़िम्मेदारी किस पर है? आप पर। आपकी दवा······

अनोखेलाल : आपको अन्न छोड़ना होगा, लाला साहब।

[हल्कू तांबूलबिहार और पिपरमेंट की शीशी रकाबी में रखकर जाता है।]

हुकुमचन्द : **(ज़ोर से बिगड़कर)** क्या, अन्न छोड़ना पड़ेगा ! अजी, वैदजी, इसका नाम न लेना । अन्न छोड़ना पड़ेगा ! अन्न छोड़ दूंगा तो अभी उठ-बैठ तो लेता हूँ, फिर तो हिल-डुल भी न सकूँगा । अन्न छोड़ना पड़ेगा ! अजी खाता ही क्या हूँ, कि अन्न छोड़ दूं ? पिताजी जितना खाते थे उससे तो सब मिलाकर आधा भी पेट में न जाता होगा । दादाजी जितना खाते थे, उससे चौथाई नहीं । फिर उनसे तो मेरी उमर भी कम है । अन्न छोड़ना पड़ेगा ! आपकी दवा कार नहीं करती है तो बेचारे अन्न पर आफत ! अजी, वैदजी, आप लोग इलाज करना नहीं जानते । मुझे याद है अपने पिताजी की दो बीमारियों की । उस समय इस शहर में शंकररावजी वैद थे । क्या पूछना । दूर-दूर उन-सा वैद न था । वे जहाँ पहुँचे, बीमारी भागी । दवा देने की ज़रूरत ही नहीं । उनके दर्शन से बीमारी भागती थी, दर्शन से । पिताजी को एक बार दस्त हुए । दिन में डेढ़-डेढ़ सौ दस्त । वे एक तो कभी बीमार होते ही नहीं थे फिर थोड़ी-बहुत बीमारी में वैद, डाक्टर को न बुलाते थे । जब दस्त बहुत बढ़े तब हम लोगों ने जबर्दस्ती शंकररावजी को बुलाया, उन्होंने फिर भी नहीं । डेढ़-डेढ़ सौ दस्त लगते थे, वैदजी, डेढ़-डेढ़ सौ । आप मानेंगे नहीं, पर आँखों देखी बात बताता हूँ, आँखों देखी । शंकररावजी ने आते ही एक खुराक दवा दी, ओरसे पर घिसकर । और एक खुराक से दस्त बन्द । डेढ़-डेढ़ सौ दस्त गायब । दूसरे दिन बँधा ठोस पाखाना ।

(कुछ रुककर) एक दफा पिताजी को बुखार आया। क्या कहूँ ऐसा बुखार कि दिन और रात उतरता ही न था। बड़ी मुश्किल से शंकररावजी बुलाये गये। एक खुराक शहद में मिलाकर चटायी। एक ही खुराक से पसीने की धारें लग गयीं, धारें। घड़ों पसीना निकला होगा, वैदजी, घड़ों। विस्तर की चादर नहीं, गद्दा तक भींग गया। एक खुराक में बुखार रफूचक्कर और फिर तारीफ यह कि उसके बाद दस साल तक बुखार न आया। अजी, वैदजी, इलाज क्या जादू था, जादू। दवा आपकी न लगे और अन्न बन्द कर दो! यह भी कोई······(जोर से) हल्कू! ओ हल्कू!

[**हल्कू का दौड़कर प्रवेश। वह बहुत नजदीक जाकर खड़ा हो जाता है।**]

हुकुमचन्द : कौन······कौन······हल्कू ?

हल्कू : जी हजूर।

हुकुमचन्द : चल, ले तो चल, मैं पाखाने जाऊँगा (**हल्कू हाथ पकड़कर उठाता है। जाते-जाते**) वैदजी, अभी आप मेरी बीमारी का निदान ही नहीं कर सके हैं। अन्न बन्द कर दो! (**रुककर**) अजी अन्न बन्द करना आजकल खेल-तमासा हो गया है। पहले जमाने में एक तो अन्न बन्द किया ही न जाता था और अगर किया जाता था तो बड़ी कड़ी बीमारियों में। मुझे तो दस-बारह दस्त ही होते हैं। मैंने बताया न आपको, पिताजी को एक बार डेढ़-डेढ़ सौ दस्त

हुए थे, डेढ़-डेढ़ सौ। शंकररावजी ने अन्न वन्द करने की वात भी न सोची थी ? अन्न वन्द करना कोई सहज वात है ! इस उमर में आप अन्न वन्द करा देंगे तो फिर वह कभी शुरू भी होगा ? (**आगे बढ़ता है। फिर रुककर**) और फिर अन्न वन्द हो गया तो दस्त आपसे आप वन्द हो जाँयगे। आपने उसमें किया ही क्या ? दवा से फायदा थोड़े ही हुआ। आप तो अन्न वन्द करने की वात करते हैं, शंकररावजी तो परहेज तक न कराते थे। विना पर-हेज के, सुना, बैदजी, विना परहेज के अच्छा करते थे। (**जाते-जाते**) सोचिए, वीमारी का निदान तो कीजिए। अन्न वन्द करदो ! अन्न वन्द !

[**हुकुमचन्द का हल्कू के साथ प्रस्थान। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।**]

सरदारमल : निदान के सम्वन्ध में आपने विचार किया, वैदजी ?

अनोखेलाल : वहुत अच्छी प्रकार, कुमर साहव।

सरदारमल : अच्छा।

अनोखेलाल : चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट यह सव ग्रन्थ मैंने अच्छी प्रकार देख डाले।

सरदारमल : ठीक।

अनोखेलाल : लाला साहव को जीभ की वीमारी है, कुमर साहव।

सरदारमल : जीभ की वीमारी !

अनोखेलाल : हाँ, जीभ की वीमारी।

सरदारमल : अर्थात् ?

अनोखेलाल : अर्थात् उनकी पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों में नव इन्द्रियों ने अपना सारा कार्य बन्द कर अपना समस्त बल एक जीभ को दे दिया है।

सरदारमल : नवों इन्द्रियों ने अपना सब काम बन्द कर अपना सारा बल जीभ को दे दिया है!

अनोखेलाल : जी हाँ। नव इन्द्रियाँ एकदम निर्बल और दसवीं इन्द्रिय अत्यधिक बलवान है।

सरदारमल : अच्छा।

अनोखेलाल : फल यह हुआ कि जीभ की आहार और वक्तृत्व दोनों शक्तियाँ अत्यन्त बलिष्ठ हो गयी हैं।

सरदारमल : हाँ, सो तो दिखता ही है। दिन-रात तरह-तरह का भोजन बनवाया जाता है और फिर भी रसोइये पर डाँट पर डाँट। बात तो किसी की सुनते ही नहीं अपनी ही कहते हैं।

अनोखेलाल : मनुष्य के दो कान और जीभ इसलिए होते हैं कि वह अधिक सुने और कम बोले, परन्तु यहाँ···यहाँ तो नवों इन्द्रियों का सारा पुरुषार्थ अकेली जीभ को मिल गया है।

सरदारमल : यह तो विचित्र बीमारी है।

अनोखेलाल : नहीं, इस अवस्था में नव इन्द्रियाँ शिथिल और जीभ सभी की बलशाली हो जाती है, परन्तु···परन्तु ······(चुप हो जाता है।)

सरदारमल : परन्तु ?

अनोखेलाल : परन्तु यदि वह इतनी शक्तिशाली हो जाय जितनी

आपके पिताजी की हो गयी है तब तो······तब तो······
(चुप हो जाता है।)

सरदारमल : (उत्सुकता से अनोखेलाल की ओर देखते हुए) तब तो ?

अनोखेलाल : (सरदारमल की ओर देखते हुए) तब······तब तो रोग असाध्य हो जाता है।

सरदारमल : (आश्चर्य से) असाध्य, वैद्यजी !

अनोखेलाल : हाँ, असाध्य, कुमर साहब।

[दोनों एक दूसरे को देखते हैं।]

यवनिका

समाप्त

चौबीस घंटे

पात्र, स्थान, समय

पात्र : एक वृद्ध, उसके दो पुत्र, उनका नौकर

स्थान : एक नगर

समय : जब रेडियो में चौबीसों घंटे ब्रॉडकास्ट करने की घोषणा की

स्थान : वृद्ध के मकान का बैठकखाना

समय : प्रातःकाल

[बैठकखाना आधुनिक ढंग से सजा हुआ है। कमरा और सजावट को देखने से मालूम होता है कि किसी सम्पन्न मध्यम श्रेणी के व्यक्ति का मकान है। एक सोफा पर एक वृद्ध बैठा हुआ एक चिट्ठी पढ़ रहा है, उसके निकट ही कुर्सी पर उसका बड़ा पुत्र बैठा हुआ एक अंग्रेजी की पुस्तक पढ़ रहा है। मन्द स्वर से रेडियो में एक सितार की गत बज रही है। छोटे पुत्र का हाथ में अखबार लिये हुए प्रवेश।]

बड़ा पुत्र : (भाई के आने की आहट पाकर उस ओर देखते हुए) कहो, क्या नयी खबर है ?

छोटा पुत्र : और तो कुछ नया नहीं, इटली की वही हालत है; मुसोलिनी का भी कोई खास पता नहीं; रूस की लड़ाई की भी करीब-करीब वही स्थिति है; सेन्ट्रल असेम्बली चल ही रही है; हाँ, एक नयी बात अवश्य है।

बड़ा पुत्र : कौन सी ?

छोटा पुत्र : आल इंडिया रेडियो अब चौबीस घंटे ब्राडकास्ट करेगा।

[वृद्ध की दृष्टि एकाएक चिट्ठी पर से हट जाती है और वह बड़ी क्रूरता-भरी दृष्टि से दोनों पुत्रों की ओर देखता है।]

वृद्ध : (ऊँचे स्वर से) बंसी ! ओ बंसी !

नेपथ्य से : आया, सरकार।

बड़ा पुत्र : (अपने भाई से) अच्छा, कब से चौबीस घंटे ब्रॉड कास्ट होगा।

छोटा पुत्र : आज पहली अगस्त तेतालीस से ही।

[नौकर का प्रवेश।]

वृद्ध : (नौकर से) बंसी, जल्दी से मेरा सामान तो बाँध दे...... देख कोई भी चीज़ रह न जाय। कुछ कपड़े, बिस्तर की सारी चीज़ें...... ।

बड़ा पुत्र : (वृद्ध से) क्यों, बाबू जी, कहीं जा रहे है ?

वृद्ध : (क्रोध से) जी हाँ, अभी फ़ौरन, बिना देर के, और कभी लौटने वाला भी नहीं।

बड़ा पुत्र : (घबड़ाकर) क्यों......क्या हुआ......क्या हुआ, बाबू जी ?

छोटा पुत्र : (घबड़ाकर) हाँ, क्या हुआ, बाबू जी ?

वृद्ध : (उसी प्रकार क्रोध से) आज से चौबीस घंटे ब्रॉडकास्ट होगा न ? नहीं, बाबा, नहीं, मैं यहाँ अब एक मिनिट नहीं रह सकता। सुबह से आधी रात तक तो यह रेडियो चलता ही था और न जाने क्या......क्या, आधी रात तक इसके मारे चैन न मिलती थी। यों महफ़िल होना बुरा है, अच्छी-से-अच्छी गाने वाली रंडियों का गाना सुनना पाप, पर

रेडियो में गानेवाली अच्छी-बुरी किसी भी किसबी का गाना सुनना धर्म। फिर बर्लिन बजता है, रोम रोता है। सरकारी मुमानियत होने पर भी यह छुपे-छुपे सुना जाता है। कोई पुलिस वाला सुन ले तो अभी सब-के-सब बँधे-बँधे फिरें और अब चौबीसों घंटे ब्रॉडकास्ट होगा।······ या तो मैं इस मकान में रह सकता हूँ, या रेडियो; दोनों नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं, **(जल्दी से उठकर रेडियो के पास जाते हुए)** हरगिज़ नहीं! **(रेडियो दोनों हाथों से उठा-कर)** चौबीस घंटे ब्रॉडकास्ट!

[दोनों पुत्र जल्दी से उठकर वृद्ध के निकट पहुँच जाते हैं।]

बड़ा पुत्र : पर सुनिए, सुनिए, बाबूजी, चौबीस घंटे का मतलब है······

वृद्ध : (रेडियो उठाये-उठाये ही दाँत पीसते हुए बीच ही में) चौबीस घंटे का मतलब होता है चौबीस घंटे।······ चौबीस घंटे······चौबीस घंटे।

यवनिका

समाप्त

महाराज

पूर्वार्द्ध

मुख्य पात्र, समय

महाराज	:	एक रसोइया
सेठानी	:	एक व्यापारी की पत्नी
समय	:	आधुनिक

स्थान : एक हिन्दू-रसोईघर

समय : मध्याह्न

[तीन ओर की दीवालें दिखती हैं। पीछे की दीवाल से सटा एक छोटा-सा चबूतरा दिखायी देता है; इस चबूतरे के एक तरफ़ एक चूल्हा बना है। दाहिनी और बाँयीं दीवालों के सिरों पर एक-एक दरवाजा है, जिनके लकड़ी के किवाड़ बन्द हैं। छत पर पत्थर का पटाव है और जमीन गोबर से लिपी है। महाराज चबूतरे पर खड़ा है। महाराज की अवस्था करीब चालीस वर्ष की है। वह गौर वर्ण का, ऊँचा-पूरा साधारण शरीर का व्यक्ति है। सिर पर गोखुर के नाप की चौड़ी शिखा है। शिखा के सिवा सिर के तथा मूँछों-दाढ़ी के बाल मुँड़े हैं। मस्तक पर त्रिपुण्ड है। ऊपर का शरीर नंगा है, जिस पर यत्र-तत्र भस्म के त्रिपुण्ड दीख पड़ते हैं और बाँयें कन्धे से कमर तक एक मोटा यज्ञोपवीत। नीचे के शरीर पर लाल रंग का सोला है। उसके बायें हाथ में ताँबे का एक कलश है और दाहिने हाथ में एक कुश। कुश को कलश में डाल-डाल कर वह चबूतरे की धरती का मार्जन कर रहा है। उसकी काष्ठ की पादुकाएँ चबूतरे के नीचे उतरी हुई हैं।]

महाराज : ॐ आपो हिष्ठा मयो भुवः

ॐ तान उर्जे दधातन ॐ महेरणाय चक्षसे

ॐ यो वः शिवतमो रसः ॐ तस्य भाजयते ह नः

ॐ उशतीरिव मातरः ॐ तस्माअरंग मामवः

ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ ॐ आपो जन यथा च नः

(मार्जन करने के बाद ऊँचे स्वर में) हाँ, राजन् ! अब आप आ सकते हैं।

[दाहिनी ओर की दीवाल के दरवाज़े को खोल राजा का प्रवेश। राजा की अवस्था महाराज के बराबर ही है। वह गेंहुएँ रंग का, ऊँचा-पूरा और मोटा व्यक्ति है। सिर पर लम्बे बाल है, जिस पर किरीट लगा है। मस्तक पर केशर का त्रिपुण्ड है और मुख पर बड़ी-बड़ी मूँछें तथा चढ़ी हुई दाढ़ी। शरीर पर घेरदार जामा और उत्तरीय धारण है। कानों में कुण्डल, गले में हार, भुजाओं पर भुजबन्द, हाथों में कड़े और उँगलियों में अँगूठियाँ।]

महाराज : (पास आते हुए, राजा से) चौंतरे के नीचे, हाँ, चौंतरे के नीचे ही रहिएगा, राजन्; आप राजा है, इसमें सन्देह नहीं, पर क्षत्रिय है, ब्राह्मण नहीं। चारों वर्णो में ब्राह्मण का वर्ण सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि वह भगवान् ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है। परन्तु जन्म के पश्चात् शारीरिक और मानसिक श्रेष्ठता रखने के निमित्त भोजन की ओर सबसे अधिक लक्ष रखना चाहिए। पय-पान की अवस्था तक भोजन में विशेष विचार की आवश्यकता नहीं होती।

अन्नप्राशन के पश्चात् ही इस विचार का आरंभ हो जाता है और उपनयन होते ही तो पूर्ण विवेक अनिवार्य है। जैसा भोजन वैसा शरीर, मन और वुद्धि। उपनयन के पश्चात् आज पर्यन्त अपने भोजन के लिए मैंने स्वयं भोजन की सामग्री निश्चित की है, उसे स्वयं सिद्ध किया है, और किसी को छूने तक नहीं दिया। मैंने स्वयं अपने चौके की भूमि का मार्जन किया है, अग्नि जलायी है; भोजन बनाया है और खाया है। राजन्, स्पर्श-दोप से बड़ा कोई दोष नहीं।

राजा : ऐसा, महाराज ?

महाराज : हाँ, राजन्। जो जैसा होता है, उसके स्पर्श के वैसे ही गुण-दोष होते है। आप क्षत्रिय हैं, राजा हैं, नरों में श्रेष्ठ, पर आप रजोगुण-प्रधान है, वैश्य भी रजोगुण-प्रधान और शूद्र तो तमोगुण-प्रधान। ब्राह्मण नरश्रेष्ठ नहीं, भू-सुर हैं, इसीलिए आप राजा कहे जाते हैं, पर ब्राह्मण महा-राज। ब्राह्मण सतोगुण-प्रधान है। उसके स्वाभाविक कर्मों के संबंध में भगवान् स्वयं संसार की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक गीता में कहते हैं—

'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥'

ब्राह्मण का भोजन यदि रजोगुण-प्रधान व्यक्ति छू लेगा तो वह भोजन सात्विक कैसे रह जायगा ? ऐसे भोजन को

कर ब्राह्मण अपने स्वाभाविक कर्म कैसे करेगा ?

राजा : हाँ, जो भोजन सात्विक नहीं रह जायगा वह सतोगुण के स्थान पर रजोगुण और तमोगुण की उत्पत्ति करेगा, महाराज, क्यों ?

महाराज : (**प्रसन्नता से**) कैसी ठीक बात कही है आपने; पर कठिनाई तो यह है, राजन्, कि ब्राह्मण भी इसे नहीं समझते। मैं कहता हूँ यदि वे सच्चे भू-सुर होना चाहते हैं, सच्चे महाराज, तो उन्हें, जन्म के पश्चात् जिस भोजन से शरीर और मन बनता है, उसकी शुद्धता, परम शुद्धता और इसके लिए स्पर्शा-स्पर्श का पूर्ण ध्यान रखना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

राजा : (**विचारते हुए**) इस सम्बन्ध में यदि राज-नियम बना दिये जायँ तो ?

महाराज : (**विचारते हुए**) नहीं, नहीं, इसकी आवश्यकता न पड़ेगी। ब्राह्मणों की कुछ निर्बलताओं ने उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। अनेक मानने लगे हैं कि यदि वे नरों से देवता नहीं हो पाये हैं, सच्चे भू-सुर नहीं बन सके हैं, तो इसका प्रधान कारण भोजन में अविवेक है; स्पर्शा-स्पर्श में ध्यान की कमी है। इसे और अच्छी प्रकार समझ लेने तथा इस ज्ञान को कार्यरूप में परिणत करते ही वे महाराज सच्चे महाराज बन जायँगे। (कुछ रुककर) अच्छा, अब आप दासों को आज्ञा दें कि पहले अग्नि लावें, उसके

पश्चात् जल, और उसके पश्चात् भोज्य-सामग्री, परन्तु वे और वह सामग्री इस चौंतरे के नीचे ही रहे, चौंतरे की धरती का कोई स्पर्श न करे।

राजा : (बांयीं दीवार के दरवाजे की ओर जाते हुए) जैसी आज्ञा।

यवनिका

उत्तरार्द्ध

मुख्य पात्र

महराज	:	एक ब्राह्मण
राजा	:	एक क्षत्रिय
समय	:	अभी से सैकड़ों वर्ष पूर्व

स्थान : एक हिन्दू-रसोईघर

समय : प्रातःकाल

[दृश्य वैसा ही है जैसा कि पूर्वार्द्ध में था। महराज चबूतरे को गोबर से लीप रहा है। महराज स्वरूप में पूर्वार्द्ध के महराज से ठीक उल्टा है। यद्यपि अवस्था इसकी भी चालीस वर्ष के लगभग ही है तथापि यह अत्यन्त काले रंग का, ठिगना और बहुत ही दुबला-पतला मनुष्य है। सिर पर छोटी-सी चोटी है और उसके चारों ओर के बाल तथा मूँछ-दाढ़ी अर्थात् सारी हजामत बढ़ गयी है। ऊपर का शरीर नंगा है। बाँयें कन्धे पर एक पतला-सा जनेऊ है, जो अत्यन्त मैला हो गया है। नीचे के शरीर पर एक बहुत ही मैला गमछा है। गमछे के ऊपर कमर में नाभि तक दाद के चिट्टे दीख पड़ते है। वह अपने आप कुछ कहता जाता है और कहते-कहते कभी नाक सुड़कता और कभी दाद खुजाता है।]

महराज : बाम्हन सबसे ऊँची जात छै न। (जोर से नाक सुड़क-कर) बिरम्हा के मूँडा सूं हुई छै। (लीपना बन्द कर जोर से दाद खुजाते हुए) भू-सुर! महराज! (फिर लीपते हुए) जनम रे पीछे ब्राम्हन रे बाम्हन रहवाने, बाम्हन का

करम करवाने, सुद्ध भोजन चाईजे, सुद्ध सूं सुद्ध भोजन। (नाक, पहने हुए गमछे में छिनकते हुए) निरानिष सामगरी और विना कोई जात री छुई छाई। (कुछ रुककर) हहह! हहह! हहह! हहह! हहह!

[दाहिनी ओर की दीवाल का दरवाज़ा खोलकर सेठानी का प्रवेश। सेठानी की उम्र महराज के बराबर ही है। उसका रंग उतना ही गोरा है जितना महराज का काला। जितना महराज ठिगना है उतनी ही वह ऊँची, और जितना महराज दुवला है उतनी ही वह मोटी। पूर्वार्द्ध का राजा जैसा घेरदार जामा पहने था वैसा ही यह लहँगा पहने है। लहँगे के ऊपर सिर से ओढ़न ओढ़े है। राजा के सदृश सेठानी भी आभूषणों से सुसज्जित है। सिर पर बोर है, कानों में कर्णफूल, गले में तिम्नियाँ, भुजाओं पर बाज़ू, हाथों में गोखरू तथा मोटी-मोटी लाख की चूड़ियाँ और उँगलियों में अँगूठियाँ तथा अँगूठों में आरसियाँ। पैरों में चाँदी की मोटी कड़ियाँ, नेवरियाँ इत्यादि है।]

सेठानी : (चोंतरे के निकट आते-आते जोर से) देखो, महराज! आज सूँ परसोतम मास लागे छै। आज सूँ विरम-जल री रसोई होसी, विरम-जल री।

महराज (ज़ोर से नाक सुड़ककर) पानी भी महराज ही ने भरनो पड़सी?

सेठानी : हाँ, पानी भी थाने ही भरनो छै, महराज, और परसोतम मास सारा घर का, मुनीम-गुमास्ता, नौकर, चाकर, सब का सब, कर रह्या छै। सब विरम-जल री रसोई जीमसी,

विरम-जल री।

महराज : (दाद खुजाते हुए) महराज ने, भू-सुर ने छत्री, वैस ही नहीं सूदररी भी सेवा करनी छै ?

सेठानी : (कड़ककर) नहीं करनी हो तो अपनो हिसाब करलो, महराज, अठे रहस्यो तो काम तो करनोई पड़सी। मुफत का पीसा थोड़े ई आया छैं। और थे नई रहस्यो तो थारे सरीसा छप्पन सैं साठ आ जासी। न जाने कितरा भटियारा जूत्याँ चिटकाता आया, कितरा चला गया।

महराज : क्यूँ नहीं, सेठानी जी ? बाम्हन, कहाँ रा भू-सुर, कहाँ रा महराज ? आज तो बाम्हन-जात भटियाराँरी जात रह गई छै, बाम्हन और काँई काम करवा लायक रह्या छै ? न जाने म्हाँ का कौन-सा पुरखा ने या छुआछूत······या भूतनी······या डाकिनी ने······(एक हाथ से जोर से दाद खुजाता है और दूसरे से गमछे से नाक छिनकता है।)

सेठानी : (घृणा से) थे कित्ता गन्दा रहो छो, महराज, कित्ता गन्दा !

महराज : गन्दा ! गन्दा, सेठानी जी ? हहह ! हहह ! हहह ! हहह ! हहह ! महराज ! महराज !! महराज !!!

[महराज एक विडंबनायुक्त दृष्टि से चूल्हे की ओर देखता है। सेठानी धीरे-धीरे बाँयीं तरफ़ की दीवाल के दरवाजे की ओर बढ़ती है।]

यवनिका

समाप्त

वन्द् नोट

पात्र, स्थान

मुख्य पात्र

रामनारायण : एक साहूकार
वैदेहीशरण : एक कांग्रेसवादी
गंगादेवी : वैदेहीशरण की पत्नी
प्रद्युम्नकुमार : वैदेहीशरण का पुत्र
मथुरा : वैदेहीशरण का नौकर

स्थान

एक नगर और एक छोटा-सा स्टेशन

उपक्रम

स्थान : एक नगर में रामनारायण के मकान का बैठकखाना

समय : सन्ध्या

[बैठकखाना आधुनिक ढंग का साधारण सजा हुआ कमरा है। सोफा पर रामनारायण और वैदेहीशरण बैठे हुए हैं। रामनारायण की अवस्था लगभग ४० वर्ष की है। वह गेहुँए रँग का साधारण कद और शरीर का व्यक्ति है, कुरता और धोती धारण किये हुए है, सिर नंगा है। वैदेहीशरण की अवस्था लगभग २५ वर्ष की है। वह गौर वर्ण का ऊँचा और दुबला आदमी है, खादी का कुरता और धोती पहने है, सिर पर गांधी टोपी है।]

वैदेहीशरण : जी हाँ, मै कहता हूँ, और जितना भी मुझ में नैतिक वल है उस सारे वल के साथ कहता हूँ, कि आप साहूकारों ने, आप सम्पन्न व्यक्तियों ने, किसी को वन्द नोट देकर और किसी को खुले नोट देकर रिश्वत और चोर-वाजारी का ऐसा दौर-दौरा कर रखा है, ऐसा......क्या कहें......

रामनारायण : वन्द नोटों और खुले नोटों की रिश्वतें दी जा रही है, चोर-बाजारी का दौर-दौरा है, इसे मै नामंजूर नहीं करता, लेकिन इसमें हम साहूकार और सम्पन्न कहे

जाने वाले व्यक्ति ही दोषी हैं, इसे मै नहीं मानता।

वैदेहीशरण : तो फिर और कौन दोषी है ?

रामनारायण : यह समय।

वैदेहीशरण : और इस तरह के समय का निर्माण किसने किया है ?

रामनारायण : एक खास परिस्थिति ने।

वैदेहीशरण : **(घृणा से मुस्कराकर)** परिस्थिति ? अपने पापों को छिपाने के लिए परिस्थिति की आड़ यह पापियों का सदा का धन्धा रहा है।

रामनारायण : **(शान्ति से)** साहूकारों और सम्पन्न व्यक्तियों में पापी नहीं है, यह मे नहीं कहता, परन्तु क्या सारी रिश्वतें साहूकारों और सम्पन्न व्यक्तियों के कारण ही चल रही है ?

वैदेहीशरण : जिनके पास है ही नहीं वे रिश्वत कहाँ से देंगे और कैसे व्यवहार करेंगे चोर-बाजारों में ?

रामनारायण : यह मैं मानता हूँ कि जिनके पास कुछ भी नहीं वे रिश्वतें देने और चोर-बाजारों में व्यवहार करने में असमर्थ है, पर साहूकार और सम्पन्न व्यक्ति ही रिश्वतें देते और चोर-बाजारो को चलाते है यह मैं नही मानता। कई वार निर्धनों तक को रिश्वतें देनी पड़ती है और निर्धनों को नहीं, बड़े-बड़े सिद्धान्तवादियों तक को।

वैदेहीशरण : **(उत्तेजना से)** अच्छा तो अब आप सिद्धान्तवादियों तक पहुँच गये ?

रामनारायण : (शान्ति से) जी हाँ, मै कहता हूँ, कि परिस्थिति के कारण अनेक वार वड़े-रड़े सिद्धान्तवादियों तक को रिश्वते देनी पड़ती हैं और चोर-वाजारों मे व्यवहार करना पड़ता है।

वैदेहीशरण : परिस्थिति······परिस्थिति; अजी जनाव, सच्चे सिद्धान्तवादियों का कोई····· कोई भी परिस्थिति पतन नही करा सकती, हरगिज ····हरगिज नही····· ।

यवनिका

मुख्य दृश्य

स्थान : एक छोटा-सा रेलवे स्टेशन

समय : अर्द्धरात्रि

[एक ओर कुछ दूरी पर स्टेशन के प्लेटफार्म का कुछ हिस्सा और उसके पीछे स्टेशन की छोटी-सी इमारत का कुछ भाग धुँधला-धुँधला दिखायी देता है। दूसरी तरफ निकट ही एक वृक्ष के नीचे वैदेहीशरण, गंगादेवी और मथुरा बैठे हुए हैं। गंगादेवी की गोद में उसका पुत्र प्रद्युम्नकुमार है। वैदेहीशरण के वस्त्र वैसे ही हैं जैसे उपक्रम में थे। वह उन वस्त्रों पर एक मोटा-सा कंबल और ओढ़े है। गंगादेवी की उम्र वैदेहीशरण से कुछ ही कम है। वह गोरे रंग की कुछ ठिगनी और दुहरे शरीर की स्त्री है। खादी की साड़ी और सलूका पहने है और उनके ऊपर एक कंबल ओढ़े है। हाथों में दो-दो काँच की चूड़ियों के सिवा शरीर पर और कोई आभूषण नहीं है। प्रद्युम्नकुमार लगभग एक वर्ष का बालक है। एक ऊनी चादर से ढके रहने के कारण उसका शरीर दिखायी नहीं देता। बीच-बीच में उसका रोना अवश्य सुन पड़ता है। मथुरा करीब ३५ वर्ष की अवस्था का श्याम वर्ण का

साधारण ऊँचाई का दुबला-पतला व्यक्ति है। मिल के कपड़े का कुरता और धोती पहने है और एक दुपलिया टोपी सिर पर लगाये है। कुरते के ऊपर वह भी एक फटा-सा धुस्सा ओढ़े है। वैदेहीशरण का कुछ मुख्तसिर मुसाफिरी का सामान बक्स के निकट रक्खा हुआ है। जोर की हवा चल रही है। बीच-बीच में रिमझिम पानी भी बरस जाता है। सब के चेहरे अत्यन्त उद्विग्न है।]

वैदेहीशरण : (झुँझलाकर) तो मै करूँ क्या ? थर्ड और इण्टर ही नहीं; सैकंड और फर्स्ट तक का टिकट नहीं मिलता। विना टिकट के गाड़ी मे किसी तरह घुस पड़े और पहुँचकर मय पेनलटी के दूना किराया दे दे सो भी नहीं वनता, क्योंकि इस वदजात स्टेशन मास्टर ने ऐसा इन्तजाम कर रखा है कि विना टिकट लिए कोई प्लेटफार्म पर घुस ही नहीं सकता।

गंगादेवी : टिकट तो मिल सकता है, यदि तुम चाहो।

मथुरा : हाँ, मालकिन, हमारे देखते-देखते कितनों को टिकट मिल गये।

वैदेहीशरण : (अत्यन्त उत्तेजित होकर) चुप रहिए। मै रिश्वत देकर टिकट लूँगा ? पहुँचे तो घर किसी तरह। इस स्टेशन मास्टर की रिश्वतो का सारा भंडा-फोड़ कर इसका कचूमर निकलवाये विना न रहूँगा।

गंगादेवी : पर घर पहुँचते-पहुँचते हमारा जो कचूमर निकला जा रहा है।

वैदेहीशरण : **(और जोर से चिल्लाकर)** जो होना हो सो हो। मै रिश्वत दूँ ? हम सिद्धान्तवादी भी यदि रिश्वतों और चोर-बाजारों मे दूर न रह सके……

गंगादेवी : और इस दूर रहने के कारण चाहे……चाहे……

वैदेहीशरण : **(बीच ही में जोर से चिल्लाकर)** चाहे हम मर ही क्यो न जायँ।

[कुछ देर कोई कुछ नहीं बोलता। पानी की एक जोर की बौछार आ जाती है।]

गंगादेवी : **(अत्यन्त करुण स्वर में)** हे भगवान् !

[नैपथ्य से पिछले स्टेशन से गाड़ी छूटने के घंटे का शब्द सुन पड़ता है।]

गंगादेवी : **(गिड़गिड़ाते हुए)** देखो, फिर गाड़ी आ रही है। सुवह से वैठे-वैठे आधी रात हो गयी। हम ही भूखे है सो नही, वच्चे तक को दूध नहीं मिला। ठण्ड कँपा रही है, पानी भिगो रहा है।

[वैदेहीशरण कोई उत्तर न देकर एक लम्बी साँस लेता है।]

गंगादेवी : इसी तरह वैठे रहे तो वीमार होना भी निश्चित है। प्रद्युम्न को तो निमोनिया हो जायगा, निमोनिया।

वैदेहीशरण : **(निराश स्वर में)** तो करूँ क्या मैं ?

गंगादेवी : इस समय तो किसी भी तरह घर पहुँचो।

वैदेहीशरण : पर टिकट ?

मथुरा : टिकट तो मै ले आता हूँ, अगर मुझे दस रुपये का एक नोट मिल जाय। जहाँ स्टेशन मास्टर को नोट दिया और

कहा कि टिकिट दे और छुट्टा पैसा न देकर रख ले बन्द नोट · बन्द नोट ····

[वैदेहीशरण कुछ न कहकर एक लम्बी साँस लेता है। कुछ देर निस्तब्धता।]

गंगादेवी : नोट दूँ इसे ?

[वैदेहीशरण फिर भी कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता। नेपथ्य से गाड़ी आने के घंटे का शब्द आता है।]

गंगादेवी : (अत्यन्त करुण स्वर में) मान जाओ ·····मैं कहती हूँ, मान जाओ ?

वैदेहीशरण : मैं कुछ नहीं जानता, तुम्हारी जो इच्छा हो, करो।

[नेपथ्य में गाड़ी आने का शब्द सुनायी देता है। गंगादेवी जेब से जल्दी से दस रुपये का नोट निकालकर मथुरा को देती है। वह दौड़ता हुआ जाता है। वैदेहीशरण और गंगादेवी उठते हैं।]

वैदेहीशरण : (दाँत पीसते हुए) मैं इस स्टेशन मास्टर का कचूमर निकलवाये बिना न मानूँगा।

गंगादेवी : जरूर जरूर · घर तो पहुँचो।

यवनिका

उपसंहार

स्थान : एक नगर में रामनारायण के मकान का बैठकखाना

समय : प्रातःकाल

[रामनारायण और वैदेहीशरण बैठे हुए बातें कर रहे हैं।]

वैदेहीशरण : जी हाँ, मैंने उस बन्द नोट की शिकायत कर दी है। अब या तो स्टेशन मास्टर नौकरी से जायगा या जेल में बन्द होगा।

रामनारायण : सो हो जायगा, पर आपने यह तो देख लिया न कि ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जब केवल साहूकारों और सम्पन्न व्यक्तियों को ही नही, पर साधारण से साधारण लोगों और बड़े-से-बड़े सिद्धान्तवादियों तक को बन्द के बन्द नोट रिश्वत में सरका देने पड़ते हैं।

वैदेहीशरण : पर यदि परिस्थिति से मजबूर होकर ये बन्द नोट सरकाने भी पड़ें तो बाद में रिपोर्ट कर इन लुच्चों को बन्द क्यों नही कराया जाय।

रामनारायण : इसलिए कि रिपोर्ट कर इन्हें बन्द कराने के पहले रिपोर्ट लिखने और उनके संबंध में न जाने कितने काम बन्द हो जाते हैं।

वैदेहीशरण : (**कुछ उत्तेजित होकर**) रिपोर्ट न करने का यह भी कोई कारण है ?

रामनारायण : एक तो आप रिश्वत देने की परिस्थिति कारण नही मानते थे। अब आप इन रिपोर्टो के कारण जिस तरह अन्य काम वन्द हो जाते हैं यह नहीं मानते। पर इस वन्द नोट की रिपोर्ट का अनुभव कर लीजिए। इसके वाद रिपोर्ट करना वन्द कर दीजिएगा।

वैदेहीशरण : (**अत्यन्त उत्तेजित होकर खड़ा हो जाता है और जाने का उपक्रम करता है**) कभी नही, जनाव, कभी नहीं। इस तरह के वन्द नोटों की रिपोर्टो के करने में अगर मेरा सारा काम भी वन्द हो जाय, मै खुद ही जेल मे वन्द हो जाऊँ तो भी मै पीछे न रहूँगा ! हरगिज नहीं······ हरगिज नहीं ! इन चोरवाजारो, इन रिश्वतों को वन्द करने का यही······यही एक मात्र उपाय है।

रामनारायण : इस वन्द नोट की रिपोर्ट करके स्टेशन मास्टर को नौकरी से अलग करने अथवा जेल में वन्द करने मे आपका कितना काम वन्द होता है, आप इसका अनुभव करके ही मानेगे।

वैदेहीशरण : अवश्य ! (**भीतर से झुँझलाते और ऊपर से हँसते हुए प्रस्थान।**)

यवनिका

समाप्त